ामना पं० मदनमोहन मालवीय की जीवनी

लेखक
वैंकटेश नारायण तिवारी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

2

मूल्य ४)

महामना पं० मदनमोहन मालवीय की जीवनी

१२८ वीं महमना मालवीय जयंती, २०/१२/८९
के अवसर पर स्व० माँ विष्णुजाशी खन्ना की
ओर से मालवीय अध्ययन संस्थान के पुस्तकालय
को सप्रेम भेंट।

शकुनचन्द्र,
कानपुर।
४०/१ B, परेड, कानपुर,
जनपद- कानपुर महानगर, उ०प्र०
पिन कोड नम्बर - २०८००१

लेखक
वैंकटेश नारायण तिवारी

प्रकाशक
©काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

5534
BANARAS HINDU UNIVERSITY MALAVIYA BHAVAN

मूल्य ₹ 7 50 ।

मुद्रक
लक्ष्मीदास
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस
वाराणसी–५

भूमिका

मुझे बहुत से लेखकों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना है। उनके सहयोग के बिना मैं इस कार्य-भार को समाप्त न कर सकता था। समाप्ति की कौन कहे, उसके आरम्भ की भी नौबत न आती।

मैं आभारी हूँ दैनिक 'आज' के 'मालवीय विशेषांक' और श्री रामनाथ 'सुमन' की पुस्तक 'राष्ट्र के निर्माण', का। श्री रामनरेश त्रिपाठी की पुस्तक 'मालवीय जी के साथ तीस दिन' से भी मैंने बहुत कुछ लिया है, अतएव श्री त्रिपाठी जी के ऋण को भी स्वीकार करने में मुझे हर्ष होता है। श्री चन्द्रबली त्रिपाठी का भी मैं आभारी हूँ, जिनकी पुस्तक 'मालवीय जी के संस्मरण' से मैंने बहुत कुछ सीखा है। 'सरस्वती' में प्रकाशित श्री ब्रजमोहन व्यास की मालवीय जी--सम्बन्धी लेखमाला के अंश मैंने यत्र-तत्र उद्धृत किये हैं। उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, यद्यपि श्री ब्रजमोहन व्यास कहीं-कहीं पर अपनी लेखमाला में भूल कर गये हैं। उदाहरण के लिये, उन्होंने लिखा है कि मालवीय जी की पौत्री, कुमारी मालती, का अंतर्जातीय विवाह हुआ। मैंने श्री पद्मकान्त मालवीय को इस विषय में लिखा। उन्होंने जवाब दिया कि मालवीय जी की किसी पौत्री का नाम 'मालती' नहीं है। यह तो उनकी सबसे छोटी पुत्री का नाम था। मैंने उन्हें फिर लिखा कि, व्यास जी के अनुसार, कुमारी मालती का विवाह श्री श्रीनिवास शर्मा के साथ हुआ था। उस पर उन्होंने जवाब दिया कि पं० रमाकांत की पुत्री और मालवीय जी की पौत्री, कुमारी हेम, के साथ श्री श्रीनिवास शर्मा का विवाह हुआ है। उसकी तिथि श्री पद्मकांत जी के अनुसार सन् १९३८ थी। श्री पद्मकान्त जी की बात मुझे ठीक जँचती है। मेरे विचार से नामों में श्री व्यास जी धोखा खा गये।

श्री पद्मकान्त मालवीय के प्रति कृतज्ञता मैं किन शब्दों में दूँ? उनके द्वारा संपादित दो ग्रन्थों से मैंने बहुत कुछ उद्धृत किया है। हमें आशा है कि श्री पद्मकान्त मालवीय इसी तरह से और भी ग्रन्थ समय-समय पर प्रकाशित करने की कृपा करते रहेंगे। उनके इस तरह के ग्रन्थ न केवल उपादेय किन्तु शिक्षा-प्रद भी हैं। मुझे आशा है कि मेरे साथ उनका जो सम्बन्ध रहा है, या है, उसको विचार कर, वह उनके ग्रंथों से उद्धरण देने की मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे। डा० हरिशंकर शर्मा का भी मैं आभारी हूँ। उनकी पुस्तक, 'जीवन-झांकी', से मैंने एक उद्धरण भी दिया है।

'नेशनल आर्काइव आफ़ इंडिया' का मैं बहुत आभारी हूँ, जिसके एक उच्च पदाधिकारी ने मेरी हर तरह से सहायता की है। 'नेशनल आर्काइव के द्वारा सन् १९१०, सन् १९१५ और सन् १९१९ की सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौन्सिल की कार्यवाही की प्रतियाँ मुझे देखने को मिलीं। इनके अलावा, इस 'नेशनल आर्काइव' ने मेरे देखने के लिए ग़ैर सरकारी कमेटी का प्रतिवेदन भी सुलभ किया। इन सब का आभार न स्वीकार करना कृतघ्नता होगी। उसने उस पत्र की प्रतिलिपि भी देने की कृपा की, जो उन्होंने श्री परमानन्द को लिखा था। उसका ब्यौरा मैंने मालवीय जी द्वारा हर की पैड़ी में गंगाजी को अविछिन्न धारा-सम्बन्धी आंदोलन के विषय में किया है।

इनके अतिरिक्त श्री हुमायूं कबीर द्वारा लिखी हुई पुस्तक 'इंडिया विन्स फ्रीडम' का भी मैं आभारी हूँ, जिसके उस अंश से मैंने लाभ उठाया है। इसमें उन्होंने श्री चित्तरंजनदास और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के गोलमेज कान्फ्रेन्स-सम्बन्धी प्रस्ताव के विषय में विचारों के प्रति महात्मा जी की प्रतिक्रिया का वर्णन किया है।

इनके अलावा, दो बहुमूल्य पुस्तकों का भी उल्लेख करना आवश्यक है। ये दोनों पुस्तकें मुझे पार्लियामेन्ट लाइब्रेरी से मिलीं सन् १९१६–१८ की इंडस्ट्रियल कमेटी और सन् १९३१ में लंदन में होनेवाली गोलमेज कांफ्रेन्स की फैडरल स्ट्रक्चर कमेटी की कार्यवाही के प्रतिवेदन मिले। इन दोनों पुस्तकों से पूरा-पूरा लाभ मैंने उठाया।

यह तो कृतज्ञता-प्रकाशन की बात हुई। पुस्तक के विषय में मुझे जो हिदायत मिली, वह थी मालवीय जी की वैज्ञानिक ढंग की जीवनी में उनका चरित तारीखवार दिया जाए। इसका पालन, जहाँ तक संभव हुआ, मैंने किया है; लेकिन मालवीय जी की जीवनी लिखते समय एक कठिनाई का सामना मुझे करना पड़ा। वह यह है कि मालवीय जी अपने जीवन में बहुत से कामों को एक साथ करते थे। उनकी तालिका क्रमबद्ध देना मालवीय जी के जीवन की झाँकी को मिटा देता या पाठक को उस जीवनी के पढ़ने में कोई रस न मिलता। यह समस्या मेरे सामने आयी।

मालवीय जी की जीवनी लिखने में उस हिदायत का इतना ध्यान तो मैंने रखा कि जिस विषय पर मुझे लिखना था, उसको आद्योपांत क्रमबद्ध मैंने लिख दिया। उदाहरण के लिए, मालवीय जी की पौत्री के अंतर्जातीय विवाह के विषय में लागू है। यह बात सन् १९३८ में हुई, पर उसका सिलसिला बहुत पहले का है। इस सम्बन्ध में पहले की बातों को मैंने तारीखवार दे दिया है। यही बात मालवीय जी की छोटी बहन, उनकी पत्नी, और उनके ज्येष्ठ पुत्र के निधन के विषय में भी लागू है। यही सिलसिला मैंने 'हिन्दुस्तान' और 'अभ्युदय' के विषय में रखा है। मेरा मुख्य उद्देश्य मुख्य-मुख्य घटनाओं द्वारा मालवीय जी के जीवन की आश्चर्य-जनक कार्यशीलता प्रकट करना था, न कि उनके जीवन की घटनाओं को वैज्ञानिक रूप से तिथिवार तालिका देना।

मैंने दो-तीन मित्रों को इस जीवनी के कुछ अध्याय पढ़ने को दिये थे। उन्होंने कृपा-पूर्वक मुझे यह आश्वासन दिया कि मालवीय जी की जीवनी लिखने में जिन बातों का ध्यान रखना चाहिए, उनका पालन मैंने अक्षरशः किया है।

मालवीय जी की जीवनी वैज्ञानिक ढंग से लिखने पर एक तालिका मात्र रह जाती। यही बात अंग्रेजी में मालवीय जी की जीवनी लिखने में उसके लेखक महोदय के सामने भी आयी। उन्होंने कहा कि यदि वह मालवीय जी के कौंसिल में कार्य-कलापों का जिक्र करते हैं तो उससे मालवीय जी की जीवनी की झाँकी कुछ अंशों में पीछे पड़ जायगी। मैंने इस समस्या का सुझाव यह दिया कि वह मालवीय जी की जीवनी को कई खंडों में विभक्त कर दें और दूसरे खंड में मालवीय जी के सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल के कार्य-कलापों का जिक्र करें। ऐसा ही मैंने भी किया है। उन्होंने इस प्रस्ताव से अपनी सहमति प्रकट की, लेकिन मुझे नहीं मालूम कि मेरे इस सुझाव को कहाँ तक अमल में वह लाये।

दूसरे खंड में मालवीय जी के सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल में कार्य-कलापों का जिक्र पाठकों को मिलेगा। 'नेशनल आर्काइव आफ़ इंडिया' का मैं आभारी हूँ, जिसकी कृपा से मुझे गाँधी कमेटी या ग़ैर-सरकारी कमेटी का वह प्रतिवेदन भी देखने को मिला, जिसका जिक्र मैंने दूसरे खंड के अंत में किया है। इस ग़ैर-सरकारी कमेटी की नियुक्ति महामना मदनमोहन मालवीय के प्रस्ताव पर हुई थी। वह अमृतसर में उस समय न होते तो इस कमेटी की नियुक्ति न हुई होती।

महामना की इस जीवनी की भाषा के विषय में एक-दो शब्द कहना आवश्यक है। यह जीवनी 'चलती भाषा' या बोलचाल की भाषा में लिखी गयी है। इसमें यत्र-तत्र बहुतेरे उर्दू के शब्द भी आये हैं। मैंने जान-बूझकर उनका बहिष्कार नहीं किया है। कुछ अंग्रेजी के शब्द भी इस जीवनी में आये हैं, यद्यपि उनका रूपान्तर हिन्दी में कर दिया गया है। इसके लिखने में मैंने, जहाँ तक सम्भव हुआ, मालवीय जी के 'हिन्दुस्तान' की भाषा का प्रयोग किया है। यह पाठकों के ऊपर निर्भर है कि वे इस भाषा को जीवनी लिखने के लिए कहाँ तक पसन्द करेंगे। यथासम्भव मैंने अधिकतर तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है, उसमें तत्सम् शब्द भी आये हैं। जिन मित्रों को इस जीवनी के कुछ अध्याय मैंने पढ़ने को दिए थे, उन सबने मुझे इस बात का आश्वासन दिलाया कि यह जीवनी ऐसी भाषा में लिखी गयी है, जो उसके लिए सर्वथा उपयुक्त है।

मैंने जिन लेखकों के उद्धरण दिये हैं, उनमें तत्सम् शब्दों का बाहुल्य है। मने उनकी भाषा को सुधारने की आवश्यकता नहीं समझी, जिससे पाठक हिन्दी में प्रचलित विभिन्न शैलियों का रसास्वादन कर सकें। यह सम्भव था कि उनके विचारों को मैं अपनी भाषा में बदल देता। इससे उनके विचारों की रक्षा तो अवश्य होती, पर उनकी भाषा न रहती। ऐसे स्थानों पर मैंने उनकी भाषा को सुरक्षित रखने के विचार से उसको ज्यों का त्यों उद्धृत किया है।

२० दिसम्बर, १९६२

वेंकटेश नारायण तिवारी

विषय सूची

पहला खण्ड

पहला अध्याय
महामना मदनमोहन मालवीय — १

दूसरा अध्याय
छात्र के रूप में मालवीय जी — ९

तीसरा अध्याय
मालवीय जी अध्यापक हो गये — १७

चौथा अध्याय
कांग्रेस में मालवीय जी — १९

पाँचवाँ अध्याय
दैनिक 'हिन्दुस्तान' का संपादन — २४

छठवाँ अध्याय
मालवीय जी और वकालत — २९

सातवाँ अध्याय
मालवीय जी के आरम्भिक काम — ३२

आठवाँ अध्याय
'अभ्युदय' आदि का प्रकाशन — ३५

नवाँ अध्याय
मालवीय जी की आस्तिकता और फुटकल बातें — ४४

दसवाँ अध्याय
हरिद्वार की हरकी पैड़ियों में गंगा जी की अविच्छिन्न धारा — ५२

ग्यारहवाँ अध्याय
मालवीय जी और काशी विश्वविद्यालय — ५५

बारहवाँ अध्याय
समाज-सुधारक मालवीय जी — ६२

तेरहवाँ अध्याय
मालवीय जी के प्रति दो हरिजन सज्जनों की 'शहादत' — ७०

चौदहवाँ अध्याय
मालवीय जी और सन् १९१६—१८ का ओद्योगिक कमीशन — ७३

पन्द्रहवाँ अध्याय
मालवीय जी का भारत के भविष्य के लिए गोलमेज कान्फ्रेन्स का प्रस्ताव और गाँधी जी की उस प्रस्ताव की नामंजूरी ७९

सोलहवाँ अध्याय
सन् १९३१ में लन्दन की गोलमेज कांन्फ्रेंस में मालवीय जी ८१

सत्रहवाँ अध्याय
मालवीय जी का काया-कल्प ८४

अट्ठारहवाँ अध्याय
मालवीय जी की पोती का अन्तंजातीय विवाह ८७

उन्नीसवाँ अध्याय
मालवीय जी की छोटी बहन, पत्नी और ज्येष्ट पुत्र का निधन ८९

बीसवाँ अध्याय
मालवीय जी का स्वर्गवास ९४

इक्कीसवाँ अध्याय
मालवीय जी और स्त्री-शिक्षा ९६

बाईसवाँ अध्याय
मालवीय जी और उनके नौकर ९९

तेइसवाँ अध्याय
मालवीय जी की अन्य बातें—१ १०१

चौबीसवाँ अध्याय
मालवीय जी की अन्य बातें—२ १०५

पचीसवाँ अध्याय
मालवीय जी की भाषण-शक्ति ११३

छब्बीसवाँ अध्याय
मालवीय जी की निस्वार्थ सेवा और उनकी दानशीलता ११६

दूसरा खण्ड

पहला अध्याय
हिन्दू यूनिवर्सिटी विधेयक १२१

दूसरा अध्याय
प्रेस विधेयक का विरोध १२३

तीसरा अध्याय
मालवीय जी का प्रेस विधेयक पर भाषण १२६

चौथा अध्याय
हिन्दू विश्वविद्यालय १२९

पाँचवाँ अध्याय
हिन्दू यूनिवर्सिटी विधेयक १३५

छठवाँ अध्याय
सन् १९१७—१८ में ग्रेट ब्रिटेन को १४ करोड़ ४० लाख पौण्डों का ऋण देने का विरोध मालवीय जी ने किया १४०

सातवाँ अध्याय
रौलट बिल का विरोध १४२

आठवाँ अध्याय
पंजाब में मार्शल ला का विरोध १४४

नवाँ अध्याय
गैर-सरकारी या गाँधी कमेटी की प्रस्तावना १४८

दसवाँ अध्याय
पंजाब कांड १४९

ग्यारहवाँ अध्याय
अमृतसर और काशी के अतिरिक्त अन्य स्थान १६१

बारहवाँ अध्याय १७२

तेरहवाँ अध्याय १७४

चौदहवाँ अध्याय
केन्द्र की असेम्बली में महामना जी १७८

तीसरा खण्ड

पहला अध्याय
श्री मालवीय जी पर स्वामी श्रद्धानन्द और श्री जवाहर लाल नेहरू के लेख १८३

दूसरा अध्याय
न मोक्षस्याकांक्षाभव-विभववाञ्छापि च न मे १९२

तीसरा अध्याय
ऋषिकल्प की कल्पना-हिन्दू विश्वविद्यालय १९३

चौथा अध्याय १९७—२०७
आधुनिक भारत के निर्माता १९७
अद्वितीय गुणागार १९८

बंबई के व्यापारियों से चन्दा १९८
वायसराय की कौंसिल में १९८
ब्रिटिश सिंह को खुली चुनौती २००
ओडायर की अकड़ २०१
दिल्ली कांग्रेस २०१
रौलट ऐक्ट २०२
जालियाँवाला २०२
अलौकिक साहस २०३
मन्त्र की महिमा २०४
स्वयं तार देने गये २०५
रेशमी कपड़े २०५
ये तो गोपाल कृष्ण हैं ? २०५
ऐतिहासिक भाषण २०६
असीम क्षमा-शीलता २०७

पाँचवाँ अध्याय २०८—२१२

मालवीय जी ने पंचम जार्ज की धमकी का उत्तर दिया २०८
शिक्षा से जगत पर विजय २०८
धमकी का उत्तर २०९
काया-कल्प २१०

छठवाँ अध्याय २१३—२२५

प्रकृति-सिद्ध महामना २१३
'हिन्दुस्तान' की सम्पादकी २१४
कुत्ते की शुश्रूषा २१६
अहिंसा-प्रेम २१६
पितृ-स्नेह २१७
सर सुन्दरलाल और मदनमोहन २१७
मदनमोहन और पं० विश्वम्भरनाथ ११९
हिन्दू-समाज की बैठक २२०
मदनमोहन और रा० ब० लाला रामचरन दास २२०
जर्मन प्रोफेसर डा० ड्युसेन और मदन मोहन २२२
तपस्वी मदन मोहन २२३
मंत्र-दीक्षा २२४
कौटुम्बिक २२५

सातवाँ अध्याय २२५—२३८

मालवीय जी के जीवन का मूल्यांकन २२६
मालवीय जी की आस्तिकता २२६

मालवीय जी का आत्मविश्वास और साहस २२७
धार्मिकता और साम्प्रदायिकता में भेद २२९
मालवीय जी का मूल सिद्धान्त २३०
मालवीय जी की अनिमता का मूलकारण २३१
मालवीय जी का ब्रह्मणत्व २३२
मालवीय जी की वाग्मिता २३४
मालवीय जी की निःस्वार्थ सेवा २३५
अजातशत्रु मालवीय जी २३५
मालवीय जी सब गुणों की खान २३५
मालवीय जी और हरिजन २३६
मालवीय जी और मोक्ष २३६
दो व्यक्तियों का प्रभाव २३६
विनम्र निवेदन २३७
मालवीय जी और प्रतिलोम विवाह २३७
मालवीय जी और चन्दा २३७

मालवीय जी की जीवनी

प्रथम खण्ड

सन् १८६१ से सन् १९४६ तक

पहला अध्याय

महामना मदनमोहन मालवीय

महामना मदनमोहन मालवीय की जीवनी जितनी शिक्षाप्रद है, उतनी ही वह प्रेरणा देने वाली भी है। १०० वर्ष के बाद उनकी जन्म-तिथि मनाने के लिए भारत के बड़े नगरों में जो जलसे हुए, उनसे मालवीय जी के जीवन का कुछ-कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है। उनका युग समाप्त हुए सोलह वर्ष से अधिक हो गए। लेकिन उनकी यादगार को हम लोग अब तक मनाते हैं, यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है। प्रधान मंत्री और उप-राष्ट्रपति (जो अब राष्ट्रपति हुए हैं) के भाषणों से मालवीय जी की महत्ता का कुछ-कुछ आभास आज की नयी पीढ़ी को लग सकता है; लेकिन कुछ ही कुछ।

जिस समय मालवीय जी जीवित थे, उस समय उनकी वाग्मिता की धूम थी, और देश के लाखों व्यक्तियों ने उनके भाषणों से लाभ उठाया था क्योंकि मालवीय जी को सार्वजनिक कार्यवश देश का भ्रमण करना पड़ता था और भारत का कोई प्रदेश ऐसा नहीं बचा जिसमें दो, तीन या उससे भी अधिक बार वह न गए हों।

महामना मदनमोहन मालवीय का नाम उस समय तक भारत में अमर रहेगा, जिस समय तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय इस संसार में कायम है। यदि मालवीय जी ने अपने जीवन में और कुछ न किया होता तो केवल काशी में विश्वविद्यालय की स्थापना ही उनके जीवन को अमरत्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त थी। लेकिन काशी विश्वविद्यालय के अतिरिक्त प्रयाग में मेक्डानल्ड हिन्दू बोर्डिंग हाउस (जिसका नाम बदल कर अब मालवीय विद्यालय कर दिया गया है) और मिंटो पार्क तथा उसमें महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र का स्मारक महामना ही की देन है।

इन तीन के अलावा, मालवीय जी की देन पत्रकारिता के संसार में अमूल्य है। उन्होंने प्रयाग ही से साप्ताहिक 'अभ्युदय' निकाला, दैनिक 'लीडर' निकाला और दिल्ली से निकलने वाले 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का पोषण किया और काशी से अपने अन्तिम दिनों में 'सनातन धर्म' के प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया। इस सम्बन्ध में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सन् १८८७ ई० में प्रतापगढ़ जिले के अन्तर्गत कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह ने महामना मालवीय जी को अपने दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' का संपादक नियुक्त किया था। इसके बाद कुछ समय के लिए उन्होंने 'इंडियन यूनियन' के संपादकीय विभाग में भी काम किया। उस समय से मालवीय जी को जनमत जाग्रत करने में समाचार-पत्रों की उपयोगिता का जो अनुभव हुआ, उसी के अनुकूल अपने बाद के जीवन में हिन्दी और अंग्रेजी के समाचार-पत्रों की संस्थापना में उनकी बड़ी रुचि रही।

उनकी वाग्मिता; हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी, संस्कृत और उर्दू पर उनका असाधारण अधिकार; उनकी वाणी की अनुपम मिठास; समझौता कराने में उनकी कुशलता; अपने

मत में दृढ़ता और मतभेद के प्रति उनकी सहिष्णुता; उनकी दयालुता और सेवाभाव में उनकी निष्ठा इन गुणों के कारण, महात्मा गांधी के बाद, राष्ट्रनिर्माताओं में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। आचार्य पी० सी० राय के शब्दों में महात्मा गांधी के बाद हमें मालवीय जी के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं दिखाई देता, जिसने देश के लिए इतनी कुरबानी की हो या विविध क्षेत्रों में इतना काम किया हो।

राष्ट्र निर्माण का काम आजीवन उन्होंने किया। कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में वे सम्मिलित हुए और बोले भी। तब से वे फैजपुर कांग्रेस तक (सन् १९३६) उसके प्रत्येक अधिवेशन में जाते रहे और किसी प्रमुख प्रस्ताव पर उनकी वाग्मिता की धूम मचती रही। दो बार उसके सभापति भी वे हुए। हिन्दू महासभा का संचालन भी उन्होंने किया; पर जब उन्होंने देखा कि हिन्दू महासभा दूसरों के हाथों में पड़कर देश-हित को उतना महत्त्व नहीं देती जितना उसे नीति-निर्धारण में देना चाहिए, तब उससे वे अलग हो गए।

महामना मालवीय का नाम भारत के राष्ट्रनिर्माताओं में बहुत ऊँचा है। महात्मा गांधी के नाम के साथ किसी और का नाम यदि लिया जा सकता है तो वह है पंडित मदन-मोहन मालवीय का। बहुत से लोगों ने जन्म-शती के अवसर पर उन्हें 'महर्षि' की उपाधि से विभूषित किया था और दूसरों ने फिर से उनके पुण्य दर्शनों की लालसा की अभिव्यक्ति की थी। विभिन्न लेखकों ने अपने लेखों द्वारा उनके अनेक गुणों को दिखाकर अपनी-अपनी श्रद्धांजलियां उन्हें अर्पित की थीं। इस विषय में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु-मूरत देखी तिन तैसी'। राष्ट्रपिता के नाम के साथ महामना मदनमोहन मालवीय का नाम जोड़कर उनकी पूत स्मृति के प्रति मेरी तो यह विनम्र श्रद्धांजलि काफ़ी होनी चाहिए।

'हिन्दू संस्कृति के प्रभा-पुंज प्रतीक और भारतीय सभ्यता के सबल समर्थक'—डा० हरिशंकर शर्मा ने मालवीय जी की स्तुति में जिन शब्दों का प्रयोग किया है, वे उद्धृत किए जाते हैं—'महामना पंडित मदनमोहन मालवीय भारत की उन भव्य विभूतियों में से थे जिनकी धवल कीर्ति-कौमुदी के पुण्य-प्रकाश से पराधीनता-पाश में पड़े हुए चिन्तन-हीन स्वदेश ने अपना गत गौरव पहचान कर उन्नत शैल-शिखर पर चढ़ने की प्रेरणा पायी'।

मालवीय जी की स्मृति पर पंडित ब्रजमोहन व्यास ने 'सरस्वती' में अपनी श्रद्धांजलि नीचे के इन शब्दों में अर्पित की है—

'महामना जी दीन-दुखियों के लिए कल्पवृक्ष थे। अपने गुणों के भार से नत थे, जैसा कालिदास ने कहा है, 'भवन्ति नम्रोस्तरवः फलोद्गमे', फल से लद जाने पर वृक्ष झुक जाते हैं या, जैसा 'अनीस' ने कहा है, 'जो साहबे-जौहर हैं, झुके रहते हैं अक्सर'। वह पंडितों के लिए आदर्श थे और सच्चरित्रता क्या होती है, उसको परखने की कसौटी थे। चरित्र-संगठन उनका सर्वप्रथम ध्येय था। वह ऐसे समुद्र थे जिसके तट शील बनाते थे। सत्कर्म के करने वाले, निरभिमान, चतुर, उदार पुरुषों में जो गुण होने चाहिए, उनके वह भंडार थे। अपने गुणों के उत्कर्ष से वह अभी तक जीवित हैं।'

सचमुच, मालवीय जी अपने युग की विभूति थे। सैकड़ों वर्ष बाद ऐसे महापुरुष का किसी देश में जन्म होता है। हमारा यह सौभाग्य है कि महामना का जन्म भारत में हुआ।

× × ×

मालवीय जी का जन्म २५ दिसम्बर सन् १८६१ ई० में हुआ था। उनकी जन्म-कुण्डली नीचे दी जाती है—

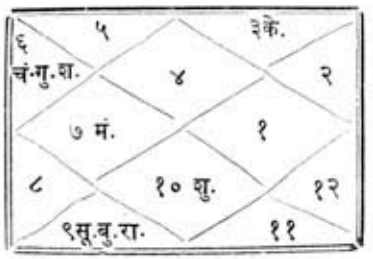

इस कुण्डली पर टिप्पणी करते हुए, श्री ब्रजमोहन व्यास ने 'सरस्वती' में यह लिखा है—'मालवीय जी की कुंडली की विशेषता है गुरु-चान्द्री योग की मनकारक चन्द्रमा और ज्ञानकारक गुरु, दोनों का योग पराक्रम स्थान में है। मेरी तुच्छबुद्धि में तो छठवें घर में चन्द्र, गुरु और शनि इस बात के द्योतक हैं कि मालवीय जी का चन्द्र, शुद्ध हृदय था, मस्तिष्क में गुरु अर्थात् निर्मल बुद्धि (थी), और पैर में शनिश्चर था क्योंकि अपने कर्तव्य-पालन के लिए वह जीवन भर मारे-मारे फिरते रहे। इन ग्रहों के प्रभाव की सत्यता का साक्षी इन पिछले सौ वर्षों का इतिहास है।···ग्रहों के प्रभाव को कोई माने या न माने, वे स्वयं घटनाओं के द्वारा (अपने प्रभाव को) मनवा लेते हैं।

श्री ब्रजमोहन व्यास की इस जन्म-कुंडली के विषय में राय ज्यों की त्यों मैंने दे दी है। फलित ज्योतिष का कोई ज्ञाता ही मालवीय जी की इस जन्म-कुंडली के सम्बन्ध में अपनी राय दे सकता है। मुझे तो इस विषय का कुछ भी ज्ञान नहीं है।

यह वर्ष भारत के लिए बड़ा सुखदायी सिद्ध हुआ। इसी वर्ष भारत के तीन अनमोल रत्न और पैदा हुए, जिन्होंने अपने कामों से भारत के राष्ट्र निर्माण में बहुत योगदान दिया और अपनी कृतियों से या कारनामों से भारत का नाम संसार में उजागर किया। मालवीय जी के अतिरिक्त, जिन तीन महापुरुषों में इसी वर्ष जन्म लिया, उनके नाम हैं—पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर और आचार्य पी० सी० राय।

यहां पर यह प्रश्न उठता है कि मालवीय जी अपने को मालवीय कैसे लिखने लगे? उनका गोत्र तो था भारद्वाज, और चतुर्वेदी था उनका आस्पद। उनके पितामह थे पंडित प्रेमधर जी चतुर्वेदी और उनके पिता का नाम था पंडित ब्रजनाथ चतुर्वेदी। उनकी माताजी का नाम था श्रीमती मूनादेवी। मालवीय जी के पितामह और पिता अपने को चतुर्वेदी लिखते और कहते रहे। फिर क्यों श्री मदनमोहन मालवीय ने अपने को भारद्वाज गोत्रीय चतुर्वेदी न लिख कर 'मालवीय' लिखना शुरू किया? इसी नाम से वह जग-जाहिर हुए।

'मालवीय' का अर्थ हुआ 'मालवा का' यानी मालवा का रहने वाला। किसी समय (सन् १४४९) में मालवीय जी के पूर्वज मुसलमान शासकों के अत्याचार से पीड़ित होकर मालवा को छोड़कर उत्तर प्रदेश के नगरों में बस गए—कुछ लखनऊ में, कुछ मिरजापुर में और कुछ प्रयाग में आकर बसे। मालवीय जी के पुरखे प्रयाग में बसे और अपने को चतुर्वेदी कहकर प्रसिद्ध किया।

इस रहस्य का एक कारण मालूम होता है। मालवीय जी यह नहीं चाहते थे कि उत्तर प्रदेश में रहने के कारण लोग उन्हें 'मथुरा के चौबे' समझ लें। मालवीय जी इस बात की चिंता करते रहे कि मालवा से उनका सम्बन्ध भूल से भी लोगों के दिलों से मिट न जाए। जिस श्रीगौड़ वंशीय ब्राह्मण के घर में मालवीय जी ने जन्म लिया था, उसे बाद में लोग न भुला दें, इसलिए वह अपने को 'मालवीय' लिखने लगे। मालवीय जी यह भी नहीं चाहते थे कि मालवा के श्रीगौड़ ब्राह्मणों से उनका कोई सम्बन्ध न रह जाए। बाद में उन्होंने सात व्यक्तियों का एक शिष्ट मंडल मालवा भेजा और मालवा के श्रीगौड़ ब्राह्मणों को अपने घर में आमंत्रित कर उन्हें भोजन कराया। जो लोग मालवा से भागकर उत्तर प्रदेश के प्रयाग आदि नगरों में आ बसे थे, , उनका मालवा से सम्बन्ध था। इसी बात पर जोर देने के लिए मालवीय जी ने अपने को 'मालवीय' कहना आरम्भ किया।

श्रीगौड़ ब्राह्मण यद्यपि मालवा से आए थे, लेकिन मालवीय जी रोटी-बेटी का सम्बन्ध पंच गौड़ों में करने के पक्ष में थे। इसीलिए संभव है कि उन्होंने आदि में मालवा के श्रीगौड़ ब्राह्मणों से अपना संबन्ध फिर से स्थापित किया। पंच गौड़ ब्राह्मणों की संख्या बहुत बड़ी है, और पंच-गौड़ ब्राह्मण की कन्या का विवाह उसी की बिरादरी में आसानी से हो सकता है। इस सम्बन्ध में उनके क्या विचार थे, यह इसी से प्रकट है कि उन्होंने अपनी एक पौत्री का अंतर्जातीय विवाह किया।

वह हिन्दू समाज में सुधार करने के पक्षपाती थे, लेकिन वह वहीं तक जाने के लिए तैयार थे, जिसको वह शास्त्रसम्मत और विधि-विहित मानते थे। हिंदू समाज में धीरे-धीरे सुधार करना वह चाहते थे। जैसा हमने अपने एक लेख में कहा है, वह क्रान्ति के नहीं बल्कि विकास के पुजारी थे। किन्तु आजकल के कुछ हिन्दू नेता समय की गति को देखते हुए अपने समाज में क्रान्तिमय सुधार करना चाहते हैं। उनका कहना है कि यदि भारत को सभ्य संसार की बराबरी करनी है तो समाज में सुधारों की गति बहुत तीव्र होनी चाहिए।

× × ×

मालवीय जी का जन्म प्रयाग के एक मुहल्ले—कूचा सांवलदास, भारती-भवन पुस्तकालय के पास में—एक गरीब ब्राह्मण के घर में हुआ। उनके पिता, पंडित ब्रजनाथ चतुर्वेदी, संस्कृत के विद्वान् और श्री भागवत के प्रसिद्ध कथावाचक थे। उनके कथा बाचने का ढंग इतना मनोहारी था कि उनकी कथा को सुनने के लिए दूर-दूर से लोग आया करते थे। राजे-महराजे भी उनका आदर करते थे।

जिस दिन मालवीय जी का जन्म हुआ, कई सौ वर्ष पूर्व उसी दिन, कहते हैं, प्रभु ईसा मसीह का जन्म हुआ था। वह संसार के बहुत बड़े भाग में ईश्वर की तरह पूजे जाते

हैं और सभ्य संसार के विचारक उनके उपदेशों का मनन करते रहते हैं। प्रभु ईसा मसीह और श्री मदनमोहन मालवीय ने गरीब परिवारों ही में जन्म लिया था। एक ने बढ़ई के घर में, और दूसरे ने कथा-वाचक के घर में। एक विश्व के पथ प्रदर्शक माने जाते हैं, और दूसरे का भारत के राष्ट्रनिर्माताओं में बहुत ऊँचा स्थान है। दोनों का जीवन पवित्र था। दोनों में करुणा थी, दयालुता थी और दोनों ही परदुःखकातर थे। दोनों ही में सेवा के प्रति निष्ठा थी और अपने अनुचरों की सेवा करने में दोनों को आनन्द का अनुभव होता था। दोनों में आत्म-त्याग की भावना प्रबल थी, या यों कहा जाए कि दोनों ही का जीवन आत्म-त्यागी का जीवन था। प्रभु ईसा मसीह के जन्म दिन मालवीय जी का भी जन्म हुआ, और इसी पूत तिथि की पवित्रता को मालवीय जी ने अपने जीवन में अक्षुण्य रखा। प्रभु ईसा मसीह से मालवीय जी की तुलना करना हमारा ध्येय नहीं है। कहां प्रभु ईसा मसीह और कहां श्री मदनमोहन मालवीय! लेकिन प्रभु ईसा मसीह के जन्म दिन की पवित्रता को अपने जीवन में मालवीय जी ने अक्षुण्य रखा।

× × × ×

जब मालवीय जी कुछ बड़े हुए और घुटनों के बल चलने लगे तब वह रेंगते-रेंगते छत पर पहुँच गए। उनका छत पर पहुँचना था कि वह धड़ाम से नीचे गिर पड़े। उस समय उनकी माता, श्रीमती मूनादेवी, रसोई घर में थीं। वह दौड़ कर बाहर निकल आयीं और पंडित ब्रजनाथ से कहने लगीं कि 'मदन मोहन के गिरने की तुम्हें कोई फ़िक्र नहीं, तुम तो भगवान का जाप करने में लगे हो।' वह भगवान को प्रणाम कर बाहर निकल आए और अपनी स्त्री को ढाढस बँधाते हुए अपने कमंडलु से बालक मदनमोहन के मुंह पर छींटा दिया। बेहोश मदनमोहन तुरन्त चैतन्य हो गया और वह तत्काल फिर ऊपर चढ़ने के लिए मचलने लगा। इस घटना से माता तो विह्वल थीं, पर पंडित ब्रजनाथ जी पर चिंता की कुछ भी झलक न दिखायी पड़ी।

मालवीय जी जब कुछ बड़े हुए, तब उनके पिता, पंडित ब्रजनाथ ने श्रीमद् अक्षर पाठशाला में उनका नाम लिखा दिया। यह पाठशाला अब 'धर्म ज्ञानोपदेश पाठशाला' के नाम से प्रसिद्ध है, और उसमें शास्त्री परीक्षा तक की पढ़ाई का प्रबन्ध है। पर जिस समय मदनमोहन का नाम इस पाठशाला में लिखा गया था, उस समय वहां नाम मात्र की विद्या पढ़ाई जाती थी। संध्योपासना और चरित-गठन पर पाठशाला में अधिक ध्यान दिया जाता था। थोड़े ही समय में मदनमोहन ने इस पाठशाला में पढ़ाई जाने वाली विद्या सीख ली। इसके बाद, उनका नाम लिखाया गया 'विद्या-धर्मप्रवर्द्धनी सभा' की पाठशाला में। इस पाठशाला की देख-रेख करते थे पंडित देवकीनंदन। वह इस बालक को ले जा कर माघ मेले में उससे व्याख्यान दिलवाते थे। मैंने प्रयाग में सुना है कि मालवीय जी जब बालक थे, तब माघ मेले में वह प्रायः व्याख्यान देते और बांसुरी बजाते थे। 'आगे चल कर सारगर्भित व्याख्यान देने की उनकी शक्ति इतनी बढ़ी कि सम्पूर्ण भारत में उनकी टक्कर के इने-गिने वक्ता थे। लेकिन वाणी की मिठास में उन्हें कोई नहीं पाता था।'

पंडित ब्रजनाथ ने मदनमोहन का ९ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत-संस्कार कर दिया। पिता ने स्वयं आचार्य का काम संपादन किया। उन्हीं ने बालक को गायत्री-मंत्र की दीक्षा दी

थी। प्रथा के अनुसार, मालवीय जी ने अपनी मां के सामने झोली फैला कर कहा कि मां ! मुझे भिक्षा दो।' कहते हैं कि उस समय मां की आंखों में आंसू आ गए और उन्होंने बालक का पात्र अपनी भिक्षा से भर दिया। इस घटना पर एक लेखक की टिप्पणी है कि 'उस समय यह कौन जान सकता था कि यह बालक भारत माता से, जीवन भर, उसकी संतान के लिए, दर-दर भीख मांगता फिरेगा और भारत-माता उसकी झोली को उसी प्रकार भरेगी जैसे उसकी माता ने अपनी संतान की उसके यज्ञोपवीत के दिन भरी थी।

अब मदनमोहन ब्रह्मचारी हो गए। धार्मिक रुचि उनमें पहले ही से थी और गायत्री-मंत्र जपने की ओर उनका विशेष अनुराग था। कहते हैं कि बचपन ही में उन्हें गायत्री-मंत्र के जाप की धुन सवार हुई। किसी बिल्कुल एकान्त स्थान पर शाम को वह घर से निकल जाते और वहीं गायत्री-मंत्र का जप किया करते थे। वह स्वयमेव लिखते हैं —'धार्मिक भावों की ओर मेरा झुकाव लड़कपन से ही था। स्कूल जाने के पहले मैं रोज हनुमान जी के दर्शन करने जाता और यह श्लोक पढ़ता था :—

"मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि॥"

लोकनाथ महादेव के पास मुरलीधर चिमनलाल गोटेवाले चबूतरे पर पंडित ब्रजनाथ जी कथा बांचते थे। मुट्ठीगंज के मंदिर में भी वह कथा बांचने जाया करते थे। मालवीय जी का कहना है कि "मैं दोनों जगह कथा सुनने के लिए नित्य जाता था और उनकी चौकी के पास बैठ कर बड़े ध्यान से उनकी कथा को सुनता था। पिताजी ने एक दिन कहा कि 'तू बड़ा भक्त है।' यह सुन कर मुझे बड़ी खुशी उत्पन्न हुई।"

मालवीय जी आगे कहते हैं—"मैं गायत्री का जाप बहुधा किया करता था। एक बार घर वालों को शंका हुई तो वे इस फिक्र में पड़ गए कि कहीं मैं साधु न हो जाऊँ। इसलिए वे मेरी निगरानी रखने लगे।" घर वालों की यह चिन्ता निर्मूल नहीं थी। मालवीय जी ने एकान्त में गायत्री मंत्र का जाप करना तो छोड़ दिया, लेकिन उनकी धार्मिक प्रवृत्ति ज्यों की त्यों बनी रही।

'विद्या-धर्म-प्रवर्द्धनी सभा' की पाठशाला की शिक्षा समाप्त कर, मालवीय जी का नाम एक अंग्रेजी स्कूल में लिखाया गया। यह अंग्रेजी स्कूल था इलाहाबाद जिले का सरकारी स्कूल, जो उस समय चौक में घंटाघर के पीछे, जहाँ अब महापालिका का चुंगीघर है, लगता था। इसी स्कूल की तीसरी कक्षा में मालवीय जी भर्ती हुए।

इतने बड़े परिवार का भोजन बनाना और फिर ठाकुर जी का भोग लगाना इन दो बातों ने बालक मदनमोहन के लिए एक समस्या खड़ी कर दी। श्रीमती मूना देवी यदि रसोई जल्दी बना दें तो पंडित ब्रजनाथ जी को भगवान के भोग लगाने में बड़ी देर लगती थी। इसलिए मदनमोहन बासी रोटी, मट्ठे के साथ, खाकर स्कूल जाते थे। कभी-कभी घर में ऐसा भी होता था कि उन्हें स्कूल जाने के समय मट्ठे के साथ रोटी भी नहीं मिलती थी। घर भर चना चबाकर गुजर-बसर करता था। शुद्ध उच्चारण और सुन्दर लिखने का उन्हें बचपन ही से अभ्यास था। वह अपने अध्यापकों, विशेष कर स्कूल के हेडमास्टर, मिस्टर गार्डन, के प्रिय पात्र बन गए।

यहां पर यह सवाल उठता है कि सरकारी स्कूल में बालक मदनमोहन का भर्ती होना कैसे हुआ ? उनके पिता की तो आकाशी वृत्ति थी। उनका बढ़ता हुआ परिवार था और किसी तरह से वह गरीबी में अपने दिन काट रहे थे। पर परिवार की ग़रीबी कभी मदन-मोहन की शिक्षा में बाधक नहीं हुई। उनकी मां के हाथ में सोने के कड़े थे। उन्हीं को गिरों रखकर लड़के की माहवारी फीस अदा की जाती थी; और जब घर में पैसे हुए, तब उन्हें देकर कड़े घर लौट आते थे। माता-पिता की यह दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि इस बालक की पढ़ाई में उनकी गरीबी किसी तरह बाधक नहीं होगी और इसके लिए जो कुछ भी कठिनाई झेलनी पड़े, वह झेली जाए।

मदनमोहन बड़ी लगन से विद्याध्ययन करने लगे। घर में पढ़ने की कोई सुविधा नहीं थी, घर छोटा और परिवार बड़ा था। पढ़ने के लिए अलग शांत स्थान निकल आना असम्भव था। घर से थोड़ी दूर पर सोहनलाल की बगिया नामक एक स्थान था। उस बगिया में तीन-चार बेल के वृक्ष थे और दो-तीन टूटी-फूटी कोठरियां थीं। इन्हीं कोठरियों में से एक में बालक मदनमोहन के सहपाठी, गंगाप्रसाद, रहते थे। बस, मदनमोहन ने उन्हीं के यहां पढ़ना तय किया। स्कूल से आने के बाद और भोजनादि से निवृत्त होकर मदनमोहन एक लालटेन और किताबें लेकर चले जाते थे और दूसरे दिन प्रातःकाल घर लौट आते थे।

इसका यह अर्थ नहीं कि मदनमोहन दिन-रात पढ़ने ही में लगे रहते थे। पढ़ते तो वह अवश्य थे, लेकिन अधिक समय खेल-कूद में, गप्प-शप्प और शरारत में बीतता था खिलाड़ी लड़कों का एक गुट था, जिसके अगुआ मदनमोहन थे। कोई भी लड़का इन पर शान नहीं गांठ सकता था और किसी का आंख तरेरना वह सह नहीं सकते थे। वाद-विवाद में हार मान लेना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इसीलिए कभी-कभी वाद-विवाद में मारपीट की नौबत आ जाती थी। उससे भयभीत होकर भागना मदनमोहन नहीं जानते थे।

वास्तव में, कहते हैं, उनके स्कूल के दिन बड़ी मस्ती के दिन थे। संगीत से इन्हें प्रेम था। वह सितार बहुत अच्छा बजाते थे। कविता करने का इन्हें शौक था और भाषण का उन्हें चस्का था। उद्दंड होने पर भी कभी उन्होंने कुपथ में पैर नहीं डाला, जिससे इनके माता-पिता का सिर नीचा हो। १८ वर्ष की अवस्था में इन्होंने ऐंट्रेंस और सन् १८८१ ई० में एफ०ए० पास किया। सन् १८८१ में जब इनकी २० साल की अवस्था थी, मिरजापुर के श्री नन्दलाल जी ने अपनी तीसरी कन्या, कुन्दनदेवी से इनका विवाह कर दिया।

इसकी एक रोचक कहानी है। मिरजापुर में अपने चचा के यहां मदनमोहन पधारे थे। एक सभा में उनका भाषण हुआ और श्री नन्दलाल जी ने, भाषण सुनने के बाद, यह तय किया कि उनकी तीसरी कन्या के लिए उपयुक्त वर मदनमोहन से अच्छा दूसरा नहीं मिल सकता। इसी से उन्होंने अपनी तीसरी कन्या का इनके साथ विवाह कर दिया। यहीं पर मालवीय जी के बचपन की यह कहानी समाप्त होती है।

जिन घटनाओं का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनसे महामना मदनमोहन मालवीय जी के जिन गुणों का परिचय हमें मिलता है, उनसे इनका नटखटपन इनके साहस को सूचित

करता है; छत से आंगन में गिर पड़ना, होश आने पर फिर उत्सुकता दिखाना बालक के साहस का परिचायक है। यही गुण हमें उस समय दिखाई देता है जिस समय गुट बांध कर बालक मदनमोहन ऊधम मचाते थे; मारपीट में अगुआ बनना उनके स्वभाव ही में शामिल था।

दूसरी बात जिसे हम देखते हैं, वह थी उनकी धार्मिक प्रवृत्ति। स्कूल जाते समय नित्य हनुमान जी के दर्शन करने और गायत्री के जप की धुन से महामना के भावी जीवन की धार्मिक निष्ठा की सूचना हमें मिलती है। मरने के समय तक उनकी सनातन धर्म में आस्था बनी रही। सगुण की उपासना अन्त तक उनमें उसी तरह दिखाई देती है, जिस तरह वह स्कूल के दिनों में नित्यप्रति हनुमान जी की मूर्ति के दर्शन करते थे। उनकी इस धार्मिक प्रवृत्ति में समय की गति के कारण कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जो वह हाई स्कूल के दिनों में थे, वही बाद में भी अन्त तक बने रहे। उनकी धार्मिक कट्टरता, यदि हम उसे कहें, उनकी विशेषता थी।

दूसरा अध्याय

छात्र के रूप में मालवीय जी

मालवीय जी सन् १८८१ में एफ० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इसके बाद उन्होंने बी० ए० में अपना नाम लिखाया। वहीं महामहोपाध्याय पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य के संपर्क में वह आए। श्री भट्टाचार्य जी म्योर सेन्ट्रल कालेज में संस्कृत के प्रधान अध्यापक थे और बी० ए० में मालवीय जी ने संस्कृत ले रखी थी। इसीलिए दोनों एक दूसरे के संपर्क में आए। यही पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य मालवीय जी के गुरुदेव थे। सन् १९३५ में उनकी छोटी-सी जीवनी मालवीय जी ने लिखी थी। जिन शब्दों में अपने गुरुदेव के प्रति श्रद्धांजलि महामना मदनमोहन मालवीय जी ने अर्पित की थी, उस श्रद्धांजलि का एक अंश ज्यों का त्यों हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

'सागर से वह काशी में आए और वहां संस्कृत कालेज में अंग्रेजी के अध्यापक होकर ढाई वर्ष तक रहे····· पीछे जब टीबो साहब, जो जर्मन थे, इस पद के लिए स्थायी रूप से नियुक्त होकर आए, तब पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में संस्कृत के प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए।

'वह बड़े ही धर्मनिष्ठ थे और किसी के साथ तनिक भी पक्षपात नहीं करते थे। प्रयोजन पड़ने पर (वह) बड़े ही स्पष्ट वक्ता थे। इस कारण अक्सर लोग उनसे चिढ़ जाते थे, पर उनकी न्यायपरायणता के कारण वे सदा उनका सम्मान करते थे।

'हिन्दी के वह बड़े प्रेमी थे और उसकी उन्नति के लिए सदा उत्साह दिखाते थे। उस समय हिन्दी भाषा में कोई अच्छी मासिक पत्रिका नहीं थी। इस अभाव को दूर करने के लिए उन्होंने बहुत चेष्टा की थी, और जब प्रयाग के इंडियन प्रेस ने 'सरस्वती' नाम की पत्रिका निकाली, तब उनको बड़ा संतोष हुआ। वह 'काशी नागरी-प्रचारिणी सभा' के सदस्य और शुभेच्छु थे।

'हिन्दू लड़कों का स्वधर्म में छात्रावस्था ही से प्रेम बना रहे और वे दूसरों के भड़काने से न बहकें, इस अभिप्राय से जब सन् १८७९ ई० में श्रीमती ऐनी बेसेंट, बाबू गोविन्ददास, डा० भगवानदास, बाबू उपेन्द्रनाथ बसु तथा अन्य सज्जनों ने सेन्ट्रल हिन्दू कालेज खोला तब पंडित जी ने उसमें उत्साहपूर्वक सहयोग दिया। फिर जब काशी विश्वविद्यालय स्थापित करने की चर्चा उठी, तब फिर पंडित जी का उत्साह दुगना हो गया। यद्यपि उस समय उनकी अवस्था अधिक हो गयी थी, तथापि उस कार्य में उन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया। विश्वविद्यालय के स्थापित हो जाने पर वह प्रो-वाइस चांसलर का उच्च पद ग्रहण कर फिर काशी गए और सन् १९१६ से सन् १९१८ तक बड़े परिश्रम और उत्साह से उस पद पर काम करते रहे। एक नवीन आदर्श विश्वविद्यालय की स्थापना और उसका संगठन करने के लिए वृद्धावस्था में उनको बहुत परिश्रम करना पड़ा। इसका यह परिणाम हुआ कि उनके नेत्रों की ज्योति जाती रही और शरीर

भी टूट गया । अतएव ६१ वर्ष की अवस्था में वह प्रयाग के अपने मकान में लौट आए । तीन वर्ष बाद उनका शरीर भी छूट गया । १८ अक्तूबर, सन् १९२१ ई०, को अरुणोदय के समय वह उसी भवन में परम ब्रह्म में लीन हो गए ।

पंडित जी बाल्यावस्था ही से बलिष्ठ, तेजस्वी, और उद्यमशील थे । छात्रावस्था से प्रौढ़ावस्था तक (वह) बराबर व्यायाम करते रहे । गृहस्थी में रहकर भी वह ब्रह्मचर्य का पालन करते थे । उनके ओजपूर्ण नेत्र उनके नाम के सार्थक थे । वह सत्यभाषी और निष्पक्ष वक्ता थे । घुमा-फिरा कर बातें करना (वह) नहीं जानते थे । वह परमार्थ साधन में नियम पूर्वक लगे रहते थे । अपने जीवन की दिनचर्या में वह यह बात दिखला गए हैं कि अपनी गृहस्थी का काम और पारमार्थिक काम इन सभी की ओर ध्यान रख कर और इनका सामंजस्य कर मनुष्य को किस तरह कर्मशील होना चाहिए । वस्तुतः वह एक गृहस्थ योगी थे ।

पंडित जी के शरीर में जब तक बल रहा, तब तक वह नित्य सायंकाल त्रिवेणी तट को जाते थे । सूर्य की उपासना भी (वह) विशेष रूप करते थे । रात में तीन बजे उठकर पूजनादि करके सूर्योदय के समय अष्टोत्तर शत नाम का पाठ कर (वह) उनको साष्टांग प्रणाम करते थे ।

पंडित जी का वासस्थान भी बड़ा उत्तम था । उनका मकान प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में गंगा तट पर प्राचीन दशाश्वमेध जी से लगा हुआ था । इसे उन्होंने सन् १८७९ ई० में ख़रीदा था । जिस समय वहाँ पहले कोई मकान न था, उस समय झोपड़ी बना कर एक बड़े विद्वान् महापुरुष रहते थे । उनका नाम शिव शर्मा था । वह बाल ब्रह्मचारी नवयुवक महात्मा नेपाल देश के थे । उन्हीं के नाम पर पंडित जी ने अपने व्यय से एक संस्कृत पाठशाला स्थापित करायी, जिसका प्रबन्ध काशी विश्वविद्यालय करता है । वह हिन्दुओं की प्राचीन संपत्ति और धर्म के प्राणस्वरूप शास्त्रों का संरक्षण अत्यावश्यक समझते थे । इसका अनादर होने से इसके मलिन हो जाने की भी उन्हें बड़ी आशंका थी । अतएव संस्कृत विद्या द्वारा उपार्जित अपनी स्थावर-जंगम सब संपत्ति (वह) इसके पोषण के लिए अर्पित कर गए । वह काशी विश्वविद्यालय के हाथ में सुरक्षित है और वहाँ के प्रबन्ध से उस धन द्वारा अपने गंगातट के मकान में पाठशाला चलाने की व्यवस्था वह अपनी मृत्यु के पहले ही कर गए थे ।

मातः ! फिर पंडित बेणीमाधव भट्टाचार्य (पंडित आदित्य राम जी के बड़े भाई) और पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य के समान गृहस्थ, तपस्वी, त्यागी भगवद्भक्त, देशभक्त, हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति के प्रेमी, धर्म में दृढ़ पुरुषों को जन्म दे ।

इन महात्माओं के भक्त और स्नेह-भाजन
मदनमोहन मालवीय

मालवीय जी की लिखी हुई श्री आदित्यराम भट्टाचार्य की जीवनी से इतना लंबा उद्धरण हमने इसलिए दिया है कि आजकल के पाठक मालवीय जी के लिखने की शैली से परिचय प्राप्त कर लें । इसका दूसरा भी प्रयोजन है । पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य के संपर्क का मालवीय जी पर पड़े व्यापक प्रभाव का पाठकों को भी कुछ न कुछ आभास मिल

जायगा । मालवीय जी ने स्वयं यह लिखा है कि उनके संपर्क में आने से मुझमें देशभक्ति का भाव दृढ़ होता गया । मालवीय जी की शास्त्रों में बड़ी आस्था थी । इसका बहुत कुछ असर पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य के संपर्क में आने से अपने गुरुदेव की तरह वह धर्म के प्राणस्वरूप शास्त्रों का संरक्षण अत्यावश्यक समझते रहे और उन्हें भी यह आशंका उसी तरह सताती रही, जिस तरह वह पंडित आदित्य राम भट्टाचार्य को सताती रही, कि इन शास्त्रों का अनादर होने से उनका मलिन हो जाना अवश्यंभावी है । मालवीय जी के गुरुदेव ने अपने प्रयाग वाले मकान में शास्त्रों की रक्षा के लिए एक पाठशाला खोली; और उनके शिष्य, पंडित मदनमोहन मालवीय ने प्राचीन शास्त्रों की रक्षा के लिए काशी में विश्वविद्यालय की स्थापना की । शास्त्रों के प्रति मालवीय जी की [illegible]ा, श्री [illegible]ा और निष्ठा में पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य का बहुत बड़ा हाथ है, इसे हमें नहीं [illegible]ा चाहिए ।

मालवीय जी कहा करते थे कि स्वदेशी का व्रत उन्होंने तब लिया था जब वह छात्र थे । इसमें भी पंडित आदित्यराय भट्टाचार्य का प्रभाव दिखायी देता है, क्योंकि मालवीय जी ने अपने गुरुदेव की जीवनी में यह बात स्वयं स्वीकार की है कि पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य 'देश की बनी हुई वस्तुओं के व्यवहार के विषय में बड़े कट्टर थे ।' इसी तरह हिन्दू संगठन की ओर मालवीय जी को जो प्रेरणा मिली, वह भट्टाचार्य जी ही की देन है ।

ऐसे पवित्रात्मा अध्यापक के संसर्ग में आने से बालक मदनमोहन का संपूर्ण जीवन पवित्र हो गया । यदि श्री भट्टाचार्य जी के समान अध्यापक और उप-कुलपति हमारे विश्व-विद्यालयों में हों तो उनमें आज का सा गन्दा वातावरण न रह जाए ।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि म्यौर सेन्ट्रल कालेज में मालवीय जी ने बी० ए० में संस्कृत ली थी और संस्कृत के प्रधानाध्यापक थे पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य । पंडित जी समान रूप से सब को पढ़ाते थे । किसी में कोई भेदभाव न करते थे । पंडित जी के पढ़ाने की शैली बड़ी मनमोहक थी । ऐसे गुरुदेव को पाकर मदनमोहन खिल उठे । सोने में सुहागा मिल गया ।

पंडित आदित्यराम के प्रति मालवीय जी के हृदय में अगाध आदर था । उदाहरणार्थ, एक घटना का उल्लेख यहाँ पर कर देना आवश्यक है । एक दिन पंडित भट्टाचार्य जी प्रातः काल गंगा-तट से लौट रहे थे । उसी समय मालवीय जी वहाँ पर आ गए । दोनों की भेंट हुई । मालवीय जी ने पंडित आदित्यराम को लेटकर, सब वस्त्र धारण किए हुए, साष्टांग प्रणाम किया । यह उस समय की घटना है जब मालवीय जी का नाम देश-देशान्तर में फैल गया था और पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य का नाम म्यौर सेन्ट्रल कालेज के विद्यार्थियों ही तक सीमित था । लेकिन अपने गुरुदेव को मालवीय जी नहीं भूले और उनके श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम करते रहे ।

मालवीय जी का म्यौर सेंट्रल कालेज का जीवन बड़े सुख का जीवन था । उन्हें इसमें आनन्द आता था कि अधिक से अधिक सभा-सोसायटियों का भार वह वहन करें । एक ओर तो मालवीय जी पर पढ़ने-लिखने का भार था, दूसरी ओर उनके द्वारा संचालित सभा-सोसायटियों का बोझ । इससे उनका स्वास्थ्य ख़राब हो गया और वह रोगग्रस्त हो गए ।

इस सम्बन्ध में प्रयाग के प्रतिष्ठित वैद्य, पंडित शिवराम पांडे, के उस पत्र को उद्धृत कर देना अनुचित न होगा, जिसमें उन्होंने मालवीय जी की एक बीमारी का हाल लिखा है:—

'मुझे खूब स्मरण है कि इस बार मैंने बहुत दिनों तक मालवीय जी की दवा की थी। मगर किसी प्रकार उनका रोग दूर ही नहीं होता था। मदनमोहन का विश्वास मेरे ऊपर अचल था। उनके घर वाले उनसे बहुत नाराज होते थे। कहते थे कि शिवराम की दवा मत करो। वह तुम्हारा बहुत रुपया खर्च कराते हैं और तुम्हें ठगते हैं। उनको मदनमोहन का उत्तर विलक्षण था। वह लोगों से यही कहते थे कि 'मेरे ही कुपथ्य से रोग नहीं छूट रहा है। शिवराम जी की चिकित्सा में और उनकी आदमियत में कोई कमी नहीं है।'

मगर घर वाले चि[illegible] थे। मैं भी परेशान था। मेरी दवा में रोग को दूर करने की शक्ति जरूर थी, लेकिन पथ्यहीन को पथ्य से रहने के लिए विवश करने की ताक़त उसमें नहीं थी। मैंने मालवीय जी के घर वालों से कहा कि इनके बोलने की आदत बहुत चढ़ी-बढ़ी है। जब तक वह आदत नहीं छूटेगी, तब तक उनके मुंह से खून का जाना बन्द नहीं होगा। मगर मदनमोहन को बोलने का नशा था। चेष्टा करने पर भी वह बोलना छोड़ नहीं सकते थे।

'मदनमोहन के बड़े भाई, पंडित लक्ष्मीनारायण, को मेरी सलाह जँच गयी। फिर क्या था! वह छड़ी लेकर मदनमोहन के साथ रहने लगे। एक दिन ऐसा हुआ कि मालवीय जी से एक बड़े संभ्रांत व्यक्ति मिलने आए। उस अवसर पर मैं भी मदनमोहन के पास उपस्थित था। उस प्रतिष्ठित व्यक्ति से और मालवीय जी से बातें होने लगीं। प्रहारी पंडित लक्ष्मीनारायण भी छड़ी लिए हुए मौजूद थे। जब उन्होंने देखा कि बातचीत का तांता अब पथ्य से रहने की सीमा का उल्लंघन कर रहा है, तब उन्होंने इस तरफ मदनमोहन का ध्यान आकर्षित किया। मदनमोहन तो (बातों में) लीन थे। उन्हें पथ्यापथ्य की कोई परवाह नहीं थी। लाचार होकर लक्ष्मीनारायण जी को कहना पड़ा कि 'बस, भाई।' उस समय मदनमोहन को बहुत बुरा लगा। वह झुंझला गए। यह कहते हुए, वह वहाँ से चले गए—'हमें ऐसी दवा की जरूरत नहीं है।' मगर लक्ष्मीनारायण जी पर उनकी झुंझलाहट का कुछ असर नहीं पड़ा। उन्होंने छड़ी लेकर मदनमोहन का साथ नहीं छोड़ा।'

यहीं पर कुत्ते वाली घटना का उल्लेख कर देना भी उचित है। इस घटना का वर्णन भी प्रयाग के पंडित शिवराम वैद्य ने बड़े ही रोचक ढंग से किया है। उनके पत्र का उद्धरण देकर, मैं इस घटना का संक्षेप में वर्णन कर देना चाहता हूँ ताकि पाठक यह जान लें कि जीवन के आरम्भिक काल ही से मालवीय जी में प्राणिमात्र के दुःख को दूर करने की प्रबल कामना विद्यमान थी। घटना इस प्रकार है 'किसी कुत्ते के घाव में कीड़े पड़ गए थे। वह बहुत बेचैन था। उसे कहीं पर शान्ति नहीं मिलती थी। मालवीय जी उस समय छात्र थे। कुत्ते का यह बुरा हाल देखकर उनसे नहीं रहा गया। दौड़े हुए वह पंडित शिवराम वैद्य के पास गए। कुत्ते की मुसीबत का सारा हाल कहा और दवा मांगी। वैद्य जी ने बहुत समझाया कि ऐसे कुत्ते प्रायः पागल हो जाते हैं, तुम्हें यदि वह काट लेगा तो

बड़ा अनर्थ होगा। पर मालवीय जी एक न माने। लाचार होकर वैद्य जी को दवा देनी ही पड़ी। दवा लेकर मदनमोहन कुत्ते के पास पहुँचे और एक बाँस में कपड़े को लपेट कर उस पर दवा छिड़की और बाँस बढ़ा कर मदनमोहन ने उस कुत्ते के घाव पर दवा लेप दी। पहले तो कुत्ता गुर्राया, लेकिन ज्यों-ज्यों उसे आराम पहुँचा त्यों-त्यों वह अपना गुर्राना भूल गया। अन्त में वह कुत्ता सुख से सो गया। तब कहीं मदनमोहन कुत्ते के पास से हटे।'

पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य के उपदेश और प्रोत्साहन से 'हिन्दू समाज' के सदस्य वह बने। उसके बाद उन्होंने 'मध्य हिन्दू समाज' की स्थापना की। जो अधिवेशन सन् १८८४ में हुआ, वह दशहरे के अवसर पर महाराजा बनारस की विशाल कोठी में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। उसके सभापति थे बारा के राजा, श्री महावीरप्रसाद नारायण सिंह जी। उन्हीं दिनों कालाकांकर के राजा, स्वर्गीय रामपाल सिंह जी, नये-नये विलायत से लौटे थे। वह इस जलसे में पेश-पेश रहते और सभापति के काम में बीच-बीच में उठकर बाधा डालते थे। कोई भी व्याख्यान दे रहा हो, वह उठकर स्वयं बोलने लगते थे। उनके इस व्यवहार से सभी लोग असन्तुष्ट थे, लेकिन किसी की हिम्मत नहीं पड़ी कि राजा साहब की इस बेजा हरकत को रोक दे। आखिर में मदनमोहन से न रहा गया। जब राजा साहब इस प्रकार बाधा डालते, तब मदनमोहन तुरन्त उठकर उनके कान में कुछ कहने लग जाते थे। वह उन्हें बोलने से रोकते थे।

राजा साहब को उनके इस प्रकार रोकने का साहस खलता था, पर वह कर ही क्या सकते थे। गलती तो राजा साहब ही की थी। वह अधिवेशन बड़े ठाठ-बाट से समाप्त हुआ। इन दिनों राजा साहब 'हिन्दुस्तान' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकालते थे। उसमें उन्होंने अधिवेशन की प्रशंसा तो की, पर यह भी लिखा कि उसमें दो-एक लौंडे ऐसे ढीठ थे कि बड़े-बड़े राजा-रईसों और बावदूकों (वक्ताओं) के व्याख्यान देते समय उनके कान में सलाह देने की धृष्टता करते थे।

राजा साहब का इशारा-यह स्पष्ट है—मालवीय जी की ओर था, पर वह गुणग्राही थे। बाद को मालवीय जी ने सन् १८८६ में कांग्रेस के कलकत्ता वाले दूसरे अधिवेशन में जो वक्तृता दी, उसकी सारे देश में धूम मच गयी। तब राजा साहब ने तुरन्त अपने 'हिन्दुस्तान' पत्र का सम्पादक बनने का आमंत्रण मालवीय जी को दिया। २५०) रु० माहवार का वेतन भी उन्होंने 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक के लिए नियत किया, पर इसकी कथा हम यहाँ नहीं कहना चाहते। आगे के अध्याय में इसका वर्णन होगा। इसे यहीं पर छोड़ देना उचित है।

कविता और संगीत में उनकी देन पुश्तैनी थी। कालेज के दिनों में उन्होंने प्रयाग की एक मण्डली द्वारा अभिनीत 'शकुन्तला' नाटक में 'शकुन्तला' का, और म्यौर सेंट्रल कालेज में अभिनीत 'मरचेन्ट आफ़ वीनिस' में 'पोरशिया' का उत्कृष्ट अभिनय किया था जिसे देखकर दर्शकों ने वाह-वाह की झड़ी लगा दी थी। उनके सामने सचमुच 'शकुन्तला' अपने पूर्ण वैभव में मूर्तिमती होकर प्रकट हो गयी; और 'पोरशिया' का अभिनय करने में दर्शकों ने यह कहा कि यदि कोई अंगरेज महिला उस पार्ट को अदा करती तो उसे भी इतनी सफलता न मिलती जितनी मालवीय जी को मिली। जिस समय 'पोरशिया' ने दया की याचना

की, उस समय श्रोताओं की आँखों में आँसू आ गए। यह मालवीय जी के बायें हाथ का खेल था कि श्रोताओं को द्रवित कर दें।

मालवीय जी 'मकरन्द' उपनाम से कविता भी करते थे। उन्होंने चौदह वर्ष की अवस्था में निम्न दोहे की रचना की, जिसमें शृंगार रस से दूर भागने की शिक्षा है—

वह रस ऐसो है बुरो मन को देत बिगारि।
याते पास न जाइए जब लौं होय अनारि॥

मालवीय जी 'मकरन्द' उपनाम से भारतेन्दु के दरबार में समय-समय पर कविता भेजते थे। एक दफ़ा की बात है कि मालवीय जी ने भारतेन्दु के दरबार में निम्न कविता भेजी—

मांगत मौतिन माल नहीं, नहिं मांगत तो सौं मैं भोजन पानी,
सारी न मांगत हौं मकरन्द, न थारी अनेक सुगन्धन सानी।
मांगत हौं अधरारस रंचक, सोउ न दीजतु हौ सनमानी,
सूमता एती तुम्हें नहीं चाहिए, बाजति हौ चहुँ राधिकारानी॥

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मालवीय जी के पिता स्वामी हरिदास के अनुयायियों में थे। ऐसी दशा में आरम्भिक काल में मालवीय जी का राधाकृष्ण के रूप और प्रेम का वर्णन करना स्वाभाविक ही था, यद्यपि अन्त समय में जब 'सनातन धर्म' ने उनकी 'मकरन्द' नाम से लिखी गयी कविताओं को प्रकाशित करना शुरू किया, तब मालवीय जी बहुत अप्रसन्न हुए थे। लेकिन उनकी ये कविताएँ मधुर और प्रसाद-गुण से पूर्ण हैं। उन्हें सूर और बिहारी के सहस्रों पद याद थे। फिर क्यों न मालवीय जी की आरम्भिक कविताओं की छटा निखरी हुई हो? एक दफ़ा श्री हरिश्चन्द्र जी ने यह समस्या दी कि 'लट्टू भई राधिका रानी।' इस समस्या की पूर्ति मदनमोहन ने इस तरह की—

न्यारी कछू यह प्रीति की रीति
नहीं मकरन्द जू जात बखानी
सांवरें कामरी वाले गोपाल पै
रीझि लट्टू भई राधिका रानी॥

इस कविता को देखकर बाबू हरिश्चन्द्र इतने प्रसन्न हुए कि मकरन्द जी को अपने दरबार में इस कविता-विशेष के पाठ के लिए आमंत्रित किया। मकरन्द जी स्वयं इस आमंत्रण को स्वीकार न कर सके और उन्होंने अपने पत्र में लिखा—'मेरा नाम मदनमोहन है। जाति का ब्राह्मण हूँ। आजकल प्रयाग में विद्याध्ययन कर रहा हूँ।' भारतेन्दु जी (श्री हरिश्चन्द्र की उपाधि) कवि 'मकरन्द' की इस सरलता पर मुग्ध हो गए और उन्होंने उनसे कुछ और कविताएँ भेजने का अनुरोध किया। मालवीय जी ने कितनी ही कविताएँ भारतेन्दु जी के पास भेजीं।

'मकरन्द' जी की एक कविता को हम यहाँ पर और देना चाहते हैं। उसमें राधिका रानी के मान का वर्णन है—

वे कब के उत ठाढ़े अहैं, इत बैठि अहो तुम नारि चुपानी,
थाकी तुम्हें समुझावत साम ते ऐसी मैं रावरी बानि न जानी।
मोंहि कहा पै यहै 'मकरन्द' जो कहूँ खीझि कै रूसन ठानी,
आज मनाए न मानती हौ कल्ह आपु मनाइ हौ राधिका रानी॥

उन्होंने 'मकरन्द' नाम से अपने जीवन के आरम्भिक काल में राधा-कृष्ण के नाम पर शृंगार रस की बहुत-सी कविताएँ कीं, परन्तु बाद में धार्मिक शिक्षा और उपदेश ने उनकी कविता को इतना बोझिल कर दिया कि उसमें काव्य का पाना कठिन हो गया। इन धार्मिक उपदेशों से उनकी कविता बेचारी मुरझा गयी।

एक घटना-विशेष का उल्लेख कर देना यहाँ पर अप्रासंगिक न होगा। जब मालवीय जी म्योर सेन्ट्रल कालेज में बी० ए० के छात्र थे, तब उन्होंने स्वयं एक दिन सुना कि भारत के तात्कालिक वाइसराय, लार्ड रिपन, अमुक दिन प्रयाग पधारने वाले हैं। वह अपनी भारतीय नीति के कारण अंग्रेजों में उतने ही अप्रिय थे, जितने प्रिय वह भारतीयों को लगते थे। म्योर सेन्ट्रल कालेज के अंग्रेज प्रिंसिपल यह नहीं चाहते थे कि लार्ड रिपन का कोई सार्वजनिक सम्मान किया जाए। वह इसके घोर विरोधी थे। पर छात्र मदनमोहन ने लार्ड रिपन का सुन्दर जुलूस निकाला और अपने अभिनन्दन-पत्र में उन्होंने उनके प्रति भारतियों की कृतज्ञता प्रकट की। जब प्रिंसिपल को यह समाचार मिला, तब वह दाँतों तले उंगली दबाकर रह गया।

हमने ऊपर कहा है कि अध्यापन और सभा-सोसायटियों के भार ने मालवीय जी को अस्वस्थ और रोगग्रस्त कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८८३ में वह बी०ए० में फेल हो गए। लेकिन सन् १८८४ ई० में बी० ए० की परीक्षा में वह फिर बैठे। तब कहीं बी० ए० की परीक्षा में वह सफल हुए।

एम० ए० की उपाधि किसी विश्वविद्यालय से पाने की उनकी लालसा अन्त तक बनी रही। कई बार मुझसे उन्होंने कहा कि मैं (मालवीय जी) एम० ए० की उपाधि लेकर चैन लूंगा। उनके ये उद्गार उस समय के हैं जब सहस्रों एम० ए० के छात्रों को वह बरसों तक पढ़ा सकते थे और उनका नाम भारत और अन्य देशों में प्रसिद्ध हो चुका था। एम० ए० क्लास में उन्होंने अपना नाम भी लिखा लिया था, लेकिन घर की ग़रीबी को देखते हुए उन्होंने अपना नाम एम० ए० क्लास से कटा दिया।

एक घटना का उल्लेख यहाँ पर और कर देना है। सन् १८८१ में मालवीय जी ने इलाहाबाद (प्रयाग) में 'स्वदेशी तिजारत कम्पनी' कुछ मित्रों के साथ खोली। मालवीय जी इस कम्पनी के प्रधान स्तम्भ थे। वह लोगों को समझाते रहे कि अपने देश की बनी चीज प्राप्य होते हुए, चाहे वह कुछ घटिया और महंगी हो, विदेशी चीज ख़रीदना पाप है। स्वदेशी और स्वराज्य तो उनके लिए धार्मिक विश्वास-सा था। स्वदेशी के सम्बन्ध में जितना काम उन्होंने किया, उतना किसी ने नहीं किया। सन् १९०३ ई० के बाद तो इस दिशा में उन्होंने अभूतपूर्व प्रयत्न किया और सफलता पायी। अखिल भारतीय स्वदेशी संघ उन्हीं के प्रयत्नों का फल है। भारत के प्रायः सभी प्रधान नगरों में इसकी शाखाएँ थीं।

इस संघ के द्वारा बड़ा काम हुआ। बड़े होने पर उन्होंने प्रयाग में अपने मित्रों की सहायता से चीनी मिल भी खोली थी।

जब मालवीय जी कालेज में पढ़ते थे, तब उन्होंने एक प्रहसन लिखा था। उसमें 'झक्कड़सिंह' और 'जैंटिलमैन' नामक दो कविताएँ हैं। मालवीय जी उन दिनों अपने को 'झक्कड़सिंह' कहते थे। एक लेखक के अनुसार 'झक्कड़सिंह' नामक कविता में उन्होंने उन दिनों के मदनमोहन का चित्र खींचा है। दोनों कविताएँ नीचे दी जाती हैं :—

झक्कड़सिंह

गरे जुही के हैं गजरे पड़ा रंगी दुपट्टा तन।
भला क्या पूछिए धोती को, ढाके की मंगाते हैं।
न देखें हम तरफ़ उनकी, जो हमसे नेक मुँह फेरें।
जो दिल से हमसे मिलते हैं, झुक उनको देख जाते हैं।
'नहीं रहती फिकर हमको कि लावें तेल औ' लकड़ी।
मिले तो हलवे छन जावे, नहीं झूरी उड़ाते हैं।'

जैंटिलमैन

अहले यूरोप पूरा जैंटिलमैन कहलाता है हम।
जेंट से बाबू टू भी, मिस्टर कहा जाता है हम।
बाबू चाचा का कहना, लाइक हम करता नहीं।
पापा कहना अपने बच्चों को भी सिखलाता है हम।
कोट और पतलून पहने हैट एक सिर पर धरे,
ईवनिंग में वाक करने पार्क को जाता है हम।

———

तीसरा अध्याय

मालवीय जी अध्यापक हो गए

घर की ग़रीबी को देखकर मालवीय जी सरकारी स्कूल में अध्यापक बने, इसका वर्णन अपनी छोटी-सी 'आत्म-कथा' में उन्होंने खुद किया है। उस आत्म-कथा से इसका विवरण देना अनुचित न होगा :—

जब मैं बी० ए० पास हुआ, (तब) घर में ग़रीबी बहुत थी। घर के प्राणियों को अन्न-वस्त्र का भी क्लेश था।

'मामूली-सा घर था। घर में गाय थी। माँ अपने हाथ से उसकी सानी करती और उसका गोबर उठाती थीं। स्त्री आधा पेट खाकर संतोष कर लेती थी और फटी हुई धोतियाँ सीकर पहना करती थी। मैंने बहुत वर्षों बाद एक दिन उससे पूछा 'तुमने कभी सास से खाने-पहनने के कष्ट की शिकायत नहीं की ?'

'स्त्री ने कहा—'शिकायत करके क्या करती ? वह कहाँ से देतीं ? घर का कोना-कोना जितना वह जानती थीं उतना ही मैं जानती हूँ; मेरा दुःख सुन कर वह रो देतीं और क्या करतीं ?'

बी० ए० पास होने के बाद मेरी बड़ी इच्छा हुई कि बाबा और पिता के समान मैं भी कथा कहूँ और धर्म का प्रचार करूँ। किन्तु घर की ग़रीबी से सब प्राणियों को दुःख हो रहा था। उन्हीं दिनों उसी गवर्नमेन्ट स्कूल में, जिसमें मैंने पढ़ा था, एक अध्यापक की जगह खाली हुई। मेरे चचेरे भाई, पंडित जयगोविन्द जी, उसमें हेड पंडित थे। उन्होंने मुझसे कहा कि इस जगह के लिए कोशिश करो। मेरी इच्छा धर्मप्रचार में जीवन लगा देने की थी। मैंने 'नाहीं' कर दी। उन्होंने माँ से कहा।

'माँ मुझसे कहने के लिए आयीं। मैंने माँ की ओर देखा। उनकी आंखें डबडबा आयीं थीं। वे आंखें मेरी आंखों में अब तक धँसी हैं। मेरी सब कल्पनाएँ माँ के आँसू में डूब गयीं, और मैंने अविलंब कहा—'माँ, तुम कुछ न कहो, मैं नौकरी कर लूंगा।' जगह चालीस रुपये महीने की थी। मैंने इसी वेतन पर स्कूल में अध्यापक की नौकरी कर ली। दो महीने बाद, मेरा वेतन साठ रुपया हो गया।'

बी० ए० पास करने के बाद चौबीस वर्ष की अवस्था में मदनमोहन अध्यापक हो गए। तभी से 'पंडित' मदनमोहन मालवीय वह कहलाने लगे। थोड़े ही दिनों में विद्यार्थियों ने उनके गुणों को पहचान लिया और उनसे प्रेम करने लगे। जिन्होंने उनसे पढ़ा था, वे सब कहते थे कि ऐसा योग्य अध्यापक देखने में नहीं आया।

मालवीय जी उसी सरकारी स्कूल में अध्यापक थे, जिसमें उन्होंने शिक्षा पायी थी। एक बार इस स्कूल में एक घटना घटी, जिसका उल्लेख कर देना आवश्यक है। जब स्कूल में परीक्षा हो रही थी, तब एक कमरे में मालवीय जी परीक्षार्थियों की निगरानी करने के

लिए 'गार्ड' बनाए गए। एक विद्यार्थी नक़ल कर रहा था। मालवीय जी ने उसे देख लिया और तुरन्त उसे कमरे के बाहर निकाल दिया। वह लड़का यह बड़बड़ाता चला गया कि 'बच के रहना समझ लूंगा।' वह छात्र बड़ा बदमाश था। मालवीय जी उन दिनों पैदल ही स्कूल आया-जाया करते थे। इस घटना के बाद लोगों ने उनसे पैदल आने-जाने को मना किया। उनका कहना था कि यह लड़का इतना बदमाश है कि बिना कोई वारदात किए नहीं रहेगा। पर मालवीय जी डरने वाले तो थे नहीं; बोले, 'क्या हमारे हाथ-पाँव नहीं हैं ? अगर हम पर वह वार करेगा तो क्या हम उसे छोड़ देंगे ?' स्कूल में पैदल ही आना-जाना बराबर उन्होंने क़ायम रखा। उस लड़के की कुछ भी हिम्मत नहीं पड़ी कि वह कुछ करता। उलटे, मालवीय जी का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि एक दिन वह उनके पैरों में गिर पड़ा और उसने उनसे माफी मांगी। माँफ़ी उसे तुरन्त मालवीय जी ने दे दी। उनका हृदय इतना कोमल था कि यदि कोई अपने अपराध को स्वीकार कर ले तो वह उसे क्षमा कर देते थे।

इलाहाबाद जिले के सरकारी स्कूल के अध्यापक के रूप में मालवीय जी को जो कुछ अनुभव हुआ, उसको कहने की यहाँ पर कोई आवश्यता नहीं। सभी अध्यापकों को वही अनुभव होता है, जो उनको हुआ। उनमें जिन गुणों का इस समय तक प्रस्फुटन हम देखते हैं, वे ही आगे चलकर मालवीय जी के जीवन में पल्लवित हुए और उनकी कीर्ति के स्तम्भ का रूप उन्होंने धारण कर लिया। वह जो कुछ भी करते थे, उसे वह शास्त्रों की कसौटी पर कस लेते थे, तब उसे वह करते थे। उनका साहस, उनकी निडरता, उनकी वाग्मिता, परदुःख को मिटाने की उनकी कामना, हिन्दी और स्वदेशी के प्रति उनका अथक प्रेम आदि गुण मालवीय जी की छात्रावस्था में हमें दिखायी देते हैं, जिसके कारण बाद में उनका इतना यश हुआ। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'।

चौथा अध्याय

कांग्रेस में मालवीय जी

कांग्रेस का जन्म सन् १८८५ ई० में हुआ। पहले अधिवेशन में मालवीय जी न जा सके। दूसरे अधिवेशन में पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य जी के साथ वह कलकत्ता गए। उन्होंने पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य जी से कहा, 'मेरी भी तबियत कुछ बोलने की हो रही है।' मालवीय जी के अनुरोध पर पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य ने उस अधिवेशन के सभापति के नाम एक चिट भेजी। सभापति की अनुमति मिलने पर मालवीय जी बोलने के लिए खड़े हुए और कई बार लोगों ने तालियाँ पीटकर हर्ष-ध्वनि द्वारा अपनी सहमति प्रकट की। उस भाषण को सुनकर कांग्रेसजन, जो वहाँ उपस्थित थे, मुग्ध हो गए और सारे देश में आग की तरह उस भाषण की धूम फैल गयी।

इस अधिवेशन के मंत्री महोदय ने (ह्यूम साहब) इसकी प्रशंसा में यह लिखा था, 'लेकिन शायद हरेक व्यक्ति पर उस वक्तृता का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा जो कोमल आकृति वाले, बुद्धिमान और सहज प्रेरणा से युक्त, गौर वर्ण, के उच्च कुलीय ब्राह्मण, पंडित मदन-मोहन मालवीय, ने दी थी, जिसने अनायास ही सभापति की बग़ल में एक कुर्सी पर खड़े होकर सुमधुर स्वर में धाराप्रवाह बोलना आरम्भ कर दिया। उस युवक की ओजस्विता और वाक्-पटुता से सारी सभा तन्मय हो गयी थी।'

लेकिन उस भाषण की प्रशंसा में जो कुछ उस अधिवेशन के सभापति, स्वर्गीय डा० दादाभाई नौरोजी, ने कहा, वह और सबकी तुलना में कहीं भावोत्तेजक है। उन्होंने कहा था, 'इस युवक की वाणी में मानों साक्षात् भारतमाता बोल रही है।'

मालवीय जी का उस समय से कांग्रेस के साथ सम्बन्ध अटूट रहा और बिरला ही कोई ऐसा अधिवेशन गुज़रा होगा, जिसमें मालवीय जी न बोले हों। सब विषयों पर जो कुछ उन्होंने कहा, वह प्रभावोत्तेजक आज भी है।

इसके बाद मालवीय जी निरन्तर कांग्रेस के अधिवेशनों में जाते रहे और प्रमुख विषयों पर उनके भाषण भी होते रहे। एक घटना का उल्लेख यहाँ पर कर देना आवश्यक है।

सन् १९०७ में कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में हुआ, तभी से उग्रवादी दल और नरम दल में विभिन्न कांग्रेसीजन विभक्त हो गये। कांग्रेस का आधिपत्य नरमदल के हाथ में आ गया और उसने बहिष्कार किया उग्रदल के आदमियों का। यह बहिष्कार सन् १९१५ तक होता रहा। सन् १९१६ में कांग्रेस के दोनों दलों में समझौता हो गया और सन् १९१६ की कांग्रेस अधिवेशन (लखनऊ) में फिर दोनों दल मिल गये। उस समय देश का जोश देखने लायक था।

सन् १९०७ की घटना का वर्णन पं० रमाकान्त जी मालवीय, जो मालवीय जी के ज्येष्ठ पुत्र थे, के शब्दों में दे देना चाहते हैं—

"बात सूरत कांग्रेस की है। सूरत कांग्रेस के स्वागत-समिति के अध्यक्ष का नाम था श्री त्रिभुवनदास एन० मालवी। विरोधी दल वाले लोकमान्य तिलक को बोलने की अनुमति न देने के कारण उनसे (श्री त्रिभुवनदास जी से) सर्वाधिक नाराज थे। जब झगड़ा हुआ और भगदड़ मची तो चारो ओर से आवाजें आने लगीं—'मालवीय कहाँ हैं ? पकड़ो मालवी को' इत्यादि। इस मारपीट और भगदड़ में मुझे चिन्ता हुई कि मालवीय नाम के धोखे से कहीं कोई बाबू जी (मालवीय जी) पर वार न कर दे। भाग-दौड़ में किसी का कुछ पता नहीं लग रहा था। सब लोग घबड़ाए हुए इधर-उधर मालवीय जी को ढूंढ रहे थे। जब उन्हें ढूंढते हुए लोग पंडाल के अन्दर आए तो उन्होंने देखा कि मालवीय जी अपने स्थान के पास वाले पंडाल के एक खम्भे को पकड़े हुए खड़े हैं और उनकी आंखों से आँसुओं की अजस्र झड़ी लगी हुई है। तमाम हुल्लड़बाजी में वही एक व्यक्ति थे, जो शोक से अत्यन्त संतप्त होते हुए भी अपने स्थान पर अन्त तक अडिग और अविचल खड़े रहे"।

इस घटना का यहीं पर अन्त नहीं होता है। श्री ब्रजमोहन व्यास ने इसके बाद के हाल का वर्णन 'सरस्वती' में प्रकाशित अपनी लेखमाला में बड़े ही मधुर शब्दों में किया है। हम चाहते हैं कि उसका भी रसास्वादन पाठक कर लें।'

"सन् १९०७ की बात है। उस साल कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में हुआ था। उस समय देश का राजनीतिक वातावरण बड़ा क्षुब्ध था। ब्रिटिश शासन और देश के नेताओं में एक प्रकार से रस्साकशी हो रही थी। उधर आपस में भेद करा देने में सिद्धहस्त ब्रिटिश शासन अपनी घात में था और इधर भारतीय नेतागण देश को स्वतन्त्र कराने के लिए उतावले हो रहे थे। ऐसी परिस्थिति में राजनैतिक विचार धारा का दो भागों में विभक्त हो जाना स्वाभाविक ही था। सूरत के अधिवेशन में मालवीय जी और भट्ट जी, दोनों ही साथ गये थे और साथ-साथ ठहरे भी थे। यद्यपि दोनों ही महापुरुषों में घनिष्ठ मैत्री थी तथापि उनके राजनीतिक विचार बिल्कुल भिन्न थे। एक तीर घाट तो दूसरा मीरघाट। मालवीय जी नरमदल के थे और भट्ट जी गरमदल के पक्षपाती थे। नरमदल उन्हें (भट्ट जी को) फूटी आँख नहीं सुहाता था।

मालवीय जी का ख़याल था कि जब देश की मांग न्यायोचित और धर्मसम्मत है तब ब्रिटिश शासन को समझाने-बुझाने से कार्य सिद्ध हो जाएगा। भट्ट जी के शब्दों में 'लात के देवता बात से नहीं मानते'।

सूरत के अधिवेशन में जो काण्ड हुआ उसे सभी जानते हैं। उसके दुहराने की यहां कोई आवश्यकता नहीं है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस प्रकार कांग्रेस के अधिवेशन के भंग होने से मालवीय जी के हृदय में बड़ी ठेस लगी। वह व्यथित हो उठे। डेरे पर आकर वह बिस्तर पर लेट रहे पर उन्हें नींद नहीं आयी। बीच-बीच में वह कह उठते थे, 'हाय तिलक, हाय तिलक'। भट्ट जी निकट ही लेटे हुए थे। उनसे (भट्ट जी से) न रहा गया। सहसा वह बोल उठे, 'हमारे तिलक को काहे कहत हौ, अपने गुन नाहीं कहतेउँ ? मालवीय जी बहुत दुःखी थे, वह कुछ बोले नहीं।"

सूरत की कांग्रेस के बाद एक कनवेंशन बुलाया गया जिसमें यह तय हुआ कि कांग्रेस के ऊपर आधिपत्य नरमदल का होगा और उसके प्रस्तावों की मंशा यह थी कि उग्रदल का बहिष्कार किया जाए। यह ऊपर हम कह चुके हैं कि सन् १९१६ में इस बहिष्कार का अन्त हुआ। जब उन्होंने देखा कि कांग्रेस सन् १९३२ के बाद सरकारी दमन से कुचल रही है, तब वह धन मांगने के लिए दर-दर घूमे थे। जब उनकी झोली नहीं भरी, तब बंगाल के एक प्रमुख कांग्रेसी जमींदार के पास वह गए। उन्होंने भी उन्हें टकासा जवाब दे दिया। लेकिन मालवीय जी निरुत्साहित नहीं हुए और अपनी धुन के पक्के वह इस प्रयत्न में लगे रहे कि धन की सहायता से कांग्रेस को किसी न किसी तरह जीवित रखना चाहिए। इसी में देश का कल्याण है। यदि कांग्रेस जीवित है तो मालवीय जी के-से कर्मठ सेवकों द्वारा ही इसका जीवन आज तक अक्षुण्ण बना रहा।

जिस समय सन् १९२० में गाँधी जी ने पहले-पहल सत्याग्रह का आन्दोलन चलाया तो उस समय मालवीय जी उसके विरोध में बोले और किसी तरह का भी उसके साथ सम्पर्क नहीं रखा, यहाँ तक कि उन्होंने अपने पुत्र, गोविन्द मालवीय, को जेल से लौटने पर प्रायश्चित भी कराया। वही मालवीय जी आगे चलकर सत्याग्रही हुए, इसका क्या रहस्य है ?

जो काम बड़े-बड़े पुरुषों ने नहीं किया, वह काम बम्बई की स्त्रियों ने किया, जिसकी चर्चा यहाँ पर कर देना आवश्यक है। इस घटना का वर्णन श्री रामनाथ सुमन ने अपनी पुस्तक 'हमारे राष्ट्रनिर्माता' में बड़े रोचक ढंग से किया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं। उन्होंने लिखा है—'वह समय भी आया, जब देश के लिए कांग्रेस को कुचलते जाते देख-कर और उससे भी अधिक माताओं, बहनों और बेटियों के साथ होने वाले अनुचित व्यवहार से उनका हृदय पसीज गया। स्वास्थ्य खराब था, पर उनसे देखा नहीं गया और फल-स्वरूप सन् १९३० ई० में बम्बई में कानून तोड़कर वह जेल गए। किसी व्यक्ति के, उनकी इच्छा के विरुद्ध, जुर्माना जमा करने पर वह छोड़ दिए गए। पर दिल्ली में कांग्रेस कार्य-कारिणी की ग़ैर क़ानूनी बैठक में सम्मिलित होने के कारण वह फिर गिरफ्तार और दंडित हुए।

'बम्बई में (लोकमान्य तिलक की बरसी मनाने के लिए) उनको तथा बल्लभभाई इत्यादि अन्य नेताओं की गिरफ्तारी का वह दृश्य आज मेरी आंखों के सामने फिर रहा है। उस समय भाग्यवश मैं वहीं था। आकाश में घटायें घिर रही थीं। जुलूस चौपाटी से —लोकमान्य के स्मारक से—निकला। धोबी तालाब तक पहुँचते-पहुँचते जोर से बूंदें पड़ने लगीं। रास्ता नर-नारियों की भीड़ से भरा पड़ा था। बड़े ही अनुशासन और क़ायदे से तीन-तीन की कतार में जुलूस जा रहा था। इसमें वे ही लोग रखे गए थे, जो सब प्रकार की घटनाओं के लिए तैयार थे। रास्ते में प्रत्येक वार्ड का स्वयंसेवक दल आ-आकर मिलता गया। पानी गिर रहा था; बहुतों के पास छाते भी थे, पर अनुशासन ऐसा जबर्दस्त था कि लोग वे भी नहीं खोल रहे थे। बहनें आगे थीं। श्रीमती हंसा मेहता जुलूस का नेतृत्व कर रही थीं। कुकशेक रोड पर, हार्नबी रोड के क्रासिंग पर, हथियार बन्द पुलिस के दस्ते ने जुलूस रोक दिया। लोग जमीन पर बैठ गए। राम-धुन लग

गयी। ऊपर से पानी बरसता था, लेकिन लोग खुशी से उछल रहे थे। यह दृश्य देखकर, विशेषतः बहनों के साहस से, मालवीय जी पर वह असर हुआ जो कभी नहीं हुआ था। बहनों ने वह काम कर दिया जिसे उनकी युगों की सेवा न कर सकी थी। उन्होंने भी यज्ञ में अपनी आहुति दे दी।

'सन्धि हुई, आन्दोलन बन्द हुआ; क़ैदी छोड़े गए, कांग्रेस का गोलमेज़ में स्वागत किया गया, मालवीय जी भी अपनी प्यारी रूढ़ि को तोड़कर लन्दन गए, इंगलैंड जाने से पूर्व मालवीय जी का स्वास्थ्य बहुत खराब था। जुदाई के पहले एक घटना का वर्णन मुन्शी ईश्वरसिंह ने किया है जिससे मालवीय जी की देशभक्ति पर प्रकाश पड़ता है। वह लिखते हैं इंगलैंड जाने से पहले वह और मैं—प्रयाग के मैक्डानल्ड हिन्दू बोर्डिंग हाउस में...जो उन्हीं का स्थापित किया हुआ था, जा रहे थे। मैंने पूछा—'आप की तबियत कैसी है?' उन्होंने जवाब दिया 'मैं खाई में पड़ गया हूँ और उससे बाहर निकलने में असमर्थ हूँ। किन्तु यह शरीर तो मातृभूमि ही का दिया हुआ है; और इसमें क्या, चाहे माता की सेवा में इंगलैंड में उसकी मृत्यु हो, या यहां।' सुमन जी टिप्पणी करते हैं कि मालवीय जी की 'कैसी प्रगाढ़ देशभक्ति' थी।

एक बात का यहाँ पर और ज़िक्र कर देना है। इसके लिए मैं श्री रामनाथ सुमन का आभारी हूँ। कानपुर कांग्रेस (१९२५) की बात है। मालवीय जी किसी प्रस्ताव पर बोलने के लिए खड़े हुए। विरुद्ध बोल रहे थे। अपने वक्तव्य में उन्होंने असहयोग काल के पहले के किए हुए अच्छे कामों का जोरदार वर्णन करना शुरू किया। कांग्रेस का इतिहास सुना गए। पंडित मोतीलाल जी ऐसा कोई मौक़ा नहीं चूकते थे। उन्होंने व्यंग किया 'इस तरह तो आप महाभारत और रामायण की कथा से भी आरम्भ कर सकते थे। मालवीय जी व्यंग की कला में कच्चे थे। व्यंग ही में वह जवाब न दे सके। शोरगुल के बीच वह उसकी सफ़ाई देने खड़े हुए। सभानेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू ने उन्हें रोका। पर उधर ध्यान न देकर, रूलिंग की परवाह न कर, वह पन्द्रह मिनट तक बोलते ही रहे—'हाँ, मैं नित्य रामायण-महाभारत पढ़ता हूँ। इससे मुझे बड़ा लाभ हुआ। मैं भाई मोतीलाल जी को सलाह दूँगा कि वह भी ऐसा करें जिससे उनको भी लाभ हो।' यदि मालवीय जी में विनोद वृत्ति होती तो मोतीलाल जी का व्यंग हँसी में उड़ गया होता। पंडित मोतीलाल जी जवाब देने को उठे। श्री जवाहरलाल ने रोका। पर वह हाथ जोड़कर मंच पर आ गए, बोले 'मैंने तो समतासूचक एक उदाहरण भर दिया था। इसमें क्या अपराध है? मेरे लिए तो मालवीय जी भाई जैसे हैं। हम लोग सहपाठी रहे हैं; लड़कपन में साथ खेले हैं। फ़र्क़ इतना ही है कि मैं उनसे छह महीने बड़ा हूँ। इसीलिए बुद्धि में भी उतने अन्तर का तो हक़दार मैं हूँ ही। यह स्वाभाविक है कि जो बात मुझे आज सूझती है, वह उन्हें छह महीने बाद सूझे।'

इस घटना का उल्लेख पंडित ब्रजमोहन व्यास ने मालवीय जी के संस्मरणों की लेख-माला में भिन्न प्रकार से किया है। हमें श्री रामनाथ सुमन की बात जँचती है। इसलिए उसी को उद्धृत कर देना हमने उचित समझा।

मालवीय जी दो बार कांग्रेस के सभापति हुए। एक सन् १९०९ में लाहौर में और दूसरी बार सन् १९१८ में दिल्ली में। लाहौर अधिवेशन की भी एक कहानी है। सर फिरोजशाह मेहता ने छह दिन पहले कांग्रेस के सभापति के पद से इस्तीफ़ा दे दिया। लाहौर की स्वागत कारिणी सभा को दूसरा सभापति ढूंढने की जरूरत पड़ी। जब और कोई न मिला, तब उस पद के लिए मालवीय जी का नाम लिया गया। उनके पास इतना समय न था कि वह अपने संभाषण को लिपिबद्ध कर सकते। अतएव उन्होंने मौखिक ही संभाषण किया। कई घंटे तक वह बोले। बाद में उस संभाषण की कांग्रेस पत्रों में बड़ी प्रशंसा हुई। लोगों का कहना था कि कांग्रेस-मंच से ऐसा संभाषण और किसी सभापति का नहीं हुआ।

सन् १९३२ में दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था, और मालवीय जी उस अधिवेशन के सभापति चुने गए। सरकार ने अधिवेशन में रोक लगा दी। मालवीय जी ने इस बात की कोई परवाह नहीं की और वह दिल्ली को चल पड़े। जमुना पुल पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। अगले साल कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। उसके भी वह सभापति चुने गए। लेकिन इस बार सरकार ने उन्हें आसनसोल स्टेशन पर ही गिरफ्तार कर लिया। कांग्रेस के इतिहास में इन दो अधिवेशनों का कोई ज़िक्र नहीं है क्योंकि सरकारी आज्ञा के विरुद्ध ये अधिवेशन होने वाले थे और सरकार ने इन पर रोक लगा दी थी।

सन् १९३६ में मालवीय जी और श्रीयुत् रफ़ी अहमद किदवई के बीच जो समझौता हुआ, उसकी रोचक कहानी है। जब मालवीय जी ने अपने दल के लिए तेरह उम्मीदवारों को चुना, तब श्रीयुत् रफ़ी अहमद किदवई ने उनसे कहा, 'तेरह उम्मीवार तो मैं आप को नहीं दे सकता।' मालवीय जी ने तुरन्त उनसे पूछा, 'तो फिर कितने आप देना चाहते हैं?' उन्होंने कहा, 'तेईस उम्मीदवार। जब मालवीय जी और रफ़ी साहब में समझौता हो गया, तब उस साल के प्रांतिक सभापति रफ़ी साहब ने उस समझौते को प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी के सामने पेश किया। सबसे जोरदार विरोध श्रीयुत् पुरुषोत्तम दास टंडन का था। उनका विरोध सैद्धांतिक था, पर अन्त में पंडित जवाहरलाल नेहरू के सुझाव पर कमेटी ने अगले प्रस्ताव पर विचार करना शुरू किया। रफ़ी साहब ने बीच में कहा था, 'यदि यह समझौता आप चाहें तो मैं फाड़ डालूं। लेकिन समझौता इसी शर्त पर होगा।' यह बात सुनी-सुनायी नहीं है। मैं खुद रफ़ी साहब के साथ देहरादून गया था जहाँ मालवीय जी अपने पुत्र, गोविन्द मालवीय के साथ विश्राम कर रहे थे। श्री महावीर त्यागी ने भी इस घटना का ज़िक्र अपने किसी लेख में किया है। बात सच है, पर ऐसी आश्चर्यजनक घटना बहुत कम देखने में आती है।

पांचवा अध्याय

दैनिक 'हिन्दुस्तान' का संपादन

कलकत्ते में कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन के बाद सन् १८८७ ई० के आरंभ में प्रतापगढ़ जिले के अंतर्गत कालाकांकर के राजा रामपालसिंह द्वारा संस्थापित 'हिन्दुस्तान' साप्ताहिक से दैनिक समाचार-पत्र हो गया। राजा रामपालसिंह ने मालवीय जी से 'हिन्दुस्तान' के संपादन के भार को स्वीकार करने की प्रार्थना की। संपादक का वेतन राजा साहब ने स्वयमेव २५०) रु० माहवार नियत किया था। ६०) रु० पाने वाले अध्यापक के लिए एकदम २५०) रु० माहवार की धनराशि यद्यपि मोहक थी तथापि मालवीय जी ने एक शर्त राजा साहब के सामने रखी जिसके मान लेने ही पर मालवीय जी इस पद को मंजूर कर सकते थे। उनकी शर्त यह थी कि जब राजा साहब शराब पिए होंगे तब वह मालवीय जी को सलाह-मशविरे के लिए न बुलाएँगे। यदि ऐसा राजा साहब ने कभी किया तो संपादक को अधिकार होगा कि वह नौकरी से इस्तीफ़ा दे दे। राजा साहब ने यह शर्त मंजूर की और वचन दिया कि जब कभी वह शराब पिए होंगे तब वह कभी 'हिन्दुस्तान' के संपादक को सलाह-मशविरे के लिए न बुलाएँगे। राजा साहब के इस शर्त को मान लेने के बाद, मालवीय जी ने दैनिक "हिन्दुस्तान" का संपादक होना स्वीकार कर लिया।

उनके कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में भाषण की धूम सारे देश में फैल चुकी थी और भारत के समस्त कांग्रेसजनों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए एक नये सितारे को आकाश में उस समय उदित होते हुए देखा था। मालवीय जी में यह विशेषता थी कि वह न केवल वाणी ही के धनी बल्कि कलम के भी धनी, वह सिद्ध हुए। 'हिन्दुस्तान' के उस दैनिक रूप को देख कर एक विशिष्ट समकालीन कवि ने जो पंक्तियां लिखी थीं, वे नीचे उद्धृत की जाती हैं :—

"हिंदी भाषा में जदपि, प्रचलित पत्र अनेक।
ये है 'हिन्दुस्तान' ही, तामें दैनिक एक॥"

मालवीय जी की लेखनी से दैनिक 'हिन्दुस्तान' चमक उठा और उसकी ग्राहक संख्या दिनोदिन बढ़ने लगी। 'हिन्दुस्तान' के संपादकीय विभाग में उस समय के प्रमुख साहित्य-सेवी काम करने के लिए जुटाये गए। सह-संपादकों, लेखकों और कवियों का दैनिक 'हिन्दुस्तान' में जमघट-सा लग गया। सर्वश्री अमृतलाल चक्रवर्ती, शशिभूषण चटर्जी, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, लालबहादुर 'लाल', गोपालराम गहमरी, गुलाबचन्द चौबे, रामलाल मिश्र और स्वयं राजा रामपालसिंह 'हिन्दुस्तान' के सह-संपादक बने। 'हिन्दुस्तान' के रत्नों में इन सबों का नाम लिया जाता है। इन रत्नों के सिरमौर थे खुद महामना पंडित मदनमोहन मालवीय। आज तक किसी और हिंदी समाचार-पत्र में सह-संपादकों का ऐसा सुन्दर जमाव देखने में नहीं आया।

मालवीय जी के संपादकीय लेख विलक्षण होते थे। उनकी शैली और भाषा में प्रवाह होता था, और घटना के वर्णन करने का उनका ढंग आकर्षक था। सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक मामलों पर दैनिक 'हिन्दुस्तान' बराबर लिखता था। उनमें जो कुछ बुराइयाँ होती थीं, उनपर भी मालवीय जी, बिना किसी संकोच या डर के, 'गहरी' चोट करते थे, किन्तु चोट करने का ढंग कुछ ऐसा होता था कि चोट खाने वाला भी उसकी प्रशंसा करता था। मालवीय जी जो कुछ भी लिखते, उसकी भाषा सीधी-सादी बोलचाल की भाषा होती थी। अपने संपादकीय लेखों में वह विशेष रूप से बोलचाल की भाषा के अधिक से अधिक शब्दों का व्यवहार करते थे; जैसे, अचरज, जतन, जनम, लगन, पैठना, बरकाना, बानी, काज, अकारथ, सेंतमेत इत्यादि। उनके लेखों में तत्सम शब्दों का पंडिताऊ अभाव और तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ करता था। वह उतनी मात्रा में तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे, जितना आजकल के हिंदी लिखने वाले करते हैं। सूर और बिहारी के अनन्य भक्त, मालवीय जी, ने उन्हीं की सी भाषा का प्रयोग करना सीखा था। फिर क्यों न 'जन्म' के स्थान में वह 'जनम' लिखते और 'आश्चर्य' की जगह 'अचरज' को प्रधानता देते ?

मालवीय जी व्यंग, कटूक्ति, कटाक्ष और आपसी छेड़छाड़ में विश्वास नहीं रखते थे। उनकी सदा यह चेष्टा रही कि 'हिन्दुस्तान' इन बुराइयों से कोसों दूर रहे। मालवीय जी 'सफल' पत्रकारिता के लिए प्रूफ़ संशोधन को बहुत बड़ा महत्व देते थे। उनका कहना था कि लेख के प्रूफ़ को बार-बार देखो और उसकी भाषा यदि ठीक न हो तो उसे सुधार लो। भारत के राजनीतिक ऋषि, दादाभाई नौरोजी, के देहावसान का समाचार उन्हें लखनऊ में मिला। उन्होंने तुरन्त समवेदना का एक तार श्री वाचा के नाम भेजने की ठानी, पर दिन भर उस तार की भाषा सुधारने में उन्होंने अपना अमूल्य समय लगा दिया, लेकिन उस तार की भाषा से उन्हें संतोष न हुआ। ऐसे विकट थे मालवीय जी, जो लेखों की भाषा के संशोधन में प्रेस वालों की सुविधा का कभी ध्यान नहीं करते !

संपादक की हैसियत से वह कभी अपनी जिम्मेदारी को नहीं भूले। एक बार उनकी अनुपस्थिति में किसी सह-संपादक ने एक टिप्पणी प्रकाशित कर दी। उन्होंने उसी समय अपने सह-सम्पादक को लिखा—'हमको खेद है कि हमारी अनुपस्थिति में ऐसी अनुचित टिप्पणी छप गयी, कोई चिन्ता नहीं। हम अपनी टिप्पणी से पहली टिप्पणी का दोष मिटा देंगे।

मालवीय जी सदा इस टोह में रहते थे कि देशभक्ति की कविताएँ 'हिन्दुस्तान' में प्रकाशित की जाएँ। उदाहरण के लिये, यहाँ दो कविताओं की बानगी दी जाती है। 'हिन्दुस्तान' में 'हमारे ग्राम' शीर्षक से एक कविता छपी। उसकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :—

"कहाँ गये वे गाँव मनोहर परम सुहाने।
सबको प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने॥
कपट और क्रूरता पाप व मद से निर्मल।
सीधे सादे लोग बसे जिनमें नहिं छल-बल॥

एक भाव से जाति छतीसों मिल कर रहतीं।
एक दूसरे के सुख-दुःख मिलजुल कर सहतीं॥
जहाँ न झूठा काम न झूठी मान बड़ाई।
रहनी जिनकी एक मात्र आधार सचाई॥
कहाँ गये वे गाँव जहाँ थी प्रीत सवाई।
एक चिह्न भी देता उसका नहीं दिखाई॥"

इसी तरह, 'हिन्दुस्तान' में एक दूसरी कविता प्रकाशित हुई थी। उस कविता के पद ये हैं :—

"हमने माना किसी व्यक्ति को ध्यान न हो परमारथ का।
पर यह है क्या बात कि चेला बन जाए वह स्वारथ का।
करके द्रोह दीन-दुखियों से बोलो क्या पद पाओगे?
अपना नाम बड़ा कर लोगे देश का नाम डुबाओगे।
हे बनियो, क्या दीन जनों की सुनते नहीं हो हाहाकार?
जिसका मरे पड़ोसी भूखा उसके जीवन को धिक्कार।
नंगा-भूखा तुमको, सच है, कभी नहीं रहना पड़ता।
पैदल चलने से पांवों में फूल तलक भी नहीं गड़ता।
फिर भी क्या नंगे-भूखों पर दृष्टि नहीं पड़ती होगी,
सड़क कूटने वालों से क्या आँख नहीं लड़ती होगी?"

इन दोनों कविताओं पर मालवीय जी ने टिप्पणियां दीं। उन्होंने एक टिप्पणी में विदेशी शासन को गाँवों की दुर्दशा के लिये जिम्मेदार ठहराया और दूसरी टिप्पणी में उन धनिकों पर लांछन लगाया, जो अपने स्वार्थ में दीन व्यक्तियों को पैरों तले कुचलते हैं।

जिस समय मालवीय जी के संपादन और निर्देशन में भारतवासियों को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'हिन्दुस्तान' उत्साहित कर रहा था, उसी समय सन् १८८९ में एक दिन सहसा मालवीय जी ने 'हिन्दुस्तान' के संपादक के पद से इस्तीफ़ा दे दिया। यह घटना इस प्रकार घटी। राजा रामपालसिंह ने मालवीय जी को सलाह-मशविरे के लिये उस समय बुलाया, जिस समय राजा साहब शराब पिये हुए थे। राजा साहब ने पंडित अयोध्यानाथ की शान में कुछ अपशब्द भी कहे। इन्हीं बातों से मालवीय जी ने प्रधान संपादक के पद से इस्तीफ़ा दे दिया, क्योंकि यह पहले ही तय हो चुका था कि यदि शराब पिये हुए राजा साहब मालवीय जी को सलाह-मशविरे के लिये बुलाएँगे तो 'हिन्दुस्तान' के प्रधान संपादक को यह अधिकार होगा कि इस्तीफ़ा दे दे। राजा साहब ने मालवीय जी की बहुत अनुनय-विनय की कि शराब की बेहोशी में वह बहुत कुछ बक गए, पर मालवीय जी अपने व्रत को भंग नहीं कर सके। अंत में राजा साहब ने मालवीय जी से प्रयाग में वकालत पढ़ने के लिये कहा और यह वचन दिया कि जब तक मालवीय जी वकालत पढ़ते रहेंगे। तब तक वह प्रतिमास २५०) मालवीय जी की सेवा में भेजते जाएँगे :

मालवीय जी ने राजा रामपालसिंह को विदाई के समय जो पत्र लिखा, वह नीचे उद्धृत किया जाता है :—

'प्रिय राजा साहब'

आज से मेरा अन्न-जल आपके पास से उठ गया। आप ने मुझसे जो शर्त की थी, वह आज टूट गयी। मैं आज ही रात को या कल सुबह कालाकांकर से चला जाऊँगा। आप अपने पत्र का इंतजाम कर लीजिए। मैं आप की उदारता और स्नेह को कभी नहीं भूलूँगा।

भवदीय मदनमोहन मालवीय

'हिन्दुस्तान' का संपादन छोड़ कर मालवीय जी फिर प्रयाग लौट आए। उन दिनों इलाहाबाद म्योर सेंट्रल कालेज के ख्यातनामा संस्कृत प्रोफ़ेसर और मालवीय जी के गुरुदेव, पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य, 'इंडियन यूनियन' नामक एक अंग्रेजी पत्रको प्रकाशित कर रहे थे उन्होंने 'इन्डियन यूनियन' के संपादन का भार मालवीय जी को सौंप दिया। उनके संपादन काल में 'इंडियन यूनियन' की कीर्ति चारो ओर फैल गयी। 'इंडियन यूनियन' का संपादन करते हुए मालवीय जी ने वकालत की परीक्षा दी और उसमें वह उत्तीर्ण हुए।

'मैंने जब से होश संभाला'—२४ दिसम्बर सन् १९६१ के 'आज' में लिखते हुए राजा रामपालसिंह के पौत्र, कुंवर सुरेशसिंह, ने कहा है "(तब से) मुझे अपने गाँव में जो वस्तु सबसे अधिक आकर्षित करती थी वह थी हमारे पितामह, स्वर्गीय राजा रामपालसिंह, के हनुमान प्रेस (की वह थाती), जहाँ से हिन्दी का प्रथम दैनिक 'हिन्दुस्तान' प्रकाशित होता था। उस समय तो प्रेस हम लोगों के लिए एक खिलवाड़ की चीज थी, लेकिन जैसे-जैसे हम लोग बड़े होने लगे, हमें प्रेस के पुराने कर्मचारियों से असली मातृभाषा की उन विभूतियों के किस्से सुनने को मिलने लगे, जिन्होंने इस छोटे से गाँव में बैठ कर हिंदी की सेवा में अपने जीवन के अमूल्य क्षण तपस्या-स्वरूप बिताए थे। मालवीय जी किस प्रकार रहते थे, प्रेस के कर्मचारियों से उनका कैसा व्यवहार था, बाबा साहब (राजा रामपालसिंह) उनका कितना आदर करते थे, इस सब का पुराना विवरण हम लोग गाँव के पुराने लोगों से सुना करते थे।

'राजा रामपालसिंह और मालवीय जी की पहली मुलाकात तो सन् १८८४ ई० में 'मध्य-हिन्दी-समाज' के उत्सव के अवसर पर हुई थी, लेकिन सन् १८८६ ई० में कलकत्ते में कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में ये दोनों प्रसिद्ध वक्ता एक दूसरे का ओजस्वी भाषण सुन कर ऐसे मुग्ध हुए कि जीवन भर के लिए (वे) एक दूसरे के अभिन्न मित्र बन गए। सन् १८८७ ई० में राजा साहब ने पूज्य मालवीय जी को अपने दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' के संपादन का भार सौंपा और वह (मालवीय जी) तभी से कालाकांकर में आकर रहने लगे। यहाँ लगभग ढाई वर्षों तक रह कर बड़ी योग्यता से उन्होंने 'हिन्दुस्तान' का संपादन किया, लेकिन फिर राजा साहब के विशेष अनुरोध से वकालत पढ़ने के लिये (वह) प्रयाग चले गए।

'कालाकांकर से चले आने पर मालवीय जी ने न तो कालाकांकर को भुलाया और न वह राजा साहब के जीवनकाल तक उनके (राजा साहब के) स्नेह-पाश से मुक्त ही हो सके। वकालत पास कर लेने पर और अच्छी ख़ासी आमदनी हो जाने पर भी राजा साहब जब तक जीवित रहे उन्हें उतना धन बराबर भेजते रहे जो 'हिन्दुस्तान' के संपादन-काल में उन्हें मिलता था। मालवीय जी ने कई बार चाहा कि वह बिना काम किए हुए मुफ्त का रुपया न लें लेकिन उनका कोमल हृदय राजा साहब से अनबन होने की संभावना से दुःखित होता रहा और राजा साहब जब तक जीवित रहे तब तक उन्हें वही धनराशि भेजते रहे जो उन्हें संपादन-काल में मिलती थी। राजा साहब की इस दानशीलता की कितनी प्रशंसा की जाए ? धन्य हैं वे राजा-रईस जो प्रतिभा के सामने सिर झुकाते हैं। लक्ष्मी द्वारा सरस्वती की पूजा का इससे बढ़ कर दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है।

छठवाँ अध्याय

मालवीय जी और वकालत

हम ने पिछले अध्याय में यह लिखा है कि मालवीय जी वकालत की परीक्षा में पास हो गए। यह घटना सन् १८९१ की है। दो वर्ष तक वह जिले की अदालतों में और उसके बाद प्रदेश के उच्च-न्यायालय में वकालत करने लगे। उनकी वकालत बड़ी धूम से चली।

यद्यपि मालवीय जी को कानून पढ़ कर वकालत करना बहुत नापसंद था, तो भी राजा रामपालसिंह ऐसे उदार व्यक्ति, पंडित सुन्दरलाल (बाद में सर सुन्दरलाल) और उनके भाई, श्री बलदेवराम बबे, की सलाह को वह कैसे ठुकराते! एक बार पंडित अयोध्यानाथ ने श्री ह्यूम साहब से शिकायत की, "जब से मालवीय जी वकालत करने लगे हैं तब से वह कांग्रेस के काम में ढिलाई करने लगे हैं।" श्री ह्यूम साहब ने कहा, "ठीक तो है। इन्हें क़ानून की ओर पूरा चित्त लगाना चाहिए।" और, फिर, मालवीय जी की ओर देख कर बोले "देखो मदनमोहन, ईश्वर ने तुम्हें विलक्षण बुद्धि दी है। अगर मन लगाकर तुम दस बरस भी वकालत कर लोगे तो तुम निश्चय सबसे आगे बढ़ जाओगे। सब तुम अपनी प्रतिष्ठा के कारण अधिक जन-सेवा कर सकोगे, तब तुम देश की अधिक सेवा कर सकोगे।" उन्होंने ह्यूम साहब के उपदेश को गाँठ बांध लिया और कुछ दिनों तक जमकर वकालत की।

इस संबन्ध में एक छोटी-सी घटना का वर्णन करना अनुचित न होगा। उनकी लड़की का विवाह सिर पर आ पहुँचा। उसके लिए जितने धन धन की आवश्यकता थी, उतना धन पास में नहीं था। उनकी पत्नी को बड़ी चिंता हुई, परन्तु मालवीय जी को कोई चिंता नहीं हुई। उन्हें पूरा भरोसा था कि भगवान् समय पर आप ही इसका प्रबन्ध कर देंगे। कोई बड़ा मुकदमा हाथ लग गया और ५,०००) रु० उन्हें मिले। उन्होंने पत्नी के हाथ में उसे रख दिया और अपने दायित्व से बरी हो गए।

इस मुकद्दमे में जीत जाने से मालवीय जी की वकालत और भी चमकी। वह उन दिनों शहर ही में रहते थे। उसी कूचे सांवलदास में, जहाँ उनका पैतृक मकान था, मुंशी शिवराम के मकान में उनका दफ्तर था। सबेरे ही मवक्किलों की भीड़ लग जाती थी। जिसकी इतनी बड़ी वकालत हो, वह और कोई काम तो कर नहीं सकता लेकिन मालवीय जी का ढंग निराला था। मालवीय जी केवल वकालत से रुपया बटोरने के लिये नहीं पैदा हुए थे, उनका ध्येय तो दूसरा ही था। वकालत तो नाममात्र को थी। वकालत के कारण अपने ध्येय में बाधा पड़ती देख मालवीय जी घबड़ा गए और उसकी अपेक्षा करने लगे।

परिणाम यह हुआ कि मवक्किलों की उपेक्षा होने लगी और सार्वजनिक कामों को मालवीय जी ने प्रमुखता देना शुरू किया। पंडित बालकृष्ण भट्ट मालवीय जी को बहुत मानते थे। एक दिन प्रातःकाल भट्ट जी उनसे मिलने गए। उस समय तक मालवीय

जो नहीं आए थे। भट्ट जी के अतिरिक्त, पंडित हृदयनाथ कुंजरू, मुंशी ईश्वरशरण और बहुत से मवक्किल उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। इतने में नित्य कर्मों से छुट्टी पा कर मालवीय जी दफ्तर में आए। आते ही पहले उन्होंने सब मवक्किलों को विदा कर दिया। लाचार सब मवक्किल चले गए। भट्ट जी कोने में बैठे इस व्यापार को देख रहे थे। मन ही मन वह कुढ़ भी रहे थे। आखिरकार उनसे न रहा गया। वह बोले, "मदन! (भट्ट जी मालवीय जी से दस वर्ष बड़े थे) ई तुमरा ढंग हमें तनकौ नहीं सोहाता। जो तुम्हें चार पैसा देय आये रहे उन्हें तो तुम टरकाय दिहो और इन आवारन के साथ बठ के अपना बखत खराब करबो। इन्हें तो न कुछ करना है, न धरना।"

सभी भट्ट जी के स्वभाव से वाक़िफ थे। वे हँस पड़े। मालवीय जी मुस्करा कर बोले, "भट्ट जी, इन लोगों से एक अत्यंत आवश्यक राजनीतिक विषय पर परामर्श करना है।" भट्ट जी कुढ़ कर बोले, "जाव, रहै देव। हम सब जानित है। इनसे तो बातचीत संझा के भी होय सकत रही। मोअक्किल तो जो गये सो गये। हम जाइत है। फिर आउबै।" यह कह कर भट्ट जी उठ खड़े हुए और चले गए।

एक दूसरी घटना भी सुन लीजिए। एक अनजान व्यक्ति मालवीय जी के पास आया और रुआंसा होकर बोला "आज हाईकोर्ट में मेरा मुकद्दमा है। मुंशी कालिंदी प्रसाद मेरे वकील हैं। पर वह कहीं बाहर चले गए हैं। मैं उन्हें पूरी फीस दे चुका हूँ। मेरे पास अब किसी दूसरे वकील को देने के लिये रुपये नहीं हैं। जिस वकील के पास जाता हूँ, उसका मुंशी पहले ही फीस माँगता है। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। आप धर्मात्मा हैं, इसीलिए आपकी शरण में आया हूँ।"

उसकी ग़रीबी को देख कर और उसके विनय को सुनकर मालवीय जी से न रहा गया। तुरन्त उन्होंने उस व्यक्ति को अपने ख़ास आदमी के साथ मुंशी गोकुलप्रसाद वकील के पास भेज दिया। उस ग़रीब आदमी का काम बिना फीस-कौड़ी के हो गया। कहते हैं कि आये दिन मालवीय जी के पास ऐसे शरणागत और ग़रीब आया करते थे और उनका सारा अदालती काम बिना फ़ीस के हो जाता था।

इसी समय उन्हें रानी शेरकोट का एक भारी मुकद्दमा मिला, जो उनकी वकालत की एक कीर्ति समझी जाती है। इस मुकद्दमे में जहाँ उनको कीर्ति हुई, वहाँ बहुत-सा धन भी मिला, जिससे उन्होंने अपने जन्मस्थान से संलग्न भूमि पर एक बड़ा-सा मकान बनवा लिया। लेकिन असलियत क्या है? जहाँ रानी शेरकोट के मुकद्दमे से अधिक धन मिलने से दूसरों का मोह बढ़ जाता, वहाँ उसका प्रभाव मालवीय जी के हृदय पर उलटा पड़ा। उन्होंने गृहस्थी के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर वकालत से मुंह मोड़ लिया और वह देश-सेवा के काम में लग गए। वकालत में उन्होंने जो कीर्ति कमायी थी, उससे उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति में बड़ी सहायता मिली। श्री ह्यूम साहब की भविष्यवाणी पूरी उतरी।

इस अध्याय का अंत करने से पहले एक घटना का उल्लेख कर देना आवश्यक है। चौरीचौरा का जो कांड हुआ, उसमें मालवीय जी ने बड़ी दक्षता से १५१ आदमियों को

उच्च-न्यायालय से फाँसी के तख्ते पर लटकने से बचा लिया। उनकी पैरवी करने के ढंग की लोगों ने बहुत सराहना की। जजों ने यहाँ तक कहा, 'यदि मालवीय जी उनकी परवी में न होते तो उन बेचारों का क्या होता!'

ज़िले की अदालत में चौरीचौरा के मुकद्दमे की पैरवी के लिए उन्होंने डा० काशीनाथ मालवीय को भेजा। जो कुछ वह पैरवी कर सकते थे, वह उन्होंने की। फलस्वरूप कई आदमी तो छोटी अदालत ही से बरी हो गए। लेकिन १७१ आदमियों को छोटी अदालत ने फाँसी का दंड दिया था। उन्हीं की पैरवी करने के लिये मालवीय जी को उच्च-न्यायालय में पैरवी करनी पड़ी।

सातवाँ अध्याय

मालवीय जी के आरम्भिक काम

वकालत करते हुए मालवीय जी ने जो काम किए, वे प्रथम श्रेणी के थे (१) युक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) की अदालतों में हिंदी का प्रवेश, (२) मेक्डानल्ड हिन्दू बोर्डिंग हाउस की स्थापना, (३) मिन्टो पार्क में क्वीन विक्टोरिया की गदर वाली घोषणा की स्थापना और साप्ताहिक 'अभ्युदय' की स्थापना। चौथे के विषय में आगे कहा जाएगा। पहले तीन के संबंध में यहाँ पर कह देना लाजमी है।

युक्त प्रांत की अदालतों में उर्दू का बोलबाला था, लेकिन मालवीय जी के कारण हिन्दी का भी प्रवेश अदालतों में हो गया। इसकी कथा इस प्रकार है।

(१)—जब उर्दू का युक्त प्रांत की अदालतों में बोलबाला था, तब किसानों को उसके कारण बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। वे वकीलों की दया पर निर्भर करते थे। मालवीय जी ने इसके विषय में घोर आन्दोलन किया और आंकड़ों द्वारा अपने तर्कों से यह सिद्ध कर दिया कि हिंदी का बहिष्कार युक्त प्रांत में अन्यायपूर्ण है। सर एन्जनी मेक्डानल्ड युक्त प्रांत के गवर्नर हो कर मध्य प्रदेश से आए थे। वहाँ की अदालतों में हिंदी का चलन था। सन् १८९९ ई० में मालवीय जी एक शिष्टमंडल के साथ युक्त प्रांत के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के पास उपस्थित हुए और अपना आवेदन उनके सामने रखा। उनका आवेदन था कि उर्दू के साथ-साथ युक्त प्रांत की अदालतों में नागरी अक्षरों का दखल होना चाहिए। उन्होंने इस संबंध में जो लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के पास प्रतिवेदन दिया, उसका नाम था 'युक्त प्रांत की अदालतों में नागरी अक्षरों का प्रवेश है'। यह प्रतिवेदन मैंने भी पढ़ा है। उर्दू का हटाना युक्त प्रांत की अदालतों से असंभव था। इसीलिए मालवीय जी ने यह सोचा कि उर्दू के साथ-साथ हिन्दी को भी युक्त प्रांत की अदालतों में चलन हो जाए तो बहुत बड़ा काम होगा।

इस प्रतिवेदन की प्रतियां जगह-जगह बांटी गयीं और उसके आधार पर सारे सूबे में आन्दोलन हुआ। मालवीय जी अपने प्रतिवेदन के संबंध में खुद अनेक सभाओं में बोले और अंत में सरकारी आज्ञा हो गयी कि युक्त प्रांत की अदालतों में उर्दू के साथ-साथ नागरी अक्षरों का भी प्रवेश होना चाहिए।

श्रीमान् पुरुषोत्तमदास जी टंडन, जो हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के कर्ता-धर्ता बरसों तक रहे और कांग्रेस के भी सभापति रह चुके हैं, इसने अपने जीवन का ध्येय यही बना लिया था, मालूम होता है, कि मालवीय जी के उद्देश्य को (युक्त प्रांत की अदालतों में नागरी अक्षरों का प्रवेश) पूरा करने में अपने जीवन को लगायें। अंत तक वह इसी बात की चेष्टा में रहे कि जो वकील लोग अपना काम उर्दू में करते हैं, वे हिन्दी में करने लगें। इसके लिए सब तरह की सुविधाएँ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन देने को तैयार था; लेकिन इसमें

कहाँ तक उन्हें सफलता मिली, यह इसी बात से साफ जाहिर है कि प्रयाग उच्च न्यायालय की लखनऊ शाखा के सामने दो वकीलों ने, जो हिन्दू थे, यह कहा कि नीचे की अदालत का नागरी अक्षरों में लिखा हुआ फैसला उनकी समझ के बाहर है।

देश की स्वाधीनता के बाद चौबीस वर्षों से, हिन्दी का बोलबाला है; लेकिन वहाँ भी उर्दू को लाने का प्रयत्न किया जा रहा है, यह दुःख की बात है। उसमें दोष वहाँ के मुख्य-मंत्री और शिक्षामंत्री का है। यदि ये लोग चाहें तो कोई भी उत्तर प्रदेश का मुलाजिम हमें ऐसा नहीं दिखायी देता है, जो उनकी बात को टाल सके। कई जिलों में तो केवल ५ फीसदी अधिकारियों ने ही हिन्दी के पक्ष में उत्साह दिखाया, कुछ हिन्दी के प्रति उदासीन रहे तथा कुछ में उसके प्रति विद्रोह की भावना थी। ऐसी दशा में जब उत्तर प्रदेश में, स्वाधीनता के बाद, यह हाल है, तब हिन्दी के दुर्दिन समझना चाहिए। मालवीय जी ने जिस पौधे को इतने प्रयत्न से लगाया था, उसके बढ़ने की तो कोई आशा नहीं रही, उलटे उत्तर प्रदेश में (युक्तप्रांत) में भी जब जिले के अधिकारियों का यह हाल है, तब हिन्दी की प्रगति का काम कठिन मालूम होता है। आजकल नेहरू जी की भाषा संबंधी नीति की दिल्ली में आलोचना हो रही है, लेकिन हमें तो उत्तर प्रदेश से मतलब है।

उत्तर प्रदेश की जो हालत है, उसका कच्चा चिट्ठा हमने उपस्थित कर दिया है। जब उत्तर प्रदेश का यह हाल है, तब भारत के अन्य प्रदेशों में या केंद्र-शासित क्षेत्रों में हिन्दी की क्या अवस्था होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। जिस समय कोई उत्तर प्रदेश की भाषा संबंधी बात मुझसे कहता है, तब मैं उसका जवाब यही देता हूँ कि 'उत्तर प्रदेश की सरकार को देखिए जिसकी भाषा संबंधी पच्चीसों आज्ञाओं का उल्लंघन वहाँ के अधिकारी स्वेच्छा से करते हैं और उन्हें कुछ भी दण्ड नहीं दिया जाता।' इसके कहने के बाद हमारे मिलने वाले मित्र चुप हो जाते हैं।

हमें उत्तर प्रदेश को देखना चाहिए, क्योंकि यदि उत्तर प्रदेश इस मामले में सफल हो जाए—हिन्दी को चलाने में—तो आधी लड़ाई से अधिक में हमारी विजय होगी। यदि उत्तर प्रदेश बिगड़ा तो सारा देश हिन्दी से विमुख हो जाएगा।

इसलिए श्री गोपाल रेड्डी या प्रधानमंत्री को भला-बुरा कहने के बजाय उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री और शिक्षामंत्री ही को इस बात का दोषी समझना चाहिए। यदि उत्तर प्रदेश इस मामले में आनाकानी करेगा तो भारत के अन्य प्रदेश भी आनाकानी करेंगे। यदि उत्तर प्रदेश इस मामले में जम कर हिंदी को राजभाषा बनाने में सफल हुआ तो हमें यह आशा करनी चाहिए कि सारा देश उसके साथ होगा।

(२)—इसके बाद मालवीय जी ने दूसरा काम हाथ में लिया—वह था मेक्डानल्ड हिन्दू बोर्डिंग हाउस की स्थापना। उन्हें पंडित आदित्यराम भट्टाचार्य से छात्रावस्था ही में यह उपदेश मिला था कि हिन्दू बालकों का वातावरण आरंभ ही से ठीक हो तो यह असंभव है कि किसी के भड़काने से वे हिन्दू धर्म से विमुख हो जाएँ। इसीलिए उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले हिन्दू विद्यार्थियों के लिए एक हिन्दू बोर्डिंग हाउस बनाने का सन् १९०१ में निश्चय किया। जिस समय वह चंदा मांगने के लिए निकले, तो पहले-पहल

अयोध्या के स्वर्गीय राजा, दबुआ साहब, ने मालवीय जी से कहा कि 'कहाँ पंडित! तुम इस होस्टल के लिए चंदा मागते फिरोगे! मेरी राय में मुझसे यह सारा धन ले लीजिए और चंदा उगाहने के लिए दौरा करने का इरादा छोड़ दीजिए।' महाराजा के ये बचन सुनकर मालवीय जी ने साहस के साथ काम किया। उन्होंने कहा कि 'जनता कि सहायता इस काम के लिए आवश्यक है। इसलिए इस बोर्डिग हाउस के लिए आप वही राशि दे सकते हैं जो निर्धारित है।' इस तरह के दबुआ साहब की आज्ञा का उल्लंघन करने में मालवीय जी सफल हुए और जगह-जगह घूम उत्तर प्रदेश के हिन्दू छात्रों के लिए प्रयागराज में एक विशाल हिन्दू बोर्डिग हाउस की स्थापना की जो सन् १९०३ में बन कर तैयार हो गया। पहले उसका नाम था 'मेक्डानल हिन्दू बोर्डिग हाउस', लेकिन मालवीय जी के मरने के उपरान्त उनके भक्तों ने इसका नाम बदल दिया और वहाँ पर प्रयाग विश्वविद्यालय की ओर से 'मालवीय कालेज' की स्थापना हुई।

'अभ्युदय आदि के विषय में हमें जो कुछ कहना है, वह अगले अध्याय में पाठकों को मिलेगा। यहाँ पर सिर्फ दो बातों को साफ कर देना हमारा धर्म है। पहली बात है कि 'मर्यादा' की स्थापना का श्रेय मालवीय जी को नहीं है। उसका श्रेय मिलना चाहिए श्रीकृष्णकांत मालवीय को। इसी तरह से दूसरी बात का भी प्रतिवाद करना जरूरी है। जिस समय श्रीकृष्णकान्त मालवीय जी ने साप्ताहिक 'अभ्युदय' को दैनिक (१९१५ में) बनाया, उस समय उनकी माता ने अपने जेवर बेच कर गाड़ी को किसी तरह से दलदल से निकाला। जब मालवीय जी आए और उन्हें यह हाल मालूम हुआ, तब वह रो पड़े। जो बात होनी थी, वह तो हो चुकी थी।

(३)—मिन्टोंपार्क और क्वीन विक्टोरिया की घोषणा का उद्घाटन एक ही साथ भारत के तत्कालीन वाइसराय, लार्ड मिन्टों ने सन् १९०९ में किया।

इसी समय के एक घटना का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। कहते हैं कि मालवीय जी ने लार्ड मिन्टो से वचन तो ले लिया कि वह उनका उद्घाटन करेंगे पर इन कामों के लिए पैसा नहीं जमा किया था। यह जान कर कि मालवीय जी ने वाइसराय से वचन ले लिया है गोखले जी से न रहा गया। उन्होंने मालवीय जी से कहा कि आप तुरंत सब काम छोड़कर उनके लिए चन्दा जमा कीजिए। हँसकर मालवीय जी ने कहा कि मुझे किसी के पास जाने की जरूरत न पड़ेगी। मेरी चिट्ठियों से रुपया आ जाएगा। आप चिंता न करें।

पं० मोतीलाल नेहरू ने स्वागत भाषण पढ़ा और वाइसराय को भेंट दी। श्री सत्य-नारायण सिनहा ने यद्यपि सारे काम की जिम्मेदारी मालवीय जी पर थी। यश की परवाह उन्होंने कभी नहीं की।

आठवाँ अध्याय

'अभ्युदय' आदि का प्रकाशन

सन् १९०७ में पंडित मदनमोहन मालवीय ने 'अभ्युदय' का हफ्तेवार प्रकाशन शुरू किया। वही उसके प्रधान संपादक भी थे। सह-संपादकों में उन्होंने श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री कृष्णकांत मालवीय, श्री नित्यानंद जोशी और श्री भगवानदास हालना को नियुक्ति की। 'अभ्युदय' के पहले अंक में मालवीय जी ने अपने संपादकीय लेख में लिखा था—

'हमारी अभिलाषा मन्द नहीं है। सबसे ऊँचा पर्वत नागधिराज हिमालय है। हमारी अभिलाषा है कि हमारे देश का अभ्युदय भी उतना ही ऊँचा हो।'

मालवीय जी के संपादन में 'अभ्युदय' सदा प्रगतिशील रहा। समाजसुधार, सांप्रदायिक-सद्भावना, विचार-स्वातंत्र्य, समाचार-पत्रों की स्वाधीनता आदि सभी विषयों पर मालवीय जी निडर होकर लिखते, और उस समय के विचारशील लोग उनके अग्रलेखों पर मनन करते थे। सांप्रदायिक सद्भावना पर मालवीय जी के उदार विचार उस अग्रलेख में, जिसे उन्होंने खुद लिखा था, नीचे की पंक्तियों में देखिए

"हिंदुस्थान केवल हिंदुओं का देश नहीं है, हिंदुस्थान मुसलमानों, ईसाइयों और पारसियों का भी देश है। हिंदुस्थान में रहने वाले भिन्न-भिन्न धर्मों के लोगों में जितना परस्पर मेल और एकता बढ़ेगी, (उतनी ही) अपने देश की उन्नति करने की हमारी शक्ति बढ़ेगी। जो लोग इस एकता को ठेस पहुँचाते हैं, वे न केवल अपने देश के शत्रु हैं बल्कि अपनी जाति के भी शत्रु हैं।

मालवीय जी पर यह सदा आरोप लगाया गया कि मालवीय जी जन्म ही से मुसलमानों के 'शत्रु' थे। यह बात कितनी झूठी थी, यह इलाहाबाद के प्रसिद्ध कवि, मौलाना अकबर इलाहाबादी, की निम्न पंक्तियों से प्रकट होती है—

"हज़ार शेख ने दाढ़ी बढ़ायी सन-की-सी
मगर वह बात कहा मालवी मदन की-सी।"

इस पर टिप्पणी करते हुए 'सरस्वती' के वर्तमान संपादक, श्रीयुत् श्रीनारायण चतुर्वेदी, ने लिखा है 'इस पर सैयद (अहमद) के बहुत से प्रशंसक उनसे असंतुष्ट हो गए थे। यह गाँधी जी का आरंभिक काल था और नरम दल के कांगरेसी नेताओं का बड़ा ज़ोर था। ये नरम दल के 'माडरेट' नेता पाश्चात्य सभ्यता में रंगे थे और बड़ी शान से रहते थे, किंतु ये बड़े वाग्मी। अकबर साहब पर इनका बहुत अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने मालवीय जी से उनकी (नरम दल के नेताओं की) तुलना करते हुए लिखा था:—

"भाई गांधी खुदसरी की आरज़ू के साथ हैं,
और साहब लोग मगरबी रंगे-बू के साथ हैं।
मालवी जी सबसे बेहतर हैं मेरी दानिस्त में,
यानी, मंदिर में हैं, जो अपनी गऊ के साथ हैं॥"

"इस पर बहुत से लोगों ने अकबर साहब की कटु आलोचना की और कहा कि वह तो न मालूम क्यों मालवीय जी की खुशामद पर उतारु हैं। उन्हें (आलोचकों को) यह विश्वास नहीं था कि अकबर साहब अपने हृदय के सच्चे उद्गार प्रकट कर रहे हैं। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि लोग उनकी की हुई मालवीय जी की प्रशंसा को बनावटी खुशामद समझते हैं, तब बन्होंने मालवीय जी को संबोधन कर यह लिखा :—

"तेरे क़दम से रौनक़े शहरे प्रयाग है,
यानी, तेरे ही दम से बुतों का सुहाग है।
भड़की है दिल में आग गुआलिन के इश्क की,
अहबाब कह रहे हैं कि कंडे की आग है।"

"'तेरे ही दम से बुतों का सुहाग है,' इससे बढ़कर मालवीय जी के लिए कोई क्या कह सकता है? अपने को ग्वालिन बनाकर मदनमोहन (श्रीकृष्ण) का प्रेमी घोषित करते हुए उन्होंने अपने आलोचकों को बतलाया कि उनके हृदय में मालवीय जी के लिए कितना गहरा प्रेम है।"

यदि धृष्टता न हो तो हम यह कहेंगे कि मुसलमानों को हिंदुओं के प्रति जो विद्वेष था और है, उसकी भी गहराई तक कवि को पहुँचना चाहिए था। हिंदुओं का मुसलमानों के प्रति 'म्लेच्छ' का संबोधन उन्हें खलता है। हमारे मुसलमान भाई जात-पांत के ढकोसले में विश्वास नहीं करते। उनका दावा है कि हिंदू भी उनके साथ उसी तरह खाएं-पिएं, जैसे वे दूसरे मुसलमानों के साथ खाते-पीते हैं। वे चाहते हैं कि रोटी-बेटी का संबंध हिंदुओं के साथ उनका हो जाए। पंडित मदनमोहन मालवीय 'कट्टर' हिंदू थे; किसी विदेशी दावत में वह कभी शरीक नहीं हुए। स्वजातीय ब्राह्मण का बनाया हुआ अन्न ही वह ग्रहण करते थे, और 'बेटी' का देना मालवीय जी का असंभव था। मालवीय जी साकार ब्रह्म के उपासक थे और अवतारवाद में उनका पूर्ण विश्वास था। इसके विपरीत, मुसलमान एक ईश्वरवादी है, और उन्हें तो अवतारवाद से घृणा है। ऐसी दशा में मुसलमानों के साथ मालवीय जी का मैत्रीपूर्ण व्यवहार केवल 'उदार' ही कहा जा सकता है, चाहे उसकी भावना कितनी ही गहरी और प्रबल क्यों न हो।

फल यह हुआ कि अकबर इलाहाबादी के शेरों का अपनी हम-बिरादरी पर कोई असर न हुआ, और न है। लाख मौलामा अकबर इलाहाबादी चिल्लाया करें कि मालवीय जी ही के 'दम से बुतों का सुहाग' है, इसका उनकी बिरादरी पर कोई असर नहीं पड़ सकता था। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम अकबर साहब की आलोचना करते हैं। उन्होंने अपने हम-मजहब वालों की—मुसलमानों की—भावना को समझने में कुछ भूल की। विपक्षी की बात को समझ लेना कवि के लिये उतना ही आवश्यक है, जितना वह दूसरों के लिये। एक शेर लिखकर मौलाना अकबर इलाहाबादी का काम थोड़े ही पूरा हो गया। उन्हें चाहिए था कि वह अपने हम-मजहब वालों के आक्षेपों का कस कर और सही-सही उत्तर देते। अन्यथा, उनकी शायरी एक तरफ़ रह जायगी और उनका समाज दूसरी ओर चला जायगा। यही हुआ भी।

प्रयाग ही के दूसरे बड़े नेता, पंडित मोतीलाल नेहरू, थे। क्या मुसलमानों और क्या ईसाइयों से वह भेद-भाव नहीं रखते थे। सबके साथ वह खाते-पीते थे; उन्हें संसार में किसी का डर न था। अंगरेज़ी शिक्षा का उन पर पूरा प्रभाव पड़ा था। इसीलिए मुसलमान उन्हें अधिक मानते थे, और अधिकांश मुसलमान मालवीय जी को मुसलमानों का 'द्रोही' समझते थे। अंत तक यह बात बनी रही, और मालवीय जी का हिंदू-प्रेम और हिंदी के प्रति उनकी आस्था अधिकांश मुसलमानों की भावना विरुद्ध थी। इसलिए उनके द्वारा वह कभी श्रद्धा के भाजन नहीं हुए।

हमें तो 'अभ्युदय' की चर्चा करना है। उसके जन्मकाल का समय जहाँ एक ओर देश प्रेम उमड़ उठा, वहाँ दूसरी ओर, भारत सरकार का भयंकर दमन-चक्र चला रहा था। सन् १९०७ में पंजाब के प्रसिद्ध दैनिक 'पंजाबी' के संपादक, श्री अथावले, और स्वामी रामचन्द्र पर पंजाब की सरकार ने ताज़ीरात हिंद की दफ़ा १५३ (अ) के अनुसार मुकदमा चलाया। संपादक की ओर से लाला लाजपतराय ने पैरवी की थी। इस पर महामना मालवीय जी ने 'अभ्युदय' के एक संपादकीय में लिखा—

"संपादक (श्री अथावले) ने अपना संपादकीय लेख लिखकर एक महत्वपूर्ण सार्वजनिक मामले के ऊपर सरकार और जनता दोनों का ध्यान दिलाया है। यदि ऐसे मुकद्दमे में संपादक को सज़ा हुई तो समाचार-पत्रों की स्वाधीनता को बड़ी बाधा पहुँचेगी। संतोष हमें इस बात से है कि 'पंजाबी के संपादक, श्री अथावले, ने अपने कर्तव्य-पालन में हर प्रकार का साहस और दृढ़ता दिखायी।"

केवल संपादकीय ही लिखकर मालवीय जी को संतोष न हुआ। समाचार-पत्रों की सुरक्षा के लिये कोई ठोस क़दम उठाना आवश्यक था। मालवीय जी ने वैसा ही किया। अप्रैल, सन् १९०८, में मालवीय जी ने प्रयाग में राजा रामपालसिंह के सभापतित्व में 'अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन' बुलाया। खुद मालवीय जी उस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष बने। इस पद से भाषण करते हुए मालवीय जी ने कहा—'विदेशी सरकार अपनी दमन-नीति को अत्यधिक व्यापक बनाने के लिये प्रेस ऐक्ट और न्यूज़ ऐक्ट बनाने जा रही है, जिससे इस देश में समाचार-पत्रों की स्वाधीनता समाप्त हो जाएगी। यदि भारतीय समाचार-पत्रों के संपादकों और पत्रकारों ने दृढ़ता के साथ समाचार-पत्रों की स्वाधीनता के हनन का मुक़ाबला न किया तो भारतीय समाचार-पत्रों का भविष्य खतरे में पड़ जाएगा।"

मालवीय जी ने यह महसूस किया कि केवल हिंदी पत्रों के माध्यम ही से इस खतरे का मुक़ाबला नहीं किया जा सकता। एक अंगरेज़ी दैनिक पत्र का प्रकाशन भी आवश्यक है। इसी ध्येय की सिद्धि के लिये २४ अक्तूबर, १९०९, को विजयादशमी के दिन, केवल ३४ हज़ार की पूंजी से, अंगरेज़ी दैनिक 'लीडर' का जन्म हुआ। उसका पहला संपादकीय मालवीय जी ने खुद लिखा था—"देश और विशेष कर संयुक्त प्रांत (जो अब उत्तर प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध है) के सार्वजनिक जीवन के लिये मुझे एक अंगरेज़ी दैनिक की आवश्यकता इतनी अधिक और अनिवार्य जान पड़ी कि मैंने 'लीडर' के प्रकाशन का निश्चय कर लिया।'

'लीडर' के पहले दो संपादक थे; बाद में श्री सी० वाई० चिंतामणि जी उसके एकमात्र संपादक रह गए।

"लीडर का प्रारंभिक जीवन"—श्री विशम्भरनाथ पांडेय कहते हैं—"कोई फूलों की सेज न थी। कुल डेढ़ वर्षों ही में 'लीडर' की संचित पूंजी समाप्त हो गयी। 'लीडर' के उस घोर निराशा से भरे जीवन में केवल मालवीय जी ही आशा की एक किरण थे। इस समय मालवीय जी के मुख से ये शब्द निकले—" The leader will live (लीडर जिंदा रहेगा)! The leader will never die (लीडर कभी न मरेगा)!" मालवीय जी ने 'लीडर' के लिये अपनी झोली फैलायी। दूसरों से भिक्षा मांगने के पूर्व उन्होंने अपनी पत्नी से भिक्षा मांगी। उन्होंने कहा—'तुम यह न समझो कि तुम्हारे चार पुत्र हैं, तुम्हारा वह पांचवां पुत्र, दैनिक समाचारपत्र 'लीडर,' है। धन के अभाव में वह इस समय मृत्युशय्या पर पड़ा छटपटा रहा है। क्या पिता की हैसियत से मैं अपने इस पुत्र को मृत्यु का ग्रास बनने दूं?' पति के ये वचन सुनकर मालवीय जी की पत्नी पसीज गयीं। अपने संपूर्ण जेवर साढ़े तीन हजार में बेचकर मालवीय जी की पत्नी ने उनकी झोली में पहला दान दिया। उनके बाद, अन्य दानियों के पास मालवीय जी गए और 'लीडर' का अर्थाभाव दूर हुआ।'

मालवीय जी को अपने समाचार-पत्रों के लिये योग्यतम संपादकों का चयन करना आता था। इसलिए जब उन्होंने देखा कि श्री सी० वाई० चिंतामणि की देख-रेख में 'लीडर' चमकेगा तब उन्हीं को उसके सर्वाधिकार दे दिए। 'लीडर' चमका और खूब चमका, यहां तक कि उस प्रदेश की सरकार को यह कहना पड़ा कि 'लीडर' की चाबुक के सामने बड़े-बड़े झुक जाते हैं। यह निस्संदेह है कि उत्तर प्रदेश में इस समय सार्वजनिक जीवन की जो प्रगति दिखायी पड़ती है, उसका श्रेय 'लीडर' ही को मिलना चाहिए, और यह काम हुआ श्री सी० वाई० चिंतामणि के संपादन-काल में। उन्होंने 'लीडर' के द्वारा सार्वजनिक जीवन की नींव इतनी मजबूत रखी थी कि उससे आगे की प्रगति में कोई बाधा न पड़ी। 'लीडर' को मालवीय जी के पोषण और श्री सी० वाई० चिंतामणि के संपादन में जो श्रेय मिला, वह अंगरेजी के दूसरे समाचार-पत्रों को मिलना कठिन है। श्री चिंतामणि की मृत्यु के बाद घनश्यामदास बिड़ला जी ने 'लीडर' को खरीद लिया और उसका संचालन अपनी नीति के अनुसार करने लगे।

'लीडर' की बात कहने के पहले, 'अभ्युदय' की कथा का जो सिलसिला हमने उठाया था, उसी को पहले हम समाप्त कर दें। 'अभ्युदय' के दो रूप हुए—एक साप्ताहिक (सन् १९०७) और दूसरा दैनिक (सन् १९१५)। दोनों ही की प्रतियां मालवीय जी की सेवा में जाती थीं और उसे वह लगन से पढ़ते थे। उनका उद्देश्य था कि 'अभ्युदय' में उनकी नीति के विरुद्ध कुछ न छप जाए ताकि उसका प्रतिवाद उन्हें करना पड़े। एक समय की बात है, जब एक तात्कालिक संपादक ने भूल से कहीं 'बोधगम्य' शब्द लिख दिया था। उस संपादक को बुलाकर मालवीय जी ने कहा कि 'बोधगम्य' के स्थान में तुम्हें लिखना चाहिए था 'सुबोध' या 'सहल'।

मालवीय जी को उस समय बड़ा दुःख हुआ जब 'अभ्युदय' से तीन हजार रुपयों की जमानत मांगी गयी। यह वह जमाना था प्रथम महायुद्ध का, और सरकार की यह नीति

थी कि सब देशी पत्रों पर कड़ी निगाह रखी जाए। मालवीय जी ने इसको अपनी स्वाधीनता पर आघात समझा और पुराने संपादक के त्याग-पत्र देने पर उन्होंने तत्काल नये संपादक की नियुक्ति की। महीनों तक मालवीय जी 'अभ्युदय' के अग्रलेखों का अंग्रेजी में अनुवाद करते और उस अनुवाद को प्रांतिक सरकार के पास बराबर भेजते रहे। कई महीनों के बाद मालवीय जी के अनुकूल फ़ायसला हुआ, और 'अभ्युदय' से तीन हजार की जमानत की जो आज्ञा प्रांतिक सरकार ने दी थी, वह वापस ले ली गयी। यह मालवीय जी ही का दम था कि 'अभ्युदय' जमानत से मुक्त हुआ।

किस ध्यान से मालवीय जी 'अभ्युदय' के प्रत्येक अंक को पढ़ते थे, इसका एक उदाहरण मैंने ऊपर दिया है। दूसरा उदाहरण उस पत्र से दिया जा सकता है जो उन्होंने श्री कृष्णकांत मालवीय को, जो उस समय 'अभ्युदय' का संपादन कर रहे थे, लिखा था। घटना इस प्रकार हुई। 'अभ्युदय' के एक अंक में श्री कृष्णकांत मालवीय ने विधवाओं की दुर्दशा के विषय में हिन्दू समाज को बड़ी लताड़ बतायी थी। इस लताड़ को देखकर मालवीय जी विलचित हो गए और उन्होंने श्री कृष्णकांत मालवीय को निम्न पत्र लिखा—

'चिरंजीव कृष्ण,

पिछली रात हमने स्वप्न देखा था कि 'अभ्युदय' प्रेस में एक भयंकर आग लग गयी है। अग्नि की ज्वाला प्रचंड वेग से ऊपर जा रही थी और आस-पास के मकानों में फैल रही थी। इसी समय डाक में आये हुए २३ संख्या के 'अभ्युदय' को पढ़कर जो वेदना हमको हुई, वह उससे बहुत अधिक है जो स्वप्न में प्रेस को जलते हुए देखकर हुई थी। यदि पिछली संख्या का प्रधान लेख छपने के पहले प्रेस भस्म हो गया होता तो हमको उतना दुःख न होता जितना इस लेख को 'अभ्युदय' में छपा देखकर हुआ है। यदि पत्र को बन्द करने से इसका प्रायश्चित हो सकता तो हम पत्र को तुरन्त बन्द कर देते; किन्तु वह भी नहीं हो सकता। जब तक हम जीते हैं तब तक हमको 'अभ्युदय' या 'मर्यादा' में ऐसे भाव प्रकाशित करना उचित नहीं है जिनके कारण हमको समाज के सामने अपराधी बनना और लज्जित होना पड़े।

'तुम समाज का हित चाहते हो, समाज की सेवा करना चाहते हो, किन्तु समाज तुम्हारी सेवा कभी न स्वीकार करेगा, तुमको सेवा का अवसर भी न देगा। यदि तुम मर्म की बातों में समाज की मर्यादा का पालन न करोगे और समाज को मर्मवेधी वचन सर्वसाधारण में कह दुःखित और लज्जित करोगे, जो बातें घर में बैठकर धीरता और दुःख के साथ विचारने की हैं, उनको इस रीति से ऐसे शब्दों में पत्र में प्रकाश करना अक्षंतव्य अपराध है।

'सत्कार्य का उत्साह प्रशंसनीय है किन्तु यदि वह मात्रा और मर्यादा के भीतर रहे। जो उत्साह की बाढ में विवेक और विचार को बह जाने दोगे तो (तुम) कुछ भी उपकार नहीं कर सकोगे। हम आशा करते हैं कि आगे तुम ऐसी शोचनीय भूल न करोगे। सहस्रों घावों पर मलहम लगाना, सहस्रों विषयों का असर समाज के शरीर से निकालना, सहस्रों औषधियों के प्रभाव से उस शरीर को पवित्र और पुष्ट बनाना है।

परन्तु यह तभी सम्भव है जब मर्यादा का पालन करते समाज का आदर और मान मन में प्रधान रखते (तुम) सेवा करोगे और औरों को ऐसी सेवा करने का उपदेश करोगे।

हम एक लेख भेजते हैं, इसको आगे की संख्या में जो आगामी शनिवार को—२० जून को छपेगी छपवा दो, हिचकिचाना मत। इससे कम में काम नहीं संभल सकता। इतना करने पर भी संभलेगा कि नहीं, यह निश्चय नहीं। दूसरी संख्या के लिए फिर लेख भेजेंगे।

तुम्हारा

१७.६.१४ मदनमोहन

श्री कृष्णकांत मालवीय ने इस पत्र के उत्तर में जो पत्र भेजा, उसमें उन्होंने अपनी सफ़ाई दी। उनका कहना था कि वह विधवाश्रम की एक संस्था स्थापित करने जा रहे हैं। उसी के सम्बन्ध में यह आरम्भिक लेख था।

मालवीय जी का लेख २० जून, सन् १९१४, को ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया गया।

श्री कृष्णकांत जी के उत्तर का सार हमने ऊपर दिया है। उनका उत्तर भी हम यहाँ पर देना चाहते हैं ताकि पाठकों को यह पता लग जाए कि 'अभ्युदय' के उस समय के संपादक ने क्या जवाब मालवीय जी को दिया था—

'बाबू,*

कृपापत्र मिला। आपको व्यथा पहुँची इसका हमें बहुत दुःख है किन्तु इतना कहने के लिए हम अब भी क्षमा चाहते हैं कि अपनी समझ में हमने लेख में कोई अनुचित बात नहीं लिखी। लेख तीखा है, कटु है, एक दो स्थानों पर वह सीमा को डाक गया है किन्तु इस सबका एक मात्र उद्देश्य यही था कि लोगों को चोट पहुँचे, हथोड़े की चोट से वे जागें, और कर्तव्य पथ के निश्चय करने पर वे उद्यत हों। इस सम्बन्ध में हम एक लेख भूमिका की भाँति इस अंक के पहले निकाल चुके थे। हमने उसमें साफ-साफ लिख दिया था कि विधवा-दशा के सुधार के दो ही उपाय हैं, एक तो वैवाहिक अवस्था को बढ़ाना, दूसरे विधवा-आश्रमों का स्थापित करना। आप को मालूम होगा कि एक विधवा-आश्रम के स्थापित करने के लिए हम उद्योग कर रहें हैं। बस उसी के लिए लोकमत तैयार करने को हम ये लेख निकाल रहे हैं। विधवा विवाह के लिये कभी एक शब्द हमने नहीं लिखा है। इसके यह मानी नहीं हैं कि सभी अवस्थाओं में वह अनुचित है। हमने उसके लिये कभी कुछ नहीं लिखा। उसका एकमात्र कारण यही है कि हम इस बात को जानते और समझते हैं कि जनसाधारण के बीच में रहकर ही हम अधिक उपकार कर सकते हैं। साथ ही साथ हम समझते ही नहीं वरन् मानते भी हैं कि यदि हम जनसाधारण से दूर चले जाएँगे या आगे बढ़ जाएँगे तो हमारा कर्तव्य-क्षेत्र छोटा हो जाएगा और हम अधिक उपयोगी काम न कर सकेंगे और उपकार भी कुछ न कर सकेंगे। कसाईवाले लेख में टिप्पणियों के लिये स्थान था, उसके व्याख्या की आवश्यकता थी, वह हम आधी के करीब लिख चुके थे और दूसरी संख्या में वह लेख प्रकाशित हो जाता। संभव था उसे पढ़कर

* मालवीय जी के परिवार के उनसे आयु में छोटे व्यक्ति उन्हें 'बाबू' के संबोधन से पुकारा करते थे।

लोग यही समझते कि वह आप का या लाला जी (लाला लाजपतराय) का लिखा हुआ है। अस्तु, अब आप का भेजा हुआ लेख इस संख्या में प्रकाशित होगा। समय होता, आप यहाँ होते तो इसमें हम आप ही से फेर-फार करा लेते। बातें सब ये ही रहतीं शब्द सब ये ही रहते, केवल ढंग बदल जाता, साथ ही साथ 'अभ्युदय' की बात चौगुनी जोर की हो जाती। अब जिस तरह से लेख छप रहा है, उसे पढ़ते ही लोग समझेंगे कि यह आप का लिखा हुआ है और आप रफ़ू कर रहे हैं। अस्तु।

आप यह न समझें कि 'अभ्युदय' या 'मर्यादा' में कभी भी कोई वास्तविक सनातन धर्ममूलक सिद्धान्त के विरुद्ध कोई बात कभी जान में प्रकाशित होगी। इन सब लेखों के लिखने का एक प्रधान कारण यह भी है कि हम वैवाहिक अवस्था को बढ़वाना चाहते हैं। प्रश्न जो थे उनमें साफ़-साफ़ लिखा था कि 'शुद्धता के साथ विधवा जीवन को सुखकर बनाना।' लेख में, जहाँ कुसूर नहीं है, यह साबित किया था, वहाँ भी यही लिखा गया था, कि उसे अच्छी परिस्थिति में रहने का सौभाग्य न था, वह शिक्षित न थी, आदि।

आपका

कृष्ण"

उपर्युक्त दोनों पत्रों से मालवीय जी के हृदय की जो झाँकी हमें मिलती है, उसका और कहीं मिलना असंभव है। वह विधवा-विवाह के प्रतिकूल थे, यह बात इन पत्रों से स्पष्ट हो जाती है।

पंडित मदनमोहन मालवीय पत्रकार-कला को एक वैज्ञानिक कला मानते थे। ५ मई सन् १९०७ ई०, के 'अभ्युदय' में दैनिक पत्रकार की कला पर मालवीय जी ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए थे—

"दैनिक पत्र को प्रत्येक दिन के लिये कोई न कोई विशेष विषय नियत कर देना चाहिए। मान लीजिए कि सोमवार को आप साहित्य पर लिखते हैं तो मंगल को ग्राम-संगठन पर लिखिए, बुध को शारीरिक उन्नति पर लिखते हैं तो बृहस्पति को शिक्षा पर लिखिए। इसी तरह शुक्र और शनि को किसी और विषय पर लिखिए। निश्चित क्रम के अनुसार हमें दिन बाँट लेने चाहिए। नियत दिन पर उस विषय पर अवश्य लिखना चाहिए। इस तरह हर पाठक को अपनी रुचि के अनुसार मसाला मिल जाएगा। यदि इस ढंग से परिश्रम के साथ पत्र का संपादन और संगठन किया जाए तो ग्राहकसंख्या भी बढ़ेगी और जनता का विशेष उपकार भी होगा।"

मालवीय जी ही की प्रेरणा से सन् १९२४ में दिल्ली से निकलने वाले अंगरेजी दैनिक, 'हिन्दुस्तान टाइम्स,' को नया जीवन मिला। उसके डाइरेक्टरों ने एक मत से मालवीय जी को अपना चेयरमैन चुना। मालवीय जी की देख-रेख में उसने देश की जो सेवा की है, वह अनमोल है।

'लीडर' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का स्वामित्व इस समय श्री घनश्यामदास बिड़ला के हाथ में है। उन्होंने इन पत्रों को उन्नतिशील बनाने में कोई कोर-कसर नहीं रखी।

अपने अंतिम दिनों में मालवीय जी ने 'सनातन धर्म' पत्रिका को काशी से निकाला। इसका सारा प्रबंध मालवीय जी ने किया और वह उनके जीवन-काल में प्रति सप्ताह लोगों की सेवा करती रही।

इन पत्र-पत्रिकाओं को निकालने के अतिरिक्त, वह समय-समय पर दूसरे पत्रों को सलाह-मशविरा देते, और यदि किसी पत्र को आर्थिक सहायता की जरूरत हुई तो वह उसकी सहायता भी कर देते थे। इस पुण्य आत्मा का हिन्दी और अंगरेजी के पत्रों के साथ सहानुभूति का बर्ताव सदा रहा और उनकी उन्नति को देख कर वह प्रसन्न होते थे।

एक बात का उल्लेख करना बहुत जरूरी है। हमने यह लिखा है कि मालवीय जी ने स्वर्गीय श्रीकृष्णकांत मालवीय को साप्ताहिक 'अभ्युदय' के संपादन का भार सौंप दिया था। उन्होंने सन् १९१५ में अपनी विधवा माता के जेवर बेंच कर उसे दैनिक किया। दैनिक होने के बाद उनके एक संपादकीय लेख पर तीन हजार रुपए की जमानत अभ्युदय से माँगी गयी। मालवीय जी को 'अभ्युदय' की एक प्रति नियमित रूप से भेजी जाती थी जिसे वह बड़े चाव से पढ़ते थे और सदा इस बात का ध्यान रखते थे कि ऐसी कोई बात उसमें न निकल जाए जो उनके सिद्धांतों के विरुद्ध हो। ज्योंही मालवीय जी को मालूम हुआ कि दैनिक 'अभ्युदय' से जमानत मांगी गयी है त्योंही वह उचित कार्यवाही करने को सोचने लगे। पं० कृष्णकांत मालवीय अपना इस्तीफ़ा देकर बंबई चले गये। मालवीय जी ने उनके स्थान पर एक लेखक को 'अभ्युदय' का अवैतनिक संपादक नियुक्त किया और उधर सरकार से लिखा-पढ़ी शुरू की। अंत में सरकार ने अपनी जमानत वाली आज्ञा वापिस ले ली। इसके बाद सन् १९१८ के आरम्भ में फिर से मालवीय जी की आज्ञानुसार 'अभ्युदय' का संपादन पं० कृष्णकांत मालवीय करने लगे।

इसके उपरान्त श्री पद्मकान्त मालवीय 'अभ्युदय' के संपादक हुए और उनके समय में 'अभ्युदय' बंद हो गया।

(मालवीय जी के 'अभ्युदय' वाले दो उद्धरण)

(१) "हमारी अभिलाषा मंद नहीं है। पृथ्वी मंडल पर जितने पर्वत हैं, उनमें सबसे ऊँचा पर्वत नगाधिराज हिमालय है। उसका सबसे ऊँचा धवल शिखर पृथ्वी के सब पर्वतों की धवल चोटियों के ऊपर आकाश को शोभित करता है। हमारी प्रार्थना और अभिलाषा है और परमेश्वर इसको पूरी करेगा कि हमारे देश का अभ्युदय पृथ्वी के किसी और देश के अभ्युदय से किसी अंश में कम न रहे, वह चढ़ा-बढ़ा रहे जैसे हिमगिरि के शिखर और पर्वतों के शिखरों से बढ़े-चढ़े हैं।"

(२) "हिन्दुस्तान में अब केवल हिन्दू ही नहीं रहते—हिन्दुस्तान अब केवल उन्हीं का देश नहीं है। हिन्दुस्तान जैसे हिन्दुओं का प्यारा जन्म-स्थान है वैसा ही मुसलमानों का भी है। ये दोनों जातियाँ अब यहाँ बसती हैं और सदा बसती रहेंगी। जितना उन दोनों में परस्पर मेल और एकता बढ़ेगी, उतनी ही इस देश की उन्नति करने में हमारी शक्ति बढ़ेगी। और इसमें जितना ही बैर या विरोध या अनेकता रहेगी, उतना ही हम दुर्बल

रहेंगे। जब ये दोनों एकता के साथ उन्नति की कोशिश करेंगे, तभी इस देश की उन्नति होगी। इन दोनों जातियों में और भारतवर्ष की सब जातियों—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी—में सच्ची प्रीति और भाइयों जैसा स्नेह स्थापित करना हम सबका बड़ा कर्तव्य है।—हमको इस बात के कहने में कुछ ही संकोच नहीं कि जो हिंदू या मुसलमान ऐसा कहता है कि हम एक नहीं है, वह देश का शत्रु है। इतना ही नहीं, बल्कि वह अपनी विशेष जाति का भी शत्रु है। हम सबको उचित है कि सब एक दूसरे के हित को संताप पहुँचाने वाली बीती बातों को भूल जाएँ, एक दूसरे का हित और शुभ चाहें और एक दूसरे के हित और सुख के यत्नों में सहायक हों।

———

नवाँ अध्याय

मालवीय जी की आस्तिकता और फुटकल बातें

मालवीय जी आस्तिक थे। आरंभ से ले कर अन्त तक वह आस्तिक ही रहे। वह साकार रूप में भगवान की पूजा करते थे। उन्होंने अपनी स्वरचित 'ईश्वर' नामक पुस्तिका में इस विषय पर बहुत प्रकाश डाला है। वेदों-उपनिषदों से बहुत से मंत्र देकर उन्होंने यह बात सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ईश्वर की सत्ता इस जगत् में सर्वोपरि है और उसकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता।

इस संबन्ध में उन्हीं की इस पुस्तिका से कुछ उद्धरणों को मैं देना चाहता हूँ, ताकि पाठकों को यह पता लग जाए कि मालवीय जी की आस्था कितनी प्रबल और गहरी थी—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ २।९।३३

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा हृदिस्थं मनसा य
एवमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ श्वेता० ४।१७

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

सोई सच्चिदानन्द घन रामा।
अज विज्ञान रूप बलधामा॥
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥

सूरदास जी ने कहा है—

जगत्पिता जग के आधार।
तुम सबके गुरु सबके स्वामी,
तुम सबहिन के अन्तर्यामी॥
हम सेवक तुम जगत अधार,
नमो नमो तुम्हें बारंबार।
सर्वशक्ति तुम सर्व अधार,
तुम्हें भजे सो उतरे पार॥

इस प्रकार मालवीय जी ने अपनी लिखी हुई पुस्तिका में वेद-उपनिषद् आदि धर्म-ग्रंथों से संकलन कर ईश्वर की महिमा का वर्णन किया। इससे मालवीय जी के हृदय के एक-एक कोने की झाँकी हमें मिलती है।

उनके भारती भवन वाले घर में, जहाँ राधा-कृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित थीं, मालवीय जी, आने और जाने के समय, पहन हुए सारे वस्त्र उतार कर और गीला दुपट्टा पहन कर, वह उन्हें साष्टांग प्रणाम करते थे। यह उनका अनिवार्य नियम था, चाहे इसके कारण उनकी रेल भले ही छूट जाए।

× × ×

श्री ब्रजमोहन व्यास, श्री रामनाथ सुमन, श्री चंद्रबली त्रिपाठी और श्री पद्मकांत मालवीय द्वारा संपादित 'मालवीय जी की जीवन-झलकियाँ' में जो संस्मरण आए हैं, वे इतने अधिक हैं कि उनका विस्तार से लिखना हमारी समझ में बड़ा भारी पोथा बन जाएगा। उनमें दयालुता थी, परदुःख के निवारण की तमन्ना थी, अक्रोध था और सदा मुस्कराते रहते थे। उनके ऊपर चाहे जितने भारी गाज गिरे या दैवी विपत्तियों का पहाड़ टूटे, उनकी यह मुस्कान कभी किसी ने न लुप्त होते हुए देखी। सब विपत्तियों को विवेक से और संयम के साथ सामना करने के लिये वह तैयार रहते थे, लेकिन उनकी यह मधुर हँसी ने कभी उनके चेहरे पर शिकन न आने दी। यह मालवीय जी की विशेषता थी।

× × ×

श्री पद्मकांत मालवीय न मालवीय जी के जो संस्मरण लिखे हैं, उनका उल्लेख कर देना आवश्यक है।

जिस समय पंडित पद्मकांन्त मालवीय जी बनारस हिंदू स्कूल में पढ़ते थे, उस समय की एक घटना का उन्होंने जिक्र किया है। उससे मालवीय जी की सज्जनता और उदारता का हमें सहज ही बोध हो जाता है। श्री गोविंद मालवीय जी (मालवीय जी के चौथे पुत्र) मालवीय जी के साथ रहते थे। मालवीय जी की तबियत काफ़ी ख़राब थी और डाक्टरों ने उन्हें किसी से मिलने या बात करने की सख्त मना ही कर दी थी। श्री गोविंद मालवीय ने मकान के सबसे पिछले ऊपरी हिस्से के एक कमरे में उनके रहने का प्रबंध कर दिया था। एक दिन कुछ मद्रासी भाई मालवीय जी के दर्शनों की अभिलाषा से बंगले पर आए। श्री गोविंद मालवीय उन्हें मिलने से रोक रहे थे और वे लोग कहते थे कि 'बिना दर्शन किए हम जाएँगे नहीं।' दर्शनार्थी ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला कर बातें करने लगे। आवाज़ बाबू* जी के कानों तक पहुँच गयी। उन्होंने मुझे बुलाया और पूछा कि 'मामला क्या है?' मैंने साफ़-साफ़ बता दिया। उन्होंने कहा, 'बुलाओ गोविंद को।' मैं (उन्हें) बुला लाया। आते ही श्री गोविंद मालवीय पर बाबू जी नाराज़ होने लगे, बोले, 'मुझसे मिलने आने वालों को रोकने का तुम्हें क्या अधिकार है? यह बंगला जनता का है। मेरी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं। मैं जनता की सेवा करता हूँ। इसलिए यहाँ (मैं) रहता हूँ। जनता को अधिकार है कि वह जब चाहे, तब अपने सेवक से सेवा ले सकती है। उन लोगों को बुला लाओ।' श्री गोविंद मालवीय नाराज़ हो गए और मालवीय जी से तर्क-वितर्क करने लगे। बाबू जी का धैर्य छूट गया। उन्होंने बिगड़ कर कहा, 'गोविंद, मैं

* मालवीय जी के परिवार के (उन से आयु में छोटे) व्यक्ति उन्हें 'बाबू' के संबोधन से पुकारा करते थे।

तुमसे तर्क नहीं सुनना चाहता। यदि तुम्हें इन बातों से कष्ट होता है तो अच्छा हो कि तुम अपने रहने का प्रबंध किसी दूसरी जगह कर लो। इस मकान पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। यहाँ रह कर तुम्हें मैं अपने और जनता के बीच आने का अधिकार कदापि नहीं दे सकता।'

श्री पद्मकांत मालवीय से मालवीय जी ने कहा कि 'तुम जाओ और उन लोगों को यहाँ बुला लाओ। बेचारे इतनी दूर से आते हैं। बार-बार आने का पैसा बेचारे ग़रीबों के पास कहाँ है! और गोविन्द, वे चाहते क्या हैं, कुछ नहीं, केवल अपने सेवक का दर्शन; और तुम उन्हें रोक रहे हो। छिः छिः कैसी छोटी बात है।'

× × ×

दूसरी घटना का जो वर्णन श्री पद्मकांत मालवीय ने किया है, उससे मालवीय जी के विचार भिक्षा-वृत्ति के विषय में हमें मालूम होते हैं। उन्होंने कहा है—'देखो, जानते हो मैंने तुम्हें अपना भोजन क्यों नहीं करने दिया था? तुम्हें यह मालूम है न कि मेरे भोजन की सामग्री शिवप्रसाद (देशभक्त स्वर्गीय बाबू शिवप्रसाद गुप्त) के यहाँ से आती है? वह सीधा मेरे लिये दान में आता है। बाबू (हमारे परबाबा अर्थात् मालवीय जी के पिता) कहा करते थे कि वही ब्राह्मण दान ले, जिसमें दान को पचाने की शक्ति हो। इसीलिए हमारे यहाँ दान नहीं लिया जाता। दान एक प्रकार की भीख ही तो है। भिक्षा का अन्न खाना कोई अच्छी बात नहीं। ऐसा अन्न खाने से मनुष्य में आलस्य आता है। 'आलस्याद् अन्नदोषाच्च'। मैं थोड़ी-बहुत देश और समाज की जो सेवा कर देता हूँ, उसके बदले यह दान स्वीकार कर लेता हूँ। मजबूरी, क्या करूँ? उस जन्म में न जाने कौन-सा पाप बन पड़ा था जो इस जीवन में दूसरों का आश्रित बनना पड़ा। मैं नहीं चाहता कि मेरे परिवार में अन्य कोई व्यक्ति दूसरों का आश्रित होकर भिक्षा का जीवन-यापन करे।"

× × ×

उनके लिखे हुए चार पत्रों का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। उन पत्रों के पढ़ने से मालवीय जी के पारिवारिक जीवन का बहुत कुछ पता चलता है।

काशी विश्वविद्यालय के स्थापित होने के बाद, मालवीय जी प्रायः उसके लिये चंदा जमा करने में लगे रहते थे। इसलिए उनके परिवार वालों को उनसे कुछ भी प्रेरणा नहीं मिलती थी। इस प्रेरणा को वह देते थे पत्रों के द्वारा। इस संबंध में इन पत्रों का महत्व और भी अधिक है। वे अकृत्रिम हैं, उनमें बनावट लेशमात्र को भी नहीं है। उनके पेट में जो कुछ था, उसी को साफ़-साफ़ शब्दों में उन्होंने लिख दिया था—

(१)

श्रीः

चि०.....को आशीष

तुम्हारा पत्र पहुँचा। तुम भगवान से प्रार्थना करते जाओ और बुद्धि के अनुसार यत्न और प्रबंध करते जाओ। ईश्वर दया करेंगे।

तुमने.....से रुपया मँगाया, यह भूल किया। हम चाहते हैं कि जितना कमीशन.....एजेंसी से मिले, उसी में कानपुर की दुकान का खर्च चले। यदि तुम वहाँ से रुपया अभी मँगावोगे तो.....के कर्ज़दार हो जावोगे और वह काम भी हाथ से जाएगा और प्रतिष्ठा जाएगी.....यदि अभी कुछ आमदनी नहीं हो सकती तो हमारी राय है कि तुम बहू को यहाँ पहुँचा जाओ.....जब कुछ मुनासिब आमदनी होने लगेगी तो फिर (उसे) लिवा ले जाना। बिरला जी तथा और बड़े-बड़े व्यापारी बहुत दिनों तक अपनी गृहस्थी को परदेश नहीं लिवा गए। यही ठीक व्यापार का मार्ग है। तुमको तो तपस्या के समान व्यापार करना है। इसलिए हम आशा करते हैं कि हमारा कहना तुमको असह्य न होगा। समय के अनुसार काम को संभालना धर्म है।

और सब यहाँ कुशल है। अपनी लोगों की प्रसन्नता का समाचार लिखना। एक श्लोक सदा याद रखना।

पुत्रदारैर्वियुक्तस्य वियुक्तस्य धनेन वा।
मग्नस्य व्यसने कृच्छे धृतिः श्रेयस्करी नृप॥

किसी दशा में भी—

"छोड़ना न हिम्मत, बिसारना न राम।"

प्रयाग
४-६-२५

तुम्हारा
बाबू जी

(२)

श्रीः

बनारस
१९-१-४०

चि०.....आशीष,

ईश्वर की दया हुई जो सर्प का विष तुम्हारे शरीर में नहीं फैला। मालूम होता है कोई भारी अरिष्ट था किंतु ईश्वर की दया से वह थोड़ा ही क्लेश दे कर निकल गया। इसके प्रायश्चित स्वरूप विष्णुसहस्रनाम के ११ पाठ कर लो यह संकल्प करके कि जो दोष हुआ हो उसको भगवान क्षमा करें और सदा अपने अनुग्रह से रक्षित रखें। अपनी माता से कह देना कि उन्होंने जो चिट्ठी मालती (उनकी एक पुत्री जो बनारस में ब्याही है) के पास भेजी थी उसे हमने सब पढ़ लिया। अच्छा हुआ उन्होंने विस्तार से सब हाल लिखा दिया था, नहीं तो चिंता अधिक होती। हम अमावस के लगभग आने का विचार करते हैं।

सबको आशीष

बाबू जी

(३)

श्रीः

चि०·····आशीष

तुम्हारा लंबा पत्र आया तबसे हम तुम को पत्र लिखने की इच्छा रहते हुए भी अब तक नहीं लिख सके। इसका कारण काम की भीड़ और स्वास्थ्य की दुर्बलता है।

तुम्हारी यह भूल है जो तुम समझते हो कि हम तुमसे नाराज हैं। तुम्हारी भूलों से हम दुखित अवश्य हैं। पर अब जो हो गया वह लौट तो नहीं आ सकता। हम चाहते हैं कि तुम नारायण की शरण में सच्चे भाव से रहो। नित्य नम्रतापूर्वक प्रार्थना करो कि (तुमसे) जो अपराध हो गया है उसको भगवान क्षमा करें। दूसरे का धन अपना धन नहीं होता। उस धन को इतना अधिक व्यय कर देना जितना तुमने कर दिया, न केवल भूल हुई किंतु पाप भी हुआ और बड़ा पाप हुआ। अब उसके विषय में विशेष लिखने से कोई लाभ नहीं। स्मरण रखो—

इदमेव हि पांडित्यमियमेव विदग्धता।
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः॥

यही पांडित्य है। यही चतुराई है। यही परम धर्म है कि जितना आय हो उससे अधिक व्यय न हो। परन्तु भूल बहुतों से हुई है और होती है।

हम तुम्हारे हृदय की शुद्धता को जानते हैं। यदि तुम ऋण में ग्रस्त न होते तो हम तुमको अपने पास रखते। उसमें हमको सुख होता। किंतु अब तुम्हारा यही धर्म है कि भगवान की प्रार्थना करते हुए और यह विश्वास रखते हुए कि उन्होंने करोड़ों पतितों, आर्तों, दुखियों को उबारा है, तुमको भी उबारेंगे। ऐसा मन लगा कर व्यापार करो कि जिससे काम पड़े सब लोग इस बात की प्रशंसा करें कि तुम व्यापार पर पूरा ध्यान देते हो। और धर्म-भाव से व्यापार में तत्पर हो। यदि शुद्ध भाव से आर्त होकर प्रार्थना करते जाओगे और उत्साह और विश्वास के साथ परिश्रम और उद्योग करते जाओगे तो परमात्मा प्रसन्न होंगे। उनके प्रसन्न होने पर तुम्हारी माता, तुम्हारे पिता, समस्त भाई-बंधु और मित्र सब प्रसन्न होंगे। बस इस समय इतना ही लिखते हैं। फिर और लिखेंगे। किंतु इतने में सब तत्व आ गया है।

तुम्हारा
बाबू

(४)

श्रीः

चि०·····आशीष

तुम्हारा पत्र पहुँचा। चि० शचीकान्त का विवाह कुशलपूर्वक हो गया, ईश्वर का अनुग्रह हुआ। सब कामों में सबसे अधिक परिश्रम, तुम ही को पड़ा। ईश्वर की दया हुई। इससे तुमने सब निबाह लिया।

जो सहायता ब्रजमोहन जी ने इन कार्यों में दी, उसके लिये उनका बहुत-बहुत धन्यवाद करना।

जो २००) दो सौ भेजा है Insured letter से, उसमें से नीचे अनुसार देना—

·····(एक बहू) को दो महीने का		५०	५०=१००)
·····(एक विवाहिता पुत्री)	,, ,,	२०	२०= ४०)
·····(एक विधवा भौजाई)	,, ,,	१५	१५= ३०)
बेनी को (एक पुराना नौकर)	,, ,,	१०	१०= २०)
पंडित जी को (जो राधाकृष्ण की पूजा करते थे)	,, ,,	५	५= १०)
			२००)

हम बीस को काशी पहुँचना चाहते हैं, हो सकेगा तो १ दिन के लिये प्रयाग आवेंगे। तबीयत अच्छी है।

मंसूरी १२-७-३८ म० मो०

हजारों-लाखों व्यक्तियों के बीच में यदि मालवीय जी हों तो उन्हें पहचानने में कोई कठिनाई लोगों को नहीं होती थी। उनका वेश ही ऐसा था। कालेज के समय से उनका वही वेश अंत तक रहा, उसमें किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं हुआ। श्री चंद्रबली त्रिपाठी ने अपने संस्मरणों में यह लिखा है—"महामना मालवीय जी पूजा-पाठ के समय में, कथा सुनाते समय, यहाँ तक कि भोजन भी करते समय, वह शुद्ध रेशमी वस्त्रों का उपयोग करते थे। धोती के नीचे बिना सिला हुआ टुकड़ा वह लंगोट की जगह लगाते थे। बंडी पहनते थे जो नित्य धोयी जाती थी। उनके वेश में लंबा बंददार अचकन, उसके ऊपर भली-भाँति सँवारी हुई पगड़ी और गले में घुटनों तक लटकता हुआ दुपट्टा और ललाट पर मलयागिरि का चंदन उनके सुघड़ गौर वर्ण पर शोभा देता था। इस वेश का बहुतों ने अनुकरण भी किया। किंतु केवल उनके ज्येष्ठ आत्मज पंडित रमाकांत मालवीय ही उसमें पूरे उतरे।·····पंडित जी का दुपट्टा गले में एक लपेट लेता हुआ दोनों घुटनों तक पहुँचता था। पगड़ी सँवारने में वह जैसी सावधानी रखते थे, दुपट्टे के लगाने में वह उससे कम नहीं करते थे। उसे गले में डालने के पूर्व उसकी चार परतों की एक पर्त बनायी जाती थी, इस ढंग से कि कहीं किसी परत में सिकुड़न का नाम न रहने पाता था। ऐसा करने में वह अपना हाथ स्वयं लगाते थे। सेवक का भी सहारा लेते थे।···यद्यपि मालवीय जी सोलह वर्ष की आयु ही से स्वदेशी वस्त्र पहनते थे, पंजाब के दौरे के पूर्व केवल खादी का उपयोग उनका नियम नहीं था। परन्तु लाहौर के एक प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्ता ने उनसे नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि "महाराज, आप के वस्त्र खद्दर के नहीं हैं। तैयार करा दें।" पंडित जी ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "जैसा चाहो।" अविलंब श्री कोहली ने सब परिधान खादी के तैयार करा दिए और तबसे उन्होंने खद्दर को कभी नहीं छोड़ा।" पहले वह पाजामा पहनते थे, लेकिन बाद में धोती का वह प्रयोग करने लगे। अध्यापक होने के समय उन्होंने सफेद मोजे पहनना शुरू कर दिया था।

× × × ×

इस संबंध में श्री ब्रजमोहन व्यास ने भी 'सरस्वती' में बहुत कुछ लिखा है। उसका संक्षेप में वर्णन करना आवश्यक है—"मालवीय जी की वेश-भूषा, एक ख़ास तौर की पगड़ी, अंगा, दुपट्टा और पायजामा, सभी सफेद कपड़े की थी। यही वेश-भूषा उनकी छात्रावस्था में थी और यही थी जब वे स्कूल में अध्यापक हुए। अध्यापन के समय से सफेद मोज़ा और बढ़ गया। यही पहनावा उनका अंत तक क़ायम रहा। एक मोटी छड़ी वह सदा हाथ में रखते थे। काले कपड़े से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। जीवन-पर्यन्त उन्होंने काला कपड़ा नहीं पहना। हाईकोर्ट में वकालत करने के समय भी काला 'गौन' वह कभी नहीं पहनते थे। जीवन में केवल एक बार जी मसोस कर, उन्हें इसके प्रतिकूल करना पड़ा। महारानी विक्टोरिया के निधन के अवसर पर नगर के बड़े गिरजे में 'सर्विस' हुई थी। मालवीय जी का उसमें सम्मिलित होना अनिवार्य था। परंतु उसमें बिना काला कपड़ा पहने कोई सम्मिलित नहीं हो सकता था।···उस दिन के लिये उन्होंने एक काला 'गौन' (लबादा) बनवाया। उसे एक 'भृत्य' लेकर उनके साथ गिरजाघर गया। गिरजाघर के 'हाल' में घुसने पर उन्होंने उसे ओढ़ लिया और वहाँ का कार्यक्रम समाप्त होने पर सबसे पहले उतार कर उसे 'भृत्य' को दे दिया, तब चैन की साँस ली। घर पर आकर कहने लगे कि जब तक वह उस काले 'गौन' को ओढ़े गिरजाघर में बैठे थे, उन्हें बड़ा मानसिक क्लेश हो रहा था। उनके जीवन में यह पहली और अंतिम बार था जब किसी काले कपड़े का उन्होंने स्पर्श किया हो।"

× × × ×

मालवीय जी अपने शहरी घर की अटारी पर भोजन करने जाते थे। मालवीय जी रेशमी वस्त्र पहने सीढ़ी पर चढ़ते हुए यह पद गुनगुनाया करते थे—

नंद-भवन को भूषन भाई
यशोदा को लाल बीर हलधर को
राधारमन चरण सुखदाई।

आख़िरी सीढ़ी पर पहुँच कर वह बहुत मधुर वाणी में कहते थे—"अन्नपूर्णे! भिक्षुक आ गया। भिक्षा दोगी?" उनकी पत्नी तत्काल वहाँ आ जातीं और उनके लिये आसन बिछा देतीं।

× × × ×

मालवीय जी की धर्म की व्याख्या बहुत व्यापक थी। वह काँटे-छुरी तक ही परिमित न थी। उन्होंने एक मुसलमान सज्जन को शाम की नमाज पढ़ने के लिये मजबूर कर यह कहा था, "हिन्दू और मुसलमानों को अपने-अपने मज़हब का पालन करना चाहिए और पालन करते हुए देश की उन्नति में साथ देना चाहिए। यह काँटे-छुरी की दोस्ती नहीं है।"

× × × ×

एक और विशेषता मालवीय जी में थी। कभी किसी भाषण में या निजी बातचीत में किसी व्यक्ति की कोई निन्दा वह नहीं करते थे। दूसरों पर आक्षेप लगाने के बजाय, वह यह कहा करते थे कि "ईश्वर ही को इसका न्याय करना है, हम कौन होते हैं, जो किसी पर उँगली उठाएँ।" उन्होंने इसीलिए कभी किसी पर चोट नहीं की और न कटु वचन कहे।

× × × ×

मालवीय जी में वे सभी गुण विद्यमान थे, जो किसी एक महापुरुष में होने चाहिए। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि मालवीय जी सब गुण-संपन्न थे। महात्मा गाँधी ने सन् १९३१ में कहा था:—

"मैं तो मालवीय जी महाराज का पुजारी हूँ। पुजारी कैसे स्तुति के वचन लिख सके? (वह) जो कुछ लिखेगा, उसे (वह) अपूर्ण-सा प्रतीत होगा। मालवीय जी के दर्शन सन् १८९० के साल मैंने चित्र द्वारा किया था। वह चित्र विलायत में जो इंडिया पत्र मी० डिगबी निकालते थे, उसमें था। माना जाए कि वही छवि (चित्र या तस्वीर) में आज भी देख रहा हूँ। जैसे उनके लिबास में वैसे ही उनके विचार में ऐक्य चला आया है; और इस ऐक्य में मैंने माधुर्य और भक्ति पायी है। आज मालवीय जी के साथ देशभक्ति में कौन मुक़ाबला कर सकता है? यौवनकाल से आरंभ करके आज तक उनकी देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है। काशी विश्वविद्यालय में मालवीय जी प्राण हैं, काशी विश्वविद्यालय मालवीय जी का प्राण है। यह नर-वीर हमारे लिये दीर्घायु हो।

विलायत जाते हुए
७-९-३१

मोहन दास गाँधी

———

दसवाँ अध्याय

हरद्वार की हर की पैड़ियों में गंगा जी की अविच्छिन्न धारा

सन् १९१४ से मालवीय जी ने हर की पैड़ियों में गंगा जी की धारा को अविच्छिन्न रखने में हिन्दू-जाति की महान सेवा की। उनका खुद का कहना था—'गंगा जी की धारा को अविच्छिन्न रखने में मुझे बहुत प्रयत्न करना पड़ा'। लेकिन इसका परिणाम क्या हुआ? इन सारे प्रयत्नों का फल यह हुआ कि हरद्वार में केवल ६ फुट का छेद बाँध में रह गया है। इन प्रयत्नों की भी एक मनमोहक कहानी है। उसे मैंने श्री परमानन्द की कृपा से पायी है। वह "नेशनल आर्काइव्स आफ़ इंडिया" से इसकी पूछताछ कर रहे हैं। अभी तक उस पूछताछ का जो परिणाम निकला, उसे मैं आगे दूंगा। पहले श्री परमानन्द जी की कहानी सविस्तार रूप से मैं देना चाहता हूँ।

सन् १९१४ में उत्तर प्रदेश के सिंचाई विभाग ने एक योजना बनायी, ताकि गंगा जी की धारा का सब पानी हर की पैड़ियों में न जाए बल्कि वह पानी नहर में गिरे तो अच्छा होगा। मालवीय जी वहाँ पर गये और सनातन धर्म सभा से यह प्रस्ताव पारित कराया कि इस योजना को कार्यान्वित सरकार न करे, क्योंकि इससे हिन्दू-यात्रियों को बहुत कष्ट होगा और उनके धार्मिक विश्वासों को आघात लगेगा। इसके बाद, मालवीय जी एक महीने तक ज्ञापन की तैयारी में लगे रहे। वह ज्ञापन (मेमोरेन्डम) उत्तर प्रदेश के तत्कालीन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, सर जेम्स मेस्टन के पास भेजा गया। मालवीय जी ने इस ज्ञापन की प्रतिलिपियाँ, राजा-महाराजाओं के पास भी भेजीं। सर जेम्स मेस्टन ने १८ और १९ दिसम्बर, १९१६ को एक कान्फ्रेन्स बुलायी। उस कान्फ्रेन्स में शरीक होनेवाले ६ बड़े-बड़े महाराजे, ७ सरकारी मुलाजिम और १६ जनता के प्रतिनिधि थे। जनता के १६ प्रतिनिधियों में मालवीय जी भी थे। हर की पैड़ी पर नदी के बहाव को रोकने की योजना का घोर विरोध हुआ; क्योंकि लाखों यात्री दूर-दूर से वहाँ पर आते हैं। उनके धार्मिक विश्वासों की हवहेलना करना अनुचित होगा। इस कान्फ्रेन्स ने बहुमत से यह तय किया कि यह कहना कि बाँध में ५ फुट का छेद कर दिया जाएगा, अनुचित होगा, क्योंकि यात्रियों को स्नान के लिए पूर्णरूपेण पानी मिलना चाहिए और यह तभी संभव है जब गंगा जी की धारा अविच्छिन्न रूप से उन्हें स्नान के लिए मिले। कान्फ्रेन्स में तत्कालीन ले० गवर्नर ने मालवीय जी से पूछा कि क्या वह बाँध बनाने के बिलकुल विरुद्ध हैं? मालवीय जी ने उत्तर दिया—'हाँ, मैं इसके बिलकुल विरुद्ध हूँ न तो कोई फाटक लगे और न बाँध के जरिए से पानी आए'। अन्त में तय यह हुआ कि गंगा जी की धारा अविच्छिन्न रूप से हर की पैड़ी पर यात्रियों को मिलेगी।

सन् १९२२ में फिर आंदोलन उठ खड़ा हुआ, क्योंकि उस वर्ष एक पुल गंगा जी पर बाँधा गया था, जिस पर सरकारी मुलाजिम खड़े होकर स्नान करती हुई स्त्रियों को देखते थे। अन्त में वह पुल हटाया गया। १९ मई, सन् १९२२, को उत्तर प्रदेश के सिंचाई

विभाग ने अपने एक पत्र में यह आश्वासन दिया कि हर की पैड़ी में एक हजार क्युसेक के स्थान में तीन हजार क्युसेक पानी दिया जाएगा।

सन् १९२७ के कुंभ मेले के सिलसिले में सन् १९२६ में फिर एक पुल बनाया गया। इससे हिन्दू जनता भड़की और गंगा-सभा की ओर से तत्कालीन ज़िला अफ़सर को शिकायत की एक चिट्ठी भेजी गयी। उस अफ़सर ने आंदोलन को दबाने की चेष्टा की। उसने गंगा सभा के सभापति को धमकी दी कि उसके विपरीत सरकारी रुख कड़ा हो जाएगा। यह बात मालवीय जी तक पहुँचाई गयी। उन्होंने उसी समय १३०० शब्दों का एक तार उत्तर प्रदेश की सरकार को भेजा जिसमें इस धमकी की घोर निन्दा की गयी और सरकार से यह प्रार्थना की गयी कि हरद्वार के उस अफ़सर के विरुद्ध कोई उचित कार्यवाही की जाए। मालवीय जी उस समय हिन्दू महासभा के उप-सभापति और सनातन धर्म कान्फ्रेन्स के सभापति थे। इन्हीं दोनों पदों के नाम पर वह तार भेजा गया था। इसके जवाब में सरकार ने यह किया कि कोई सरकारी सफ़सर पुल पर खड़ा होकर नहाती हुई स्त्रियों को न देखे। सरकारी आज्ञा के अनुसार, कोई सरकारी अफ़सर पुल पर खड़ा नहीं हो सकता था।

सन् १९३३ में फिर सरकार का ध्यान इस ओर दिलाया गया कि सन् १९१६ में जो आश्वासन दिया गया था, उसकी न तो पूर्ति हुई और न सन् १९२२ में दिए हुए आश्वासन का कोई फल निकला।

सन् १९१६ में उत्तर प्रदेश की सरकार की ओर से यह आश्वासन दिया गया था कि हर की पैड़ी में स्नान करने वाले यात्रियों को पर्याप्त मात्रा में अविच्छिन्न रूप से पानी मिलेगा। सन् १९२२ में उत्तर प्रदेश के सिंचाई विभाग ने यह आश्वासन दिया था कि तीन हजार फुट क्युसेक हर की पैड़ी में गंगा जी का जल मिलेगा। इन्हीं दो आश्वासनों की पूर्ति के लिए सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया।

श्री मदनमोहन मालवीय के प्रयत्नों का फल यह निकला कि यथा सम्भव मामला तय हो गया।

यहाँ तक श्री परमात्मा नन्द जी के पत्र का सार दिया गया है। अब नेशनल आर्काइव की ओर हमें मुड़ जाना चाहिए—

(१) पी० डब्ल्यू० डी०, सी० डब्ल्यू०, इरीगेशन फ़ाइल नं० ए, जुलाई १९१४ में यह कहा गया है कि हरद्वार की नहर को बाँध से क्या लाभ होगा। योजना भारतमंत्री के पास स्वीकृति के लिए भेजी गयी, यद्यपि हिन्दू इसका विरोध कर रहे थे।

(२) पी० डब्ल्यू० डी०, सी० डब्ल्यू०, इरीगेशन ए अक्तूबर, १९१४ में कहा गया है कि भारत मंत्री ने इस योजना के लिए अपनी सम्मति दे दी है और अपर गंगेज कैनल (नहर) के लिए हरद्वार में एक स्थायी हेड वर्क बनाना मंजूर किया है।

(३) हरद्वार की श्री गंगा हिन्दू सभा के विरोध का ज़िक्र है। उसमें कहा गया कि मूलतः यह आंदोलन राजनीतिक है।

(४) होम फ़ोलियो नं० ए अप्रैल सन् १९१७ में (१) स्थायी हेड वर्क्स बनाने का नक़्शा है (२) उसमें उत्तर प्रदेश सरकार का हिन्दू आंदोलन के विषय में बयान है। (३) उसमें उत्तर प्रदेश की सरकार की ओर से उस कान्फ्रेन्स का भी जिक्र है जो सन् १९१६ में हुई। (४) होम मंत्रालय फोलियो ए जनवरी, १९१८ में उस लिखा-पढ़ी का जिक्र है, जो मालवीय जी, उत्तर प्रदेश की सरकार और भारत सरकार के बीच हुई थी। (५) मार्च १९१८ का होम फ़ोलियो ए में उस खतकिताबत का जिक्र है, जो सन् १९१६ में होने वाली कान्फ्रेन्स के आश्वासन के विपरीत नये ढंग से स्थायी हेड वर्क्स के बनाने की उत्तर प्रदेश के सिंचाई विभाग द्वारा योजना बनी थी।

इतना सब मसाला अभी तक नेशनल आर्काइव से प्राप्त हुआ है। इन पत्रों के देखने से इस बात की पुष्टि होती है कि उत्तर प्रदेश के तत्कालीन ले० गवर्नर ने एक कान्फ्रेन्स बुलाई थी और उसमें मालवीय जी शरीक हुए थे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सन् १९१८ में उत्तर प्रदेश के सिंचाई विभाग ने परिवर्तित योजना बनायी।

हमें सरकारी कागजों से कोई मतलब नहीं है। हमें तो मतलब है मालवीय जी की जीवनी से। श्री शिवनाथ काटजू (जो उत्तर प्रदेश के उच्च न्यायालय के जज बाद में हो गये) ने जो रोचक बयान (श्री पद्मकान्त मालवीय द्वारा संगृहीत "मालवीय जी की जीवन-झलकियाँ," पृष्ठ ३१) दिया है, उसे हम ज्यों का त्यों यहाँ पर उद्धृत करते हैं—'काशी में अपने स्वर्गवास के कुछ दिन पहले मालवीय जी महाराज प्रयाग आये हुए थे और अपने जार्ज टाउन वाले बंगले में ठहरे थे। मुझे याद नहीं कि उन्होंने मुझे बुलाया था या मैं स्वयं उनके दर्शनों के लिए गया था। उनकी आवाज़ बहुत मन्द पड़ चुकी थी। वह बहुत धीरे बोलते थे। अतः सुनने में भी कठिनाई होती थी। उन्होंने कुछ कहा, पर मेरी समझ में नहीं आया। मैं स्वयं कानों को उनके मुंह के पास ले गया। उन्होंने कहा कि 'हो सकता है कि मेरे बाद यह समस्या फिर कभी खड़ी हो और उस ६ फुट के छेद को भी बन्द करने का प्रयत्न किया जाए। यदि ऐसा कभी हो तो तुमसे मैं कहे जाता हूँ कि तुम उसका विरोध करना और जैसे भी हो ऐसा होने मत देना'।

इस पर टिप्पणी करते हुए श्री शिवनाथ काटजू कहते हैं कि 'अपने जीवन के अंतिम क्षणों में भी मालवीय जी को (यदि) कोई चिन्ता थी तो अपने धर्म और अपनी सभ्यता की रक्षा की! ऐसी थी उनकी महानता! मैं आज भी इस बात को सोच कर चकित रह जाता हूँ।

ग्यारहवाँ अध्याय

मालवीय जी और काशी विश्वविद्यालय

'बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी' इस विश्वविद्यालय का नाम रखा जाए या इसका नाम हो 'काशी विश्वविद्यालय'—इस संबंध में बहुतों का मतभेद है। हाल ही में केन्द्र के शिक्षामंत्री, डा० के० एल० श्रीमाली, ने कहा था—"बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी और अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी में से 'हिन्दू' और 'मुस्लिम' दोनों शब्दों को क्रमशः हटा देना ही उचित होगा। इस पर हिन्दुओं ने घोर विरोध किया और कहा—"बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी' के नाम के साथ 'हिन्दू' शब्द का रहना परमावश्यक है। उन्हें नहीं मालूम कि मालवीय जी ने इसका नाम 'काशी विश्वविद्यालय' रखा था, न कि बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी। हिन्दू लकीर के फ़कीर हैं। इसलिए उन्होंने डा० श्रीमाली की घोषणा का स्वागत नहीं किया परन्तु हमसे अनेक व्यक्तियों ने इस घोषणा की सराहना की।

अंग्रेज़ों की नीति थी कि हिन्दू और मुसलमानों में भेद हो और वह कायम रहे। इसी में उनके साम्राज्य की भलाई थी। अगर दोनों एक हो जाते तो अंग्रेज़ी साम्राज्य को खतरा था। इसलिए अलीगढ़ में 'मुस्लिम' यूनीवर्सिटी और काशी में 'हिन्दू' यूनीवर्सिटी की स्थापना को मंजूरी उन्होंने तब दी जब दोनों विश्वविद्यालयों के साथ 'मुस्लिम' और 'हिंदू' विश्वविद्यालय शब्द जोड़ दिए गए।

महात्मा जी ने स्वयमेव इसे काशी विश्वविद्यालय के नाम ही से घोषित किया। महात्मा जी ने सन् १९३१ में जो लेख लिखा था, उसमें उन्होंने कहा था—"काशी विश्व-विद्यालय के मालवीय जी प्राण हैं, काशी विश्वविद्यालय मालवीय जी का प्राण है, वह नर-वीर हमारे लिये दीर्घायु हो।" लेकिन उनके मरने पर गाँधी जी ने 'नवजीवन' में लिखा था—"मालवीय जी के काम बहुत हैं। बहुत बड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा है हिन्दू विश्व-विद्यालय।" लेकिन महात्मा जी ने इसके पूर्व लिखा था—"गलती से हम उसे 'बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी' के नाम से पहचानते हैं। उस नाम के लिये दोष मालवीय जी महाराज का नहीं, उनके पैरोकारों का रहा है। मालवीय जी दासानुदास थे।"

'काशी विश्वविद्यालय' नाम ही मालवीय जी को अधिक पसंद था। उसकी स्थापना के विषय में मालवीय जी ने एक कविता इस प्रकार बनायी थी—

जयतु विश्वविद्यालय काशी।
मातु गंग पय जाहि पियावत, मूलधर्म सुखराशी।
पालत विश्वनाथ विद्यागुरु, शंकर अज अविनाशी।
ज्ञान-विज्ञान-प्रकाशी॥

गंग-जमुन-संगम बिच देवी गुप्त रही चपला-सी।
ईश-कृपाते सोइ सरस्वति, वाराणसी प्रकाशी।
तिमिर-अज्ञान-विनाशी॥

ऋषि-मुनि संग नृप-मंडल सोहत, उत्सव मरम हुलासी।
देत असीस फलहु अरु फूलहु सब विध भारतवासी॥
लहहु विद्याधन राशी॥

इसमें मालवीय जी ने 'काशी विश्वविद्यालय' कहा है, न कि 'हिन्दू विश्वविद्यालय'। इसके और भी प्रमाण हैं। विश्वविद्यालय की जब स्थापना हुई, तब मालवीय जी ने एक शिला पर यह खुदाया—

ॐ

काशी विश्वविद्यालय।

माघे शुक्ले प्रतिपदि तिथौ शुक्रवारे शिलाया
न्यासं काश्यां ह्यगनवमहीसम्मिते विक्रमाब्दे।
प्राचं धर्मं परिफलयुतं विश्वविद्यालयस्या-
कार्षीत् सम्राट् प्रतिनिधिवरो लौर्ड हार्डिङ्गसुकीर्तिः।

इस प्रस्तर के नीचे एक 'गोखे' के भीतर ताँबे का एक डिब्बा है। उस डिब्बे के भीतर एक ताम्रपत्र रखा है। उस ताम्रपत्र पर जो लेख है, वह ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है—

धर्मं सनातनं वीक्ष्य कालवेगेन पीडितम्।
भूतले दुर्व्यवस्थं च व्याकुलं मानवं कुलम्॥
कलेः पञ्चसहस्राब्दे गते भारतभूमिपु।
आरोपयितुमुद्धारबीजस्य पुनर्नवम्॥
काशीक्षेत्रे पवित्रेऽत्र गंगातीरे महोदया।
शुभेच्छा पुण्यसम्पन्ना सञ्जाता जगदात्मनः॥
संगमप्याथ पाश्चात्याः प्राच्याश्चापि प्रजा निजाः।
तच्छ्रेष्ठानां विधायैकमत्यं सुमतिलक्षणम्॥
विश्वनाथपुरे विश्वजनीनो विश्वभावनः।
विश्वात्माऽऽकारयद्विश्वविद्यापीठव्यवस्थितम्॥
निमित्तमात्रमत्राभूत् समीहायाः परेशितुः।
मालवीयो देशभक्तो विप्रो मदनमोहनः॥
निधाय वाङ्मयं तेजस्तस्मिन्नुद्बोध्य भारतम्।
प्रहवीकृत्वापि तच्छास्तानस्मिन्नर्थे व्यधात्प्रभुः॥
अन्ये चापि निमित्तानि प्राभवन्नन्तरात्मनः।
बीकानेरनृपो वीरो गंगासिंहो महामनाः॥
श्रीरामेश्वरसिंहश्च दरभंगा-महीपतिः।
प्रधानः कार्य्यकारिण्याः सभाया मानवर्धनः॥
सुधीः सुन्दरलालश्च मन्त्री कोषाभिरक्षकः।
गुरुदासादित्यरामौ वासन्ती वाग्मिनी तथा॥

तथा रासविहारी च वृद्धा ये देशवत्सलाः।
दासाश्चान्ये भगवतो यथाशक्यं सिषेविरे॥
विक्टोरियामहाराज्ञः पौत्र एडवर्डदेहजे।
सम्राजि पञ्चमे ज्याय्यें भारतं परिशासति॥
मेवारकाशिकाश्मीरमयसूराल्वराधिपान्।
कोटाजयपुरेन्दौरजोधपूरादिभूमिपान्॥
तथा कर्पूर्थलानाभान्वालेरादिनरेश्वरान्।
ईरयित्वा सहायार्थं सज्जनानपरांस्तथा॥
गर्भस्य सर्वधर्माणां रक्षायै प्रचयाय च।
प्रचाराय स्वलीलानां स एवैकः परः प्रभुः॥
लार्डहार्डिङ्गसुविख्यातं सम्राट्प्रतिनिधिं वरम्।
धीरं वीरं प्रजाबन्धुं जनानां हृदयंगमम्॥
विश्वविद्यालयस्यास्य शिलान्यासे न्ययोजयत्।
सङ्ग्रामे नेत्रभूभृद् ग्रहधरणिमिते वैक्रमाऽब्दे च मासे।
माघे पक्षे च शुक्ले प्रतिपदि च तिथौ वह्नि शुक्रे क्षणेऽच्छे।
श्री काश्यां श्रालसम्राट् प्रतिनिधिकरतो यच्छिलान्यास आसीद्।
यावच्चन्द्रार्कतारं विलसतु स महाविश्वविद्यालयोऽयम्॥
सरस्वती श्रुति महतीं महीयताम्।
ततः स्रुता ज्ञानसुधा निपीयताम्॥
सदा मातः शुभचारत विधीयताम्।
रातः परा परमगुरो प्रचीयताम्॥

(सनातन धर्म को काल के वेग से पीड़ित तथा संपूर्ण भूमंडल के प्राणियों को दुःखी अवस्था में और आकुल देख कर कलियुग के पांच हजार वर्ष व्यतीत होने पर, भारत भूमि पर, काशी क्षेत्र में गंगा के पावन तट पर इस सनातन-धर्म के बीज का पुनः नवीन रूप से आरोपण करने के लिये जगदीश्वर की शुभ, पुण्य इच्छा उत्पन्न हुई। अपनी प्राच्य और पाश्चात्य प्रजा को एक में सूत्र-बद्ध करके और विशिष्ट विद्वानों का एक-मत कर, विश्व-भावन, विश्वस्वरूप, विश्वस्रष्टा ने विश्वनाथ की नगरी में विश्वविद्यालय के संस्थापन की व्यवस्था की। देशभक्त, विप्र मदनमोहन मालवीय परमेश्वर की इस इच्छा के पूर्ण करने के लिये निमित्त-मात्र बने। भारत को जगा कर और उसमें वाङ्मय तेज का विधान कर भारत के शासकों को अनुरक्त कर इस कार्य को सफल करने में उन्हें प्रवृत्त किया। भगवान की इस इच्छा की पूर्ति में और भी कई महापुरुष निमित्त बने। महामना बीकानेर-नरेश—वीर महाजन श्री गंगासिंह बहादुर, कार्यकारिणी सभा के सम्मानवर्धक सभापति दरभंगा नरेश श्री रामेश्वरसिंह जी, मंत्री और कोषाध्यक्ष, डाक्टर श्री सुन्दरलाल जी, सर गुरुदास बैनर्जी, श्री आदित्यराम भट्टाचार्य जी, विदुषी श्रीमती एनी बेसेंट, डाक्टर रासबिहारी घोष तथा अन्य विद्या-वयोवृद्ध, देश-प्रेमी भगवत-दासों ने यथाशक्ति इसकी सेवा की। महारानी विक्टोरिया के पौत्र, महाराज एडवर्ड के पुत्र, सम्राट् पंचम जार्ज के शासनकाल

में मेवाड़, काशी, काश्मीर, मैसूर, अलवर, कोटा, जयपुर, इंदौर, जोधपुर, कपूरथला, नाभा, ग्वालियर आदि राज्यों के नृपतियों की तथा अन्य धनीमानी सज्जनों को इसकी सहायता के लिये प्रेरणा कर सब धर्मों के जन्मदाता सनातन धर्म की रक्षा और उन्नति के लिये तथा अपनी लीला के विस्तार के निमित्त उन्हीं परात्पर प्रभु ने सम्राट् के प्रतिनिधि (वायसराय) धीर-वीर प्रजाबंधु श्री लार्ड हार्डिज के द्वारा इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास कराया।

श्री विक्रम संवत् १९७३ (सन् १९१६) में माघ शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार के दिन शुभ मुहूर्त में श्री काशी नगरी में सम्राट् के प्रतिनिधि के द्वारा जिस विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया गया, वह सूर्य और चन्द्र के रहने तक सुशोभित रहे।

वेद में महती सरस्वती की अभिवृद्धि हो।

तब उससे झरते हुए ज्ञान के अमृत को लोग पियें।

शुद्ध चरित्र में बुद्धि सदा लगी रहें।

पमयगुरु (शिव, विष्णु, आदि) में अटूट अनुराग की वृद्धि हो॥)

(अनुवादक : श्री ब्रजमोहन व्यास)

इस ताम्रपत्र के साथ यह लेख मालवीय जी का है या किसी दूसरे का, इसके विषय में शंका की गयी है। मुझे तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि मालवीय जी ने स्वतः इस ताम्रपत्र को लिखा था।

इस संबंध में पंडित अंबिकाप्रसाद जी लिखते हैं—"संस्कृत भाषा के ऊपर भी मालवीय जी का पूर्ण अधिकार था। उनके संस्कृत में व्याख्यान और श्लोकबद्ध लेक मैंने देखे हैं। (उनके) संस्कृत में व्याख्यान मैंने सुने हैं।···एक समय संस्कृत साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। संस्कृत साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष मालवीय जी थे। कार्य अधिक था। मालवीय जी अस्वस्थ भी थे, इसलिए अपना भाषण (वह) तैयार नहीं कर सके।···बोले, 'हम बोल लेंगे।' समय पर बोलने के लिये खड़े हो गए। हमसे धीरे से (वह) बोले, 'अशुद्धियों को गिन कर कहना।'···अपना भाषण ४५ मिनट तक (वह) अपने मन से बोलते गए। मैं ध्यान लगाए था, परन्तु कहीं भी कोई अशुद्धि न हुई। व्याख्यान समाप्त कर, जब वह बैठे, तब मुझसे उन्होंने पूछा, 'व्याख्यान में कितनी अशुद्धियाँ थीं?' मैंने कहा कि हनुमान जी के व्याख्यान के बाद वाल्मीकि ने जो टिप्पणी लिखी है—'बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्'—वही मेरे स्मृति-पथ में आ गयी है। मालवीय जी महाराज हँसने लगे।"

इससे यह निश्चय है कि मालवीय जी ने विश्वविद्यालय की संस्थापना का जो संक्षिप्त इतिहास दिया है, उसमें संस्थापक ने अपनी ईश्वर-भक्ति, धर्म-निष्ठा और पवित्र-हृदय की एक सुन्दर झाँकी भी दी है।

सन् १९०४ में स्वर्गीय काशी-नरेश की अध्यक्षता में एक सभा काशी में हुई थी। उस सभा में पहली बार मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की आवश्यकता के संबंध में ब्योरेवार प्रस्ताव उपस्थित किया था प्रस्ताव का जनता ने स्वागत किया और सहानुभूति

प्रकट की। अक्टूबर, सन् १९०५ में प्रस्तावित काशी विश्वविद्यालय का एक विवरण-पत्र छपवा कर मालवीय जी ने देश के प्रधान हिन्दू नेताओं, विद्वानों और राजाओं-महाराजाओं के पास भेजा। सन् १९०५ की ३१ दिसम्बर को, कांग्रेस के समय, काशी के टाउन हाल में एक बड़ी सभा हुई, जिसमें उपस्थित सज्जनों में कांग्रेस के सभापति, श्री गोपालकृष्ण गोखले, और श्री बालगंगाधर तिलक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें सब प्रांतों के हिन्दुओं के प्रतिनिधि और सब धर्मों के अनुयायी एकत्र हुए। सब ने मालवीय जी की योजना के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की। सन् १९०६ में सनातन धर्म सभा ने भी अपने प्रयाग अधिवेशन में इस योजना का समर्थन किया, पर उस समय प्रस्ताव ही रह गया। कार्य-रूप में परिणत न किया जा सका। केवल मौखिक सहानुभूति से काम नहीं चल सकता। सन् १९०७ ई० में श्रीमती एनी बेसेंट ने हिन्दू कालेज को बढ़ा कर यूनिवर्सिटी आफ इंडिया स्थापित करने का प्रस्ताव किया। उन्होंने इसके लिए एक आवेदन पत्र कई प्रभावशाली भारतीयों के हस्ताक्षर के साथ भारत सरकार के पास रायल चार्टर के लिए भेजा। उधर काशी की सनातन धर्म सभा भी स्वर्गीय महाराजा दरभंगा के नेतृत्व में एक विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव करने लगी।

इस प्रकार के अलग-अलग प्रयत्नों से लाभ न देख कर अप्रैल, सन् १९११ ई०, को श्रीमती एनी बेसेंट और मालवीय जी प्रयाग में मिले। उसमें यह निश्चय हुआ कि सेंट्रल हिन्दू कालेज हिन्दू विश्वविद्यालय में मिला लिया जाए और श्रीमती एनी बेसेंट अपना प्रार्थना पत्र सरकार के पास से वापस मँगा लें और दोनों मिल कर काशी विश्वविद्यालय के लिये काम करें।

इसके बाद श्री शिवप्रसाद गुप्त, जो बनारस के एक बहुत बड़े रईस थे और मालवीय जी को पिता-तुल्य मानते थे—ने अपने एक लेख में लिखा है—'विश्वविद्यालय का आंदोलन ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के सदृश समुद्र की ओर वेग से बह रहा था। उसके आगे के पथ का रोकना असंभव हो चुका था। जब शिमला-शिखर से बाबू (मालवीय जी) के लिये बुलावा आया, बाबू के साथ मैं भी शिमला पहुँचा। परलोकवासी राजा हरनामसिंह की कोठी में हम लोग ठहराए गए। बाबू उस समय के वाइसराय से मिलने गए और वहाँ से बड़े प्रसन्न आये और मुझे बुला कर कहा कि वाइसराय ने विश्वविद्यालय को अपनाने का वचन दे दिया है। मेरे काटो तो बदन में खून नहीं। मैं तो सन्न रह गया और मेरे मुख से हठात् निकल पड़ा—This is the death knell of the Hindu university अर्थात् यह तो हिन्दू-विश्वविद्यालय की मृत्यु-घोषणा है। अस्तु, हम लोग ऊपर से उतर कर फिर लाहौर वापस आए। लाहौर की वृहत् सभा में स्वनामधन्य परलोकवासी लाला लाजतराय ने कहा—Charter or no Charter, Hindu university must exist.' जिसके उत्तर में बाबू ने कहा—Charter and charter Hindu university must exist.' इन वाक्यों से दोनों महान् व्यक्तियों की मनोवृत्ति का भली-भाँति पता चल सकता है। अब तो चारों ओर से लोगों की सहानुभूति उमड़ने लगी।···लाहौर से डेप्युटेशन आगे बढ़ा। मेरठ में बड़े समारोह से सभा हुई। १२ घंटे तक का लंबा जुलूस निकला। परलोकवासी महाराजा दरभंगा ने आकर शिरकत की और सभापति

बनना स्वीकार किया और पांच लाख का दान भी काशी विश्वविद्यालय को दिया। इसके पहले पंडित सुन्दरलाल जी (जो बाद को सर सुन्दरलाल हो गए) ने श्री हारकोर्ट बटलर के कहने से इसका मंत्री होना स्वीकार कर लिया। 'अब बहाव का रुख दूसरी ओर चला; विश्वविद्यालय के लिए धन की वृष्टि होने लगी।

१ अक्तूबर सन् १९१५ को बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी का विधेयक पारित हुआ। इस पर केन्द्र की कौंसिल में जो बहस हुई, उसका संक्षेप से वर्णन अगले अध्याय में दिया गया है।

काशी विश्वविद्यालय के संबंध में जब मालवीय जी चंदा करने के लिये घर से बाहर निकले, तब दो घटनाओं का यहाँ पर उल्लेख करना अनुचित न होगा—एक उत्तर प्रदेश के रईस जमींदार की बात है और दूसरी अमृतसर की घटना। पहली बात तो यह है कि मालवीय जी डेढ़ घंटे तक उस जमींदार को समझाते रहे, लेकिन वह पीठ फेर कर मालवीय जी के सामने जो बैठा, वैसा ही बैठ रह गया। मालवीय जी के मधुर भाषण का उसके ऊपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

दूसरी घटना अमृतसर की है। इसे मैंने श्री गोकर्णनाथ मिश्र से सुना था। उनके शब्द तो मुझे याद नहीं, लेकिन बैसवाड़ी भाषा में उन्होंने जो कुछ कहा, उसका सार मैं नीचे देता हूँ। मालवीय जी को दो दिन में अमृतसर से ५,०००) रु० का चंदा मिला। इस पर तीसरे दिन मालवीय जी ने प्रातःकाल कहा कि जब सक २५,०००) रु० न हो जाएँ, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। इसके बाद वह जहाँ ठहराये गए थे, वहाँ से निकले। मिश्र जी भी उनके साथ थे। दोपहर का समय हो गया और कहीं से कुछ प्रबंध नहीं हुआ तो मालवीय जी से अमृतसर के कुछ लोगों ने कहा, 'एक कूजे वाला है। उसके पास चलिए।' मालवीय जी चल दिए। उसकी दूकान पर जब पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि मैले कपड़े पहने हुए वह आदमी छोटी-सी दूकान पर बैठा है। उसने मालवीय जी को आते देख कर अपने नौकर को आज्ञा दी कि पंडित जी के लिए जल का प्रबंध करें। मिश्र जी ने कहा, 'मालवीय जी २५,०००) रु० के बिना अन्न-जल आदि ग्रहण न करेंगे। यह उनकी भीष्म प्रतिज्ञा है। हम लोग, जो उनके साथ हैं, भी जल ग्रहण नहीं कर सकते जब तक मालवीय जी जल-ग्रहण नहीं करेंगे। उन्होंने भीष्म प्रतिज्ञा तो कर दी, लेकिन हमारे प्राणों की बाजी लग गयी है। प्राण निकलने को हैं।' इस पर उसने कहा, 'देश का इतना बड़ा नेता महज २५,०००) रु० के कारण जल न ग्रहण करे।' उसने तुरंत उठ कर अपनी तिजोरी से २५,०००) रु० के नोट निकाले और मालवीय जी सामने रख दिए और उसने कहा कि अब तो आप मेरा जल ग्रहण कीजियेगा, आप की प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। मालवीय जी ने कहा कि 'धन्य हो तुम! ऐसा उदार दानी मैंने अपने जीवन में नहीं देखा था।' दूकान वाले ने तुरंत नौकर को आज्ञा दी कि महाराज के लिये चांदी के गिलास में जल भर कर लाओ। मैं इन्हें और इनके साथियों का अलग से मिश्री के कूजे देता हूँ। फिर क्या था! मिश्र जी की बाँछें खिल गयीं और वह बहुत प्रसन्न हुए कि मालवीय जी की प्रतिज्ञा भी पूरी हुई और हमें जल भी मिल गया।

काशी विश्वविद्यालय के लिए जिस समय मालवीय जी चंदा जमा करने को निकले, तो वह प्रयाग के स्वर्गीय श्री सांवलदास कक्कड़ के पास चंदा माँगने के लिये गए। सांवल-

दास जी प्रयाग के एक बड़े रईस थे और वह अंग्रेजों के भक्त थे। शहर ही में मालवीय जी के पैतृक मकान के निकट उनका मकान था। बचपन में मालवीय जी उनसे पढ़ने जाया करते थे और उन्हें उस्ताद कहते थे। श्री सांवलदास जी एक स्थान पर लिखते हैं—

'एक दिन जब मैं दफ्तर के काम से जा रहा था वे (मालवीय जी) मेरे पास (चंदा के लिए) आए। मैं उनकी मनमोहिनी वाणी से इतना बेबश हो गया कि मैंने बिना तनिक सोचे-समझे उन्हें तुरंत चेक दे दिया। बाद में अकसर सोचता था कि मुझे उस पर विचार करने के लिए कुछ समय लेना चाहिए था और इतनी जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए थी। परंतु पंडित जी के मागने में कुछ ऐसी जादू की शक्ति थी जो रोकी नहीं जा सकती थी।' सांवलदास जी लिखते हैं—'फिसानये-आजाद' का यह शेर उन पर पूरी तरह लागू होता है—

असर लुभाने का प्यारे! तेरे बयान में है।
किसी की आंख में जादू, तेरी ज़बान में है॥

श्री सांवलदास जी मालवीय जी को 'हिन्दुस्तान का सबसे सफल भिक्षुक' कहते थे।

एक दूसरी घटना का 'सरस्वती' में श्री ब्रजमोहन व्यास ने जिक्र किया है। अपने लेख में उन्होंने लिखा है—'शुरू-शुरू में मालवीय जी इंडियन प्रेस के भूतपूर्व प्रोप्राइटर, स्वर्गीय चिंतामणि घोष, के पास झोली ले कर पहुँचे। घोष महोदय उदार-प्रकृति तो थे ही, उन्होंने विश्वविद्यालय सम्बन्धी, प्रास्पेक्टस, बुलेटिन इत्यादि छापने का भार निःशुल्क अपने उपर ले लिया, कुछ धन भी दिया और साथ में 'बंगर-जेनेरल' की उपाधि भी।'

उसी लेख में श्री व्यास जी ने सेन्ट जांस कालेज के कैमिस्ट्री के प्राध्यापक, श्री के० सी० पांड्या, का जिक्र किया है। पांड्या महोदय ने मालवीय जी को 'भिक्षुकराज' की उपाधि दी है। उनके एक लेख का यही शीर्षक है। उसमें वह लिखते हैं—'परंतु बहुतों ने इसका एहसास नहीं किया है कि पिछले बीस वर्षों के भीतर हम लोगों ने संसार को दो सर्वोत्कृष्ट भिक्षुक दिए हैं, जिनके सामने और सब बहुत छोटे जँचते हैं जिस प्रकार हिमालय के सामने और सब पहाड़ बौने से लगते हैं। निःसन्देह उनमें से एक महात्मा जी हैं...हमारे ध्यान में केवल एक ही व्यक्ति और है जो उनके बगल में रखा जा सकता है। और वह हैं हमारे पंडित मालवीय जी। प्रत्येक कला के आचार्य की भाँति उनका अपना एक ढंग था, अपनी एक निराली पद्धति। वह छोटे आदमियों को परेशान नहीं करते थे पर इसका वे हमेशा ध्यान रखते थे कि राजे, महाराजे, व्यापारिक, जगत-सेठ और करोड़पति उनके जाल में फँसे।

'जाहिर सी बात कि उनका ढंग और कार्यप्रणाली, 'अर्धनग्न फकीर' से भिन्न होगी। उत्तर प्रदेश के भिक्षुक के लिए यह स्वाभाविक था कि वह भिक्षा माँगने में अधिक शिष्ट और अधिक परिमार्जित ही नहीं, अधिक शानदार भी हो। उनका यह ढंग, उनके नितान्त निर्मल श्वेत वस्त्र, भव्य शरीर और मीठी मनोहारिणी वाणी से, बड़ी खूबी से संतुलित था।

(अनुवादक : श्री ब्रजमोहन व्यास)

———

बारहवाँ अध्याय

समाज-सुधारक मालवीय जी

हमने कहा है कि मालवीय जी क्रान्ति के पुजारी नहीं थे, बल्कि वह विकास के उपासक थे। यही बात गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक, श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार ने अपने 'योजना' के लेख में दोहरायी है। उनका कहना है—'मालवीय जी उग्र और क्रान्तिकारी समाज-सुधारक नहीं थे, और न इस किस्म का समाज-सुधारक होना उनको पसन्द था। सुविज्ञ समाज की सहमति ही से वह कोई काम करते थे, कोई क़दम उठाते थे। समाज जहाँ तक चलने को तैयार होता था, वह उतना ही बड़ा कदम उठाते थे। इस विषय में मालवीय जी का सिद्धान्त और उनकी नीति जानना आवश्यक है। सन् १९१४ में मालवीय जी ने अपने पुत्रों से भी प्रिय भतीजे, श्री कृष्णकान्त मालवीय, को एक पत्र भेजा। (यह पत्र एक अध्याय में छप चुका है।) 'अभ्युदय' में 'विधवा-विवाह' के समर्थन में सम्भवतः एक लेख ('अभ्युदय' में) छपा था। इसी लेख को लक्ष्य में रखकर महामना ने विक्षोभपूर्ण पत्र लिखा। यह पत्र ऐतिहासिक है, क्योंकि उनका और कोई ऐसा रोषभरा पत्र नहीं मिला। इससे मालवीय जी के व्यक्तित्व, उनकी चिन्तन-शैली और कार्य-प्रणाली पर प्रकाश पड़ता है।···क्या हम यह दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि अस्पृश्यता-निवारण में हम आगे बढ़ गये हैं उनसे ?···दहेज-प्रतिबन्ध-क़ानून बनाया गया है। किन्तु क़ानून तो बाल-विवाह के निषेध के विषय में भी बना था। फिर भी आज बाल-विवाह हो ही रहे हैं, यद्यपि उनमें पर्याप्त कमी (कमी ? गुजरात को देखिए) हो गयी है। इसलिए दहेज की प्रथा के विरुद्ध मालवीय जी ने जो कुछ किया, वह भूलने की बात नहीं है।···मालवीय जी के पुनीत नाम का स्मरण करते हुए आज भी हम समाज-सुधार की दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा ले सकते हैं और राष्ट्र-निर्माण के महान् कार्य और जन-जीवन के निर्माण में योगदान कर सकते हैं। यदि हम इन दोनों क्षेत्रों में कुछ करेंगे, तो महामना मालवीय जी को हम वस्तुतः सच्चे अर्थों में श्रद्धांजलि देने के योग्य पात्र होंगे।

श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार की यह सम्मति मेरे कहने का समर्थन करती है। इसीलिए उसे हमने साभार उद्धृत किया है। मालवीय जी ने दहेज-प्रणाली के विषय में जो व्यवस्था दी थी, वह आज भी अनावश्यक नहीं हुई। काशी के पंडितों की धर्म-परिषद् के सभापति मालवीय जी थे। इसकी ओर से मालवीय जी ने एक व्यवस्था दी थी कि तिलक और विवाह के समय किसी प्रकार का क़रार नहीं करना चाहिए, और बराती भी बड़ी संख्या में नहीं ले जाने चाहिए। इस लम्बी व्यवस्था के कुछ अंश आज भी महत्त्वपूर्ण हैं। मालवीय जी ने लिखा था—

'जो वर का पिता तिलक के समय या विवाह के समय कोई रक़म लेने का क़रार करता है, उसका शास्त्र में कहीं विधान नहीं है। प्रत्युत इसके विपरीत उसकी घोर निन्दा है। किन्तु क़रार की कुरीति कई जातियों में और कई प्रान्तों में फैल गयी है। यह नितान्त धर्म के विरुद्ध है और अनेक अनर्थों का मूल है।

कई बिरादरियों की सभाओं ने इसकी घोर निन्दा की है। किन्तु यह प्रथा अभी बन्द नहीं हुई और बहुत से गृहस्थ इसके दुस्सह परिणाम से पीड़ित हो रहे हैं। इसका बन्द करना सब प्रकार से आवश्यक है। शास्त्र में अपत्य-विक्रय की घोर निन्दा है और 'अपत्य' के शब्द के अर्थ में कन्या और पुत्र दोनों आ जाते हैं। इसलिए प्रत्येक हिन्दू धर्मानुयायी आर्य-सन्तान को उचित है कि वह लड़के का ब्याह करने में कोई रक़म लेने का क़रार न करें। हमारे सनातन धर्म की रक्षा के लिये और संपूर्ण हिन्दू जाति के हित के लिये यह आवश्यक है कि क़रार की प्रथा सर्वदा बंद कर दी जाए।

"शास्त्र को पूर्ण रीति से विचार कर, काशी के विद्वानों की धर्म-परिषद् यह घोषणा करती है कि क़रार करके कन्या के पक्ष वालों से तिलक या विवाह के समय कोई रक़म लेना धर्म-और-समाज-हित के विरुद्ध है, और लोक-परलोक दोनों को बिगाड़ता है।

"जो लोग इस व्यवस्था को जान कर भी रुपये या जायदाद देने का क़रार कर विवाह करेंगे, वे पाप और अपयश के भागी होंगे।

"धर्मशास्त्र और लोक-व्यवहार का विचार कर काशी की धर्म-परिषद् यह घोषणा करती है कि विवाह में जहाँ तक हो सके कम-से-कम बरातियों को ले जाना चाहिए और जो लोग अधिक बरात ले जाते हैं, उनको समाज की तरफ़ से यह निवेदन किया जाना चाहिए कि वे बिरादरी के हित के विचार से बरात में कम-से-कम पुरुषों को ले जाएँ और सब प्रकार से आवश्यक खर्च बचाने का प्रयत्न करें। इसी में हिंदू जाति का मंगल होगा।"

श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार ने अपने लेख में एक बात और कही है। उसका संबंध अस्पृश्यता से है। उन्होंने यह प्रश्न किया है कि क्या हम इस दिशा में मालवीय जी से आगे बढ़ गए हैं, या बढ़ सके हैं? इसके विषय में विभिन्न मत हैं। एक मत के प्रतिनिधि जहाँ श्री ब्रजमोहन व्यास हैं, वहाँ दूसरे पक्ष के प्रतिनिधि श्री रामनाथ सुमन हैं। व्यास जी को, जो भी मालवीय जी करते थे, ठीक जँचता था। उनके विरुद्ध, श्री रामनाथ सुमन ने जो बात कही है, वह भी विचारणीय है। उन्होंने अपनी पुस्तक में मालवीय जी के इस विषय से संबंधित विचारों की आलोचना की है।

वह लिखते हैं—"क्या यह आश्चर्य-सा प्रतीत नहीं होता कि मालवीय जी जैसा नवनीतोपम, कोमल हृदय रखने वाला मनुष्य, जिसके प्राणों का अणु-अणु दया के अमृत से सींचा हुआ था, जो किसी को ज़रा भी दुःख में देख कर रो पड़ता था, अछूतों के कष्टों का वर्णन करते-करते जिसकी आँखों में आँसू आ जाते थे और जेब से रूमाल निकालने की आवश्यकता पड़ती थी, वही (मालवीय जी) शास्त्रों के आधार पर लोगों को समझाता फिरता था कि इतनी दूर तक मंदिर में अस्पृश्य को जाना चाहिए और इससे आगे नहीं।"

इस सम्मति से मैं सहमत नहीं हूँ, लेकिन विवाद उठाने से कोई लाभ नहीं है। हमें देखना यह है कि मालवीय जी ने अस्पृश्यता को दूर करने के लिये क्या क़दम उठाये।

सन् १९१८ के कुंभ मेले में 'विश्व ज्योति' में एक लेखक ने लिखा था—"मालवीय जी का हृदय भंगियों की सेवा से द्रवित हो गया। उनके हृदय में यह भाव काम कर

रहा था कि जिन भंगियों ने कुंभ-मेले में आये हुए यात्रियों की सेवा की है, उनका सत्कार करना हमारा धर्म है। जो मानवता का आदर करना जानता है और उसकी सेवा करता है, वही इस संसार में सत्कार और सम्मान का भागी हो सकता है। उनकी यह धारणा शुरू ही से रही, और इसी के वश वह दूसरों की सेवा का सत्कार करते थे।

" सन् १९१८ में प्रयाग का कुंभ हुआ। उसकी बड़ी तैयारियाँ की गयीं। जगह-जगह से पुलिस बुलायी गयी ताकि वह मेले का ठीक ढंग से प्रबन्ध कर सके : अस्पताल और डिस्पेंसरियाँ खोली गयीं ताकि रोगियों को तुरन्त चिकित्सा पहुँचायी जा सके। धर्म-प्राण कई लाख हिन्दू यात्री इस पर्व पर संगम में स्नान करने को आये। बहुतों ने वहाँ पर कुटियों में महीना भर रहने का प्रबन्ध कर लिया। जिनकी इच्छा या सामर्थ्य नहीं थी कि वे कुटिया बनाकर वहाँ रुक सकें, वे कुंभ के मुख्य-मुख्य दिनों पर संगम पर स्नान करने के लिये आते थे। इन सबकी सफ़ाई के लिये दो हज़ार के लगभग भंगी जगह-जगह से बुलाए गए थे। जिस मुस्तैदी और तत्परता से उन्होंने आगन्तुकों की सेवा की, उसकी उस समय सबने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

कुंभ-मेले की समाप्ति पर वसंत पंचमी के दिन मेले के लाखों यात्री और कुटिया में बसने वाले अपने-अपने घर चले गए। उनमें से किसी को यह न सूझा कि इन भंगियों का सत्कार किया जाए। देश के किसी बड़े से बड़े नेता को भी इस बात का ध्यान न हुआ कि जिस तत्परता के साथ दो हज़ार के लगभग भंगियों ने यात्रियों की सेवा की है, उसके लिये उनका सम्मान किया जाय या उनका आदर करना ठीक होगा। सूझी अकेले महामना मालवीय जी को !

'उन्होंने बड़े उत्साह के साथ उनका सत्कार किया।'

'वसन्त पंचमी के आने से पहले ही महामना मालवीय जी ने प्रयाग की सेवा-समिति के मंत्रियों को यह आदेश दिया था कि प्रत्येक भंगी को एक धोती, एक सफ़ेद कुर्ता और एक साफ़ा दिया जाए। वसंत पंचमी के दिन उनकी आज्ञा का पालन प्रयाग की सेवा-समिति ने किया, क्योंकि प्रयाग की सेवा-समिति के सभापति, महामना मालवीय जी, ने उन्हें यह आज्ञा दी थी।

'सब भंगियों को मालवीय जी के यहाँ—वह एक कुटिया में रहते थे—भोजन के लिये आमंत्रित किया गया। भंगियों की पंगत लग गयी और मालवीय जी के परिवार की देवियों ने बड़ी लगन और उत्साह से अपने कर कमलों से उन्हें वे पदार्थ परोसे, जिनको उन्होंने खुद तैयार किया था। मालवीय जी भी इन भंगियों को भोजन कराने में तल्लीन थे। घूम-घूम कर जिस भंगी की पत्तल खाली वह देखते, उसे और लेने के लिए वह बाध्य करते थे।'

'भोजनोपरान्त, मालवीय जी ने उन आमंत्रित भंगियों को धर्म-कथा सुनायी। उस धर्म-कथा की कैसे चर्चा की जाए ! मैं श्रोता की तरह भंगियों में बैठा था। लगभग दो घंटे तक यह धर्म-चर्चा होती रही। उनकी सारी वक्तृता में उन्हीं शब्दों की—देशज और तद्भव शब्दों की—छटा थी, जिन्हें आज के हिन्दी लेखक अपनी रचनाओं में प्रयोग करने

में शर्माते हैं। उनकी भाषा जितनी सरल थी उतना ही उसमें वाग्मिता का पुट था। यह चमत्कार सिर्फ़ मालवीय जी ही की वाणी में संभव हो सकता था। कितनी मीठी उनकी वाणी थी ! भाषा कितनी सरल, पर रसमय थी ! जिन्होंने उनके इस भाषण को नहीं सुना, वे वास्तव में जीवन के एक अद्भुत चमत्कार को देखने से वंचित रह गए।'

'धर्म क्या है ? मानवता की सच्ची सेवा करना, किसी से क्रोध में बुरी बात न कहना—यही तो धर्म है। गुस्सा ही सब पापों की जड़ है। इसको जीतना हमारा परम धर्म है। जो इसे जीत ले और दूसरों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करे, वही पुरुष पुण्यात्मा या धर्मात्मा कहा जा सकता है। दूसरों की प्रेम पूर्वक सेवा करना मानव का सबसे बड़ा धर्म है। समस्त प्राणिमात्र की सच्चे हृदय से सेवा करने में जो सुख मिलता है, वह और कहीं नहीं मिलता।'

'इस प्रकार मालवीय जी ने भंगियों को उपदेश दिया। यह उनकी वाक्-चातुरी थी कि लगभग दो घंटे तक वह बोले और सारी भंगी-जमात टस से मस नहीं हुई। मंत्रमुग्ध हो कर सब उनके उपदेशों को सुनते और अपना सिर हिलाते जाते थे, जिससे आशानी से यह भाषित होता था कि मालवीय जी की बातें उनके गले उतर रही हैं।'

यह सन् १९१८ की बात है। उस समय तक महात्मा जी ने अपना आन्दोलन अस्पृश्यता के निवारण के लिए नहीं उठाया था। जिस समय महात्मा जी ने कई वर्षों बाद इस आन्दोलन को उठाया, उस समय के पहले ही मालवीय जी इस ओर क़दम उठा चुके थे। उन्होंने शास्त्रों से बहुत से प्रमाण जमा किए, जिनसे यह सिद्ध होता था कि अछूतों को भी मंत्र की दीक्षा दी जा सकती है, और इसके बाद भारतवर्ष के पंडितों की एक सभा उन्होंने प्रयाग में की। यह सभा संगम के तट पर हुई। पंडितों के सामने उन्होंने अपना मन्तव्य रखा, लेकिन पंडितों में इस बात को सुन कर हो-हल्ला मच गया। अंत में पंडित मदनमोहन मालवीय खड़े हुए और अपनी मधुर वाणी में उन्होंने यह कहा—'मेरे जो विचार हैं, वे आप के सामने हैं। फैसला करना आप के अधिकार में है। आप का जो फैसला होगा, उसी के अनुसार मैं काम करूँगा।' तब पंडितों का क्रोध शान्त हुआ और उन्होंने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि अन्त्यजों को भी मंत्र की दीक्षा दी जा सकती है। सन् १९२७ के आरंभ में उन्होंने प्रयाग में लाखों आदमियों को मंत्रों की दीक्षा दी, जिनमें बड़ा भाग्य अंत्यजों का था। इसके बाद काशी में भी मंत्र की दीक्षा अंत्यजों को दी गयी, और सन् १९२८ में कलकत्ते के कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर उन्होंने अंत्यजों को मंत्र की दीक्षा दी। जहाँ वह गये, वहीं उन्होंने 'हरिजनों' को मंत्र की दीक्षा दी।

इसी बीच में महात्मा गान्धी काशी पधारे और अस्पृश्यता-निवारण के समर्थन में उनके कई व्याख्यान हुए। ऐसे एक अवसर पर मालवीय जी के एक व्याख्यान का वर्णन श्री अशोक जी ने किया है। श्री देवनायकाचार्य से अस्पृश्यता निवारण पर बोलने के लिये पहले ही से कहा गया था, पर उस समय वह कुछ नहीं बोले। जब महात्मा जी का भाषण समाप्त हुआ, तब एकाएक देवनायकाचार्य मंच पर आ गए और उन्होंने 'अंत्यजों' को मंत्र देने की बात का खंडन किया। मालवीय जी से नहीं रहा गया और तुरन्त उन्होंने देवनायकाचार्य का जवाब दिया। आगे की कथा श्री अशोक जी के शब्दों में सुनिए—

'मालवीय जी ने बोलना शुरू कर दिया, और कैसा बोले वह ! आज उनके शब्द तो स्मरण नहीं रहे, पर उनकी वह तेजस्वी, तमतमायी मुद्रा, हृदय को छू लेने वाली मधुर पर ओजस्वी वाणी और उनके भाषण का प्रभाव अमिट है।'

'मालवीय जी ने कहा कि मैं न धर्मशास्त्रों का पंडित हूँ, न धर्माचार्य हूँ। मैं तो एक ग़रीब कथा-बाँचने वाले धर्मप्राण भक्त ब्राह्मण का बेटा हूँ। मैंने आजीवन धर्म का आचरण करने का यत्न किया है। अपने जानते मैंने कभी अधर्म नहीं किया। मेरी समझ में नहीं आता कि करोड़ों गरीब हिन्दुओं को धर्माचरण और देव-दर्शन से वंचित रखना कौन-सा धर्म है। यह वही काशी नगरी है जहाँ रैदास और कबीर जैसे भक्त हो गये हैं, जहाँ स्वयं शंकर भगवान् ने चान्डाल का वेश धर कर भगवान् शंकराचार्य को सब जीवों की एकता का उपदेश दिया था। उसी नगरी में एक विद्वान् धर्माचार्य कैसे इतने बड़े अधर्म की बात कहता है, कैसे वह भगवान् को भक्त से दूर रखने का साहस करता है, कैसे वह छुआछूत के नाम पर पवित्र राम-नाम, शिव का नाम लेने से उन्हें रोकता है, जिसके उच्चारण से मुक्ति मिलती है ? मालवीय जी का एक-एक शब्द देवनायकाचार्य के फैलाए भ्रमजाल को काट रहा था और उस विराट् सभा के एक-एक हृदय को स्पर्श कर रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि उनकी जिह्वा पर स्वयं सरस्वती उतर आयी हैं। हम लोगों की आँखों से हज़ारों वर्षों का जमा कूड़ा हट गया और ऐसा लगा कि कोई वैदिक महर्षि अपनी अमर वाणी से हमारा उद्‌बोधन कर रहा हो। उनकी वाणी के जादू ने हम सबको ऐसा सम्मोहित कर दिया था कि उनके चुप होने के एक-दो मिनट बाद तक सारी सभा मंत्रमुग्ध सी रही और वातावरण में उनका ही स्वर गूंज रहा था। फिर हमने देखा कि महात्मा गान्धी ने एकदम भाव-विभोर हो कर मालवीय जी के दोनों हाथ पकड़ लिए। उनके शब्द तो हम न सुन पाए, और शायद उनके मुंह से कोई शब्द उच्चरित भी न हुए, पर उनकी आँखों ने, उनकी भाव-भंगिमा ने सब कुछ कह दिया; और सारी सभा उन्मत्त की भाँति मालवीय जी और गांधी जी का जयजयकार कर उठी।'

(आज, २४ दिसम्बर, १९६२)

कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर, ३० दिसम्बर सन् १९२८ को, मालवीय जी ने यह घोषणा की कि 'अंत्यजों' को मैं मंत्र की दीक्षा दूंगा।

एक बड़ा शामियाना लगाया गया और उसके नीचे होम और दीक्षा देने की तैयारी की गयी। मालवीय जी ८ बजे प्रातः दीक्षा-स्थान पर पहुँचे। इसके साथ कट्टर रूढ़िवादी सनातन-धर्मी भी आए। उन्होंने शामियाना गिरा दिया। पर वह विचलित नहीं हुए। गंगा-तट पर गए और वहाँ दीक्षा देने का कार्य शुरू किया। प्रतिद्वन्द्वी वहाँ भी पहुँचे और उन्होंने महाराज को घेर लिया और उन पर कीचड़ फेंकना शुरू किया। मुस्कराते हुए मालवीय जी अपना कार्य करते रहे।

मालवीय जी ने विरोधी पंडितों को ललकारा कि यदि कोई शास्त्रार्थ करना चाहे, तो वह तैयार हैं। एक पंडित आगे आया और तीन घन्टे तक उसने भाषण किया। मालवीय जी ने पंडितों को मान्य ग्रन्थों ही से प्रमाण दे कर उस पंडित का जवाब दिया।

मालवीय जी इस सारे समय शान्त, प्रसन्न रहे। उद्विग्नता का चिह्न भी उन्होंने प्रकट नहीं किया। सुमधुर वाणी, ललित व मनोहर भाषा, तर्क व युक्तियुक्त विचार-शैली और शास्त्रों के प्रमाणों से जनता बहुत प्रभावित हुई और आकाश 'मालवीय जी की जय' के जयजयकार से गूँज उठा। विरोधी वापस लौट गए। साढ़े तीन बजे तक दीक्षा देने का कार्य मालवीय जी करते रहे।

यह भी कलकत्ते की बात है। पुनः ६ जनवरी, सन् १९२९, को दीक्षा देने का कार्य प्रारंभ हुआ। दीक्षा-स्थान पर पुलिस और स्वयंसेवकों का प्रबंध था। किन्तु विरोधी हतोत्साह नहीं हुए थे। मालवीय जी ने जब स्नान के लिए गंगा जी में प्रवेश किया, उसी समय एक हिन्दू गुंडे ने मालवीय जी पर छुरे से वार करने का असफल प्रयत्न किया। महाराज (मालवीय जी) बच गए और गुण्डा पकड़ लिया गया। प्रातः नौ बजे से मध्याह्न बारह बजे तक मालवीय जी बराबर तथाकथित अस्पृश्यों को दीक्षा देते रहे।

१ अगस्त, सन् १९३४, को एक सभा में भाषण करते हुए मालवीय जी ने कहा था —"सदाचार ऐसी वस्तु है कि इससे नीच कुल में उत्पन्न हो कर भी मनुष्य ऊँचा सम्मान पा सकता है।

'चाण्डाल भी हमारे ही अंग हैं। क्या आप लोगों में से कोई चाहते हैं कि उन्हें पीने को पानी न मिले ?

(श्रोता—नहीं-नहीं)

'क्या आप चाहते हैं कि जिन सड़कों पर सब लोग चलते हैं, उन पर उन्हें चलने न दिया जाय ?

(श्रोता—कभी-नहीं)

"क्या आप चाहते हैं कि जिन स्कूलों में ईसाई-मुसलमानों के लड़के पढ़ते हैं, उनमें वे न पढ़ने दिये जाएँ ?

(श्रोता—कभी नहीं)

"मेरी यही इच्छा है कि ऐसी जगहों में जहाँ रोक हो वह मिटे।

"हमें इन अछूतों को जल देना है, रहने को स्थान देना है और उन्हें शिक्षा देनी है। मैं चाहता हूँ कि इनके चार करोड़ घरों में मूर्तियाँ रखी हों और भगवान का भजन हो, तभी मंगल होगा।"

सन् १९२५ में कांग्रेस के अधिवेशन के समय उसी पंडाल में हिन्दू-महासभा का जलसा हुआ। कांग्रेस की सभापति श्रीमती सरोजिनी नायडू थीं। हिन्दू-महासभा के सभापति थे श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर जिसमें मालवीय जी का प्रधान हाथ था और अछूतोद्धार पर बहुत जोर उन्होंने दिया था। उसके मंच पर मालवीय जी ने एक 'हरिजन' के हाथ का जल ग्रहण किया। उनका यह कार्य असाधारण था क्योंकि खानपान के मामले में उनकी कट्टरता भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध थी। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि वाइसराय तक की पार्टियों में उन्होंने कभी चाय या जल तक नहीं पिया।

इन बातों से क्या जाहिर होता है ? मालवीय जी अछूतोद्धार के लिये अधिक से अधिक दूर जाने को तैयार थे, लेकिन वहीं तक वह जा सकते थे जहाँ तक उनका कार्य शास्त्रविहित था, क्योंकि धर्म उनके प्राणों का अंग था और उन्हें पैतृक विरासत थी कि वह कभी कोई ऐसी बात न करें जो शास्त्रों के विरुद्ध हो। उन्हें राष्ट्रीय हित की बड़ी चिन्ता रहती थी, परन्तु हिन्दू जाति और संस्कृति की रक्षा करने का सवाल उनके हृदय को हिलाने लगा था। अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों को दबोच लें, यह बात उनको उलटी, अस्वाभाविक-सी मालूम हुई, जिसका कारण ढूंढ़ना आवश्यक हो गया। पंडित मदनमोहन मालवीय से स्वामी श्रद्धानन्द जी मिले— यह वही स्वामी श्रद्धानन्द थे, जिन्होंने खिलाफत और असहयोग के दिनों में दिल्ली की जामा मस्जिद में भाषण किया था। जहाँ स्वामी श्रद्धानन्द आर्यसमाज के बड़े नेता थे, वहाँ मालवीय जी हिन्दू जाति के रक्षक थे। "वह किसी सम्प्रदाय या मजहब से द्वेष नहीं रखते थे और न किसी को क्षति पहुँचाना चाहते थे। वह राष्ट्रवादी नेता थे। भारतीय राष्ट्र के निर्माताओं में वह एक तेजस्वी नक्षत्र के समान थे। तमाम जिंदगी भर उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये अपना सर्वस्व खपा दिया, परन्तु उसका यह अर्थ नहीं था कि हिन्दू धर्म, हिन्दू जाति और हिन्दू संस्कृति पर कोई आक्रमण करे और वह आँख मूंद कर देखते रहें। इन तीनों की रक्षा के लिये बहुत पहले ही उनका मन अर्पण हो चुका था। हिन्दुओं की दुर्दशा देखकर इन दोनों नेताओं ने विचार-विमर्श के बाद यह नतीजा निकाला कि इसका मूल कारण हिन्दुओं की शृंखला-हीनता और बंधुत्व-भावना का अभाव है।" इसलिए इन दोनों महापुरुषों ने राष्ट्रनिर्माण के लिये और हिन्दू जाति को जीवित रखने के लिये हिन्दुओं का संगठन करना, उनमें भाई-चारे का भाव जागृत करना और उनमें शारीरिक तथा आत्मिक बल का बढ़ाना आवश्यक समझा। उन्होंने यह अनुभव किया कि हिन्दुओं को 'बिखरित' देखकर और उन्हें दुर्बल मान ही कर अल्पसंख्यक मुसलमान उन पर आक्रमण करते हैं। यदि वे हिन्दुओं को संगठित पाएँगे तो उनके साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करेंगे। मालवीय जी ने हिन्दू-संगठन का इसी-लिए निश्चय किया। सर्वत्र उपदेशक उनके निम्नलिखित हिंदू धर्मोपदेश-प्रचार के लिये भेजे गए—

हिताय सर्वलोकानां निग्रहाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय प्रणम्य परमेश्वरम्॥
ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्व महोत्सवः॥
अनाथा विधवा रक्ष्या मंदिराणि तथा च गौः।
धर्म्यं संघट्टनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम्॥
स्त्रीणां समादरः कार्यो दुःखितेषु दया तथा।
आहिंसका न हंतव्या आततायी वधार्हणः॥
अभयं सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं धृतिः क्षमा।
सेव्यं सदाऽमृतमिव स्त्रीभिश्च पुरुषैस्तथा॥
कर्मणां फलमस्तीति विस्मर्तव्यं न जातुचित्।
भवेत्पुनः पुनर्जन्म मोक्षस्तदनुसारतः॥

स्मर्तव्यः सततं विष्णुः सर्वभूतेस्ववस्थितः।
एक एवाऽद्वितीयो यः शोकपापहरः शिवः॥
'पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगलम्।
दैवतं देवतानां च लोकानां योऽव्ययः पिता'॥
उत्तमः सर्व धर्माणां हिन्दूधर्मोऽयमुच्यते।
रक्ष्यः प्रचारणीयश्च सर्वभूतहिते रतैः॥

यदि इन उपदेशों की आलोचना की जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उसमें मालवीय जी ने हिन्दू और सनातन धर्म के सात तत्वों का संक्षेप से वर्णन किया। लोकहित पर उनका आग्रह था और स्वधर्म में दृढ़ रहने के लिये वह हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते थे।

अब रही बात शास्त्रों की। शास्त्रों के महत्व को मालवीय जी भली-भाँति समझते थे; और वह उनकी रक्षा करना चाहते थे और करते भी थे, परन्तु वह लकीर के फ़कीर नहीं थे और न वह आँख मूंद कर उनका अर्थ लगाते थे। "वह तो 'समन्वयवादी' थे और शास्त्रों के अनेकार्थ और परस्पर विरोधी वाक्यों, अनर्थों और विधि निषेधात्मक वाक्यों के भीतर प्रवेश कर उनके मथितार्थ निकालने की उनकी प्रवृत्ति थी।" केवल शास्त्रों के शब्दों पर वह कभी जोर नहीं देते थे, परन्तु उनका सार ढूंढ़ कर शास्त्रों का मत वह दुह लेते थे। इसीलिये मालवीय जी के संक्रान्ति के स्थान में उदार, उदात्त और उच्च भाव या विचार उपलब्ध होते थे। यह बात नहीं थी कि विद्वानों की मंडली का वह आदर नहीं करते थे।

———

तेरहवाँ अध्याय

मालवीय जी के प्रति दो हरिजन सज्जनों की 'शहादत,

मालवीय जी ने सन् १९१८ से हरिजनों के उद्धार और सुधार की चेष्टा करनी शुरू कर दी थी। सन् १९१८ के प्रयाग-कुम्भ के मेले पर बसंत पंचमी के दिन उन्होंने दो हजार भंगियों को जो उपदेश दिया था, उसका वर्णन हमने किया है। महात्मा गान्धी ने भी उस समय तक हरिजन आन्दोलन की ओर ध्यान नहीं दिया था। उस समय तो उन्हें खिलाफ़त का समर्थन कर मुसलमानों को कांग्रेस में लाने की चेष्टा करने की धुन थी। कई वर्षों बाद महात्मा जी को इस समस्या की महत्ता का अनुभव हुआ और वह उस समस्या के समाधान के लिए कूद पड़े। उनका कूदना था कि उनके साथी भी उनके साथ कूद पड़े और सब प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश करने लगे। उन्होंने पहले कहा था कि हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश' की छूट होनी चाहिए। बहुत से मंदिरों ने इस बात को मान लिया और उनके द्वार हरिजनों के लिए खुल गए। उसी समय मालवीय जी ने मंत्र-दीक्षा की पद्धति हरिजनों के लिए खोल दी। इन दोनों प्रयत्नों का हमारे समाज पर कितना असर हुआ, यह बात उस अध्याय से प्रकट हो जाएगी, जिसमें मालवीय जी का, समाज-सुधारक के रूप में, वर्णन है।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि क्या मालवीय जी की हरिजनों के प्रति सहानुभूति केवल मौखिक थी या उनसे जो कुछ बन पड़ता था, उस सब को लेकर हरिजनों की सेवा में वह उपस्थित होते थे। इसीलिए इन दो हरिजन सज्जनों की 'शहादत' देना आवश्यक है। एक सज्जन उत्तर प्रदेश के मंत्री हैं, और दूसरे सज्जन संसद्-सदस्य हैं। इन दोनों 'सहादतों' को पढ़ने से पाठकों को यह भली-भाँति मालूम हो जाएगा कि हरिजनों के प्रति मालवीय जी की सहानुभूति केवल मौखिक नहीं थी। दोनों सज्जनों ने, अपन-अपने अनुभव के अनुसार, मालवीय जी के व्यक्तित्व पर जो प्रकाश डाला है, उसके लिए हमें उनका आभारी होना चाहिए।

श्रीयुत चौधरी गिरधारीलाल ने, जो उत्तर प्रदेश के एक मंत्री हैं, मालवीय जी को 'युग का महानतम मानव' कहते हुए एक लेख लिखा है। उसमें वह यह कहते हैं—"यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे काशी विश्वविद्यालय में लगातार चार वर्ष रहने और पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय विद्यालय के जन्मदाता गोलोकवासी महामना पं० मदनमोहन मालवीय ही उसके उप-कुलपति थे। प्रवेश-द्वार के कुछ ही आगे बढ़ने पर दाहिने हाथ वाली कोठी में वह रहा करते थे। मैंने अपने जीवन का क्रम बना लिया था कि प्रातःकाल उठकर (उनकी) कोठी की ओर जाना और इस युग के सबसे बड़े और सबसे महान् मानव के दर्शन करके अपने जीवन को सफल बनाना और उनसे प्रेरणा लेना। वह भी घूमने जाया करते थे। घड़ी की सुई की चाल को प्रतिद्वन्दिता में हराने की उनमें अपूर्व क्षमता थी। मैंने समय को भाँप लिया था और ठीक एक ही स्थान पर और एक ही समय मेरा

और ऋषि-समान महामानव का आमना-सामना हो जाया करता था। मैं उनका चरण-स्पर्श कर अपने मानव-जीवन को कृतकृत्य समझा करता था।

मेरे जीवन में जो मोड़ मिला, वह उसी महामानव की कृपा के फल से। वह ऐसा युग था जब किसी हरिजन बालक का पढ़ना इतना आसान नहीं था (जैसे आज कल है)। विद्यालयों में बड़े-बड़े प्रतिबंध लगे हुए थे और उच्च शिक्षा का प्राप्त करना तो प्रायः असंभव ही था। किन्तु महामना के काशी विश्वविद्यालय में इस छुआछूत के अभिशाप का प्रवेश नहीं था। उनके (मालवीय जी के) दर्द भरे दिल में ऊँच-नीच का भेद-भाव जैसे कभी आया ही नहीं, और यदि उनका झुकाव भी हुआ तो हरिजनों ही की ओर। बस, उनको मालूम भर हो जाना चाहिए कि यह बालक हरिजन है और उनकी उदारता के कपाट उसके लिए खुल जाते थे। शिक्षा-शुल्क और छात्रावास-शुल्क तो माफ़ ही हो जाता था, उसके दूसरे खर्चे भी महामना अपने पास से पूरा कर देते थे। आज शिक्षित हरिजन-समुदाय में काफ़ी संख्या उन लोगों की है, जिन्हें मालवीय जी की उदारता के कारण ही सारी सहूलियतें प्राप्त हुईं।

'देहरादून की बात है। मंसूरी जाते हुए सन् १९३५ में महामना के दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। हरिजनों की दुर्दशा का जिक्र छिड़ गया। वह बताने लगे कि 'मानव नामधारी ये करोड़ों प्राणी कितनी दयनीय दशा से गुजर रहे हैं। इन्हें एक वक्त का अन्न जुटाने के लिए असंख्य यंत्रणाओं का सामना करना पड़ता है, फिर भी भोजन नसीब नहीं होता। मैंने अपनी आँखों से देखा है उन सैकड़ों हरिजन बालक और बालिकाओं को जो गाय के गोबर से अन्न के दाने बिनते थे, ताकि उनका वे अपनी क्षुधा-निवारणार्थ उपयोग कर सकें। यह कहते-कहते उस करुणा सागर की आँखों से अजस्र अश्रुधारा बह निकली। उपस्थित जन-समुदाय निस्पन्द हो गया। कितनी दया और कितनी करुणा भरी थी उस दयासागर के हृदय में हरिजनों के प्रति।

'विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष ले कर मानवता के सर्वोत्कृष्ट स्तर पर पहुँचाने वाले महामना मालवीय का जन-समुदाय के लिए यही आदेश रहता था कि हिम्मत को कभी हाथ से नहीं जाने देना चाहिए और न कभी भगवान को भुलाना चाहिए। उनके ये शब्द-हारिए न हिम्मत, बिसारिए न राम'—एक शाश्वत सन्देश के रूप में जन-मानस को आगे बढ़ने के लिए सदा उत्साहित करते रहेंगे। सन् १९४० की बात है, हरिजनों में फिर एक बार धर्म-परिवर्तन की लहर दौड़ चली, तो उन्होंने मुझे यह लिखित आदेश भेजा कि विपरीत परिस्थितियों से घबराना नहीं चाहिए, काम को आगे बढ़ाए चलो और परिणाम की चिन्ता न करो। स्वराज्य के मिलने में अब अधिक देरी नहीं है। स्वराज्य के मिलने के पश्चात् तो परिस्थितियाँ अपने आप ही बदल जायेंगी और राज्य की बागडोर उनके हाथ में आएगी, जिनका जनसंख्या के अनुपात में बहुमत होगा। हरिजनों ने बहुत बुरे दिन देखे हैं। वे बहुत अच्छे दिन भी देखेंगे क्योंकि उतार और चढ़ाव जीवन का क्रम है'।

यह तो एक 'हरिजन' मन्त्री की बात हुई। दूसरे सज्जन-डा० धर्म प्रकाश, एम० पी०—ने मालवीय जी के विषय में जो कुछ लिखा है, वह नीचे दिया जाता है। इन

सज्जन ने अपने लेख में मालवीय जी को 'दीनबन्धु महामना' की उपाधि से याद किया है। इस लेख के लेखक भी एक हरिजन हैं। इन दो हरिजनों की 'शहादत' से यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि मालवीय जी की हरिजनों के प्रति सहानुभूति केवल मौखिक नहीं थी। वह उनके उत्थान के लिए जो कुछ कर सकते थे, वह उन्होंने बराबर किया। अपने लेख में वह लिखते हैं—'महामना मालवीय जी के संपर्क में आने का सबसे पहले सौभाग्य सन् १९३४ में मिला। इसके पूर्व उनके बारे में सुन तो बहुत रहा था किन्तु अधिक निकट से उनके स्वच्छ और निर्मल चरित्र के दर्शन करने का मौका मुझे प्राप्त नहीं हो सका था। प्रथम भेंट का परिणाम यह हुआ कि मैं उनका भक्त बन गया। मुझ पर उनके व्यक्तित्व का मानो जादू-सा हो गया हो। यह भेंट लगभग डेढ़ घन्टे तक चली, जिसमें उन्होंने अपन हृदय की वेदना मेरे सामने उडेल दी। बातचीत के दौरान में जब डा० अम्बेडकर द्वारा उठाए गए धर्म-परिवर्तन का जिक्र आया तो वह अधीर हो उठे। हिन्दू धर्म के इन करोड़ों लाड़लों के विधर्मी बन जाने की कल्पना-मात्र से वह सिहर उठे। मैंने उनकी आँखों में आँसू तैरते देखे। कितना विचलित हो गया था वह धीर गम्भीर महामानव उस समय, यह मैं प्रयत्न करने पर भी भुला नहीं सकूंगा।

'जब मैं चलने लगा और मैंने उनके पाँव छुए तो मेरे दोनों कंधों को पकड़ उन्होंने मुझे उठा बरबस अपने हृदय से लगा लिया। उनका स्वर भावावेश में काँप रहा था, जब वह बोले—'धर्मप्रकाश, भारत में धर्म का प्रकाश करने के लिए ही तुम्हारा जन्म हुआ है, यह मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। दलित वर्ग में स्वदेश, स्वराज्य और स्वधर्म के प्रति निष्ठा बढ़े, इस कार्य को तुम्हें सम्हालना है और मुझे आशा है तुम सम्हाल लोगे। तुम्हारे मजबूत कंधों में इस भार को ढोने की सामर्थ्य है, यह मैंने समझ लिया है और इसी कारण मैंने तुम्हें बुलाया भी था। बोलो अब कब आओगे ?'

इन शब्दों को कहते-कहते उन्होंने मेरी आँखों में अपनी आँखें डाल दीं और मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि कोई अदृश्य शक्ति मुझे मजबूर कर रही है कि मैं अपने आपको उन्हें सौप दूं। उस प्रबल जादूगर में मैं खो-सा गया। उनके उस महान् व्यक्तित्व के सामने संसार की हस्तियाँ मुझे नगण्य-सी प्रतीत होने लगीं। उस समय भी उनकी आँखें तरल थीं और वात्सल्य-भाव से आपूरित थीं।

चौदहवाँ अध्याय

मालवीय जी और सन् १९१६-१८ का औद्योगिक कमीशन

देश के सौभाग्य से मालवीय जी का नाम औद्योगिक कमीशन की सदस्यता के लिए रखा गया। हम पहले कह चुके हैं कि देश की औद्योगिक उन्नति में मालवीय जी छात्रावस्था ही से दिलचस्पी लेते रहे हैं। उन्हें देश के औद्योगीकरण की चिन्ता शुरू ही से थी और गैर सरकारी मेम्बर की हैसियत से इस ओर वह जो कुछ कर सकते थे, उसके करने में वह कभी नहीं हिचके। देश की औद्योगिक हीनता को देखकर उनका दिल रो पड़ता था। छात्रावस्था ही में उन्होंने 'स्वदेशी' के प्रचार के लिए व्रत लिया था और इसी कारण उन्होंने अपने काशी-विश्वविद्यालय में टेकनालाजी और मैकेनिकल इन्जीनियरिंग का एक कालेज खोला। इसीलिए हमने कहा है कि इस कमीशन की सदस्यता के लिए भारतीय नेताओं में यदि कोई लिया जा सकता था तो मालवीय जी के अतिरिक्त, और दूसरा नाम सरकार के सामने रखने योग्य नहीं था।

औद्योगिक कमीशन का प्रतिवेदन फुलस्केप साइज के चार सौ तिरासी (४८३) पृष्ठों में छपा है। इसमें से मालवीय जी ने तो सम्मिलित रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए, लेकिन एक व्याख्या—नोट—के साथ। उनका यह नोट छप्पन पृष्ठों का है। इसके लिखने में मालवीय जी को कितनी मेहनत करनी पड़ी होगी, उसका अनुमान वे ही लगा सकते हैं, जिन्हें मालवीय जी के संशोधनों का कुछ भी अनुभव है। वह बोलते तो धारा-प्रवाह थे, पर लिखित वक्तव्य या भाषण में मालवीय जी इतने और इतनी बार संशोधन करते थे, इसका अनुभव उसी को हो सकता है, जिसने मालवीय जी के संशोधनों की प्रवृत्ति को देखा है। उन्हें इस बात की तनिक भी चिन्ता न थी कि प्रेस वालों पर क्या बीतेगी वह कोई शब्द ऐसा अपने लेख में न जाने देते थे, जो उनके अनुसार, ठीक न हो। उनके लिखित निबन्धों या वक्तव्यों की तुलना कीजिए उनके अलिखित व्याख्यानों से। दोनों एक से लगते हैं, लेकिन उनको संशोधन करने की आदत 'हिन्दुस्तान' अखबार के सम्पादन के समय से पड़ गयी थी, जिसे वह अन्त तक न दूर कर सके।

इस कमीशन के सभापति, सर टी० एच० हालैण्ड, के० सी० एस० आई०, के० सी० आ० ई०, डी० एस-सी०, एफ० आर० एस० रखे गए थे। इसके सदस्यों के नाम हैं—(१) श्री एलफ्रेड चेटरटन (२) माननीय श्री फजलभाई करीमभाई इब्राहीम (३) श्री एडवर्ड तार्पाकिसन (४) माननीय श्री लो (५) माननीय पं० मदनमोहन मालवीय (६) माननीय सर राजेन्द्रनाथ मुकर्जी, के० सी० आई० ई० (७) महामान्य (राइट आनरेबुल) सर होरसप्लैंकट (८) माननीय सर फ्रांसिस स्टुअर्ट और (९) सर दोराबजी ताता। इन सदस्यों में चार तो भारतीयों के नाम हैं और सभापति को लेकर पाँच अंग्रेज हैं। इसमें से एक सज्जन—सर होरस प्लैंकट ने कोई भी भाग इस कमीशन में नहीं लिया, क्योंकि पहले अस्वस्थता के कारण और बाद में राष्ट्रीय कामों में फँस जाने के कारण वह भारत न

आ सके। इसे देश का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए, क्योंकि प्लेकट महोदय ने आयरलैण्ड में कृषि और उद्योग के बढ़ाने में जो काम किया, वह जग-जाहिर है। ऐसे महापुरुष का भारत में न आना ही खलता है। यदि वह होते तो जिस प्रतिवेदन पर उनका हस्ताक्षर होता, वह मौजूदा प्रतिवेदन से भिन्न होता। ऐसी हमारी आशा थी, लेकिन इस प्रतिवेदन में जिस कमी को वह पूरा करते, वह मालवीय जी की सदस्यता के कारण कुछ अंशों में पूरी हो गयी। सर प्लेकट की सदस्यता से इस्तीफ़ा देने के कारण, अंग्रेज और भारतीय सदस्यों पर मालवीय जी का कुछ भी असर न पड़ा। मालवीय जी का नोट नक्कारखाने में तूती की आवाज़ ही की तरह रह गया। प्लेकट महोदय का लोहा अंग्रेज और भारतीय सदस्य समान रूप से मानते थे। उनके रहने से इस प्रतिवेदन का रूप ही बदल गया होता। 'गतं न शोचामि, कृतं न मन्ये'।

इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में वे अनुक्रमणिकाएँ भी दी हैं, जो समय-समय पर उसकी गतिविधियों पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। ये अनुक्रमणिकाएँ अन्त में दी गयी हैं।

इस प्रतिवेदन या रिपोर्ट की एक विशेषता है। कमीशन ने सर्व-साधारण की जानकारी के लिए अपनी सिफ़ारिशों का इस रिपोर्ट में संक्षिप्त विवरण दिया है। इससे पाठकों को ४८३ पृष्ठ के प्रतिवेदन को पढ़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती। संक्षिप्त विवरण चार पृष्ठों में है। कहाँ ४८३ पृष्ठों का प्रतिवेदन और कहाँ उसका संक्षिप्त विवरण चार पृष्ठों में।

इस प्रतिवेदन में २५ अध्याय हैं, और उसके बाद मालवीय जी का नोट। २५ अध्यायों की सूची इस प्रकार है—(१) प्रस्तावना (२) देहाती भारत—प्राचीन और वर्तमान (३) कुछ आद्योगिक केन्द्र और ज़िले (४) उद्योगों के लिए कच्चे माल (५) भारत की औद्योगिक कमियाँ (६) उद्योग और कृषि (७) विद्युत-शक्ति (८) उद्योगों में भारतीय (९) गत-वर्षों में उद्योगों के सम्बन्ध में सरकारी नीति (१०) वैज्ञानिक और प्राविधिक सेवाओं का भारत में संगठन और देश विदेशों में अनुसंधान करने की सुविधाएँ (११) औद्योगिक और प्राविधिक शिक्षण की भारत में आवश्यकता (१२) व्यापारिक और औद्योगिक जानकारी (१३) सरकार द्वारा वस्तुओं की खरीदारी (१४) उद्योगों के सम्बन्ध में जमीन का अधिग्रहण (१५) सरकार द्वारा उद्योगों को प्राविधिक सहायता या टेकनिकल एसिसटेन्स (१६) फुटकर बातें (१७) श्रमिकों की देख-रेख और भलाई (१८) कुटीर-उद्योग (१९) छोटे और कुटीर उद्योगों में सहयोग (२०) उद्योग और यातायात (२१) औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था (२२) उद्योगों के लिए प्रान्तों में विभागीय काम (२३) उद्योग का केन्द्रीय विभाग (२४) खर्च का अनुमान (२५) सिफ़ारिशें, और फिर मालवीय जी का नोट।

मालवीय जी का नोट यद्यपि फुलस्केप साइज के ५६ पृष्ठों का है परन्तु वह अध्यायों में बटा नहीं है। अतएव अध्याय के शीर्षकों के अभाव में, इस नोट के शीर्षकों ही से काम लेना पड़ेगा। पहला शीर्षक है प्रस्तावना। २१ मार्च, १९१६, के दिन माननीय सर

इब्राहीम रहमत उल्ला ने एक औद्योगिक कमेटी की नियुक्ति का प्रस्ताव केन्द्रीय कौंसिल में पेश किया था। व्यापार-मंत्री, माननीय सर विलियम क्लार्क, ने इस प्रस्ताव को मन्जूर करते हुए कहा कि सरकार इस कमेटी के सुझाव के स्थान में पहले ही यह निश्चय कर चुकी है कि एक औद्योगिक कमीशन नियुक्त किया जाए और यदि भारत के सार्वजनिक नेताओं की बात मान ली गयी तो भारत की सरकार को व्यावसायिक—राजकोषीय स्वराज्य मिल जाएगा। लेकिन राजकोषीय मामलों के विषय में यह तय पाया है कि लड़ाई के बाद, राष्ट्र-मण्डलीय देशों का परस्पर और संसार के अन्य देशों के बीच क्या सम्बन्ध हो, इसका निर्णय होगा। अतएव औद्योगिक कमीशन के सामने यह मसला नहीं रखा गया।

सर इब्राहीम रहमत उल्ला ने समय को देखते हुए अपने प्रस्ताव को इस रूप में रखा था कि भारत की विदेशी सरकार उसे मंजूर करने के लिए बाध्य हो जाय। लेकिन भारत सरकार ने औद्योगिक कमेटी के स्थान में एक औद्योगिक कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की। लेकिन साथ ही उसने सर विलियम के मुंह से यह भी कहला दिया कि लड़ाई के बाद राजकोषीय मामलों का निर्णय होगा। इस तरह सर इब्राहीम रहमत उल्ला की जो चाल थी, वह बेकार सिद्ध हुई। उनके प्रस्ताव में यह माँग की गई थी कि राजकोषीय कर या शुल्क लगाने में भारत को 'स्वराज्य' मिलना चाहिए। लेकिन सर विलियम की घोषणा के बाद उनकी यह आशा निराशा में बदल गयी और कमीशन को जो काम सौंपा गया, उसके विचारार्थ यह मामला नहीं रखा गया। मई, सन् १९१६, को औद्योगिक कमीशन की नियुक्ति हुई और उसके सब सदस्यों ने काम आरम्भ किया। प्रश्नावली के बनाने के बाद, नवम्बर १९१७ में मालवीय जी कमीशन की सब बैठकों में हाज़िर न हो सके। असम और बर्मा में तो वह बिल्कुल नहीं जा सके, बम्बई नगर के अधिवेशनों में वह शरीक नहीं हुए, यद्यपि पंजाब में और बम्बई प्रान्त के कुछ ज़िलों में वह गए। इस औद्योगिक कमीशन के सभापति महोदय गोला-बारूद बनाने की जिम्मेदारी को निभाने के लिए सन् १९१७ में कमीशन के बम्बई अधिवेशन के बाद इस कमीशन में भाग न ले सके; उनके स्थान में सर आर० एन० मुकर्जी को उस समय तक के लिए स्थानापन्न सभापति नियुक्त किया गया, जब तक अंतिम रिपोर्ट का समय न आ गया। तब पुराने सभापति महोदय—सर पी० एच० हालैण्ड—फिर से काम करने लगे।

मालवीय जी ने सबसे बड़ा जो काम किया, वह यह था कि उन्होंने प्राचीन भारत और आधुनिक भारत की तुलना में उन उद्धरणों को अपने नोट में स्थान दिया है, जिनमें यह बात अंग्रेजी इतिहासकारों की ज़बानी स्वीकार की गई है कि प्राचीन भारत जहाँ कृषि और औद्योगिक कुशलता में प्रमुख था, वहाँ आधुनिक भारत कृषि-प्रधान देश रह गया। विदेशी सरकार ने वह तट-कर नीति बरती कि भारत का औद्योगिक विनाश होकर, वह केवल कृषि-प्रधान देश रह गया। डिग्बी महोदय का कहना है कि उसने जो आयात और निर्यात कर लगाए, उनकी यह साफ़ मन्शा थी कि भारत में ब्रिटेन का पक्का माल खपे और भारत से जो माल जाए, वह कच्चा हो। सन् १८१३ में, डिग्बी महोदय के अनुसार, भारत के कपड़े के निर्यात पर जो कर लगाए गये, इस प्रकार थे—

कपड़े का वर्णन	उसके निर्यात पर ब्रिटेन का कर
१. छींट	१०० पौन्ड के मूल्य पर ८१ पौंड २ शिलिङ्ग ११ पेंस का निर्यात कर
२. कच्चा कपास	फ़ी सौ पौंड वजन में १६ शिलिङ्ग ११ पेंस
३. पक्का सूती कपड़ा	८१ पौंड २ शिलिङ्ग ११ पेंस
४. बालों (मनुष्य) या ऊनी कपड़ा।	८१ पौंड ८ पेंस
५. फूलदार सफ़ेद छींट	सौ पौंड यदि मूल्य में हुआ तो उस पर ८२ पौंड और २ पेंस का निर्यात कर
६. दूसरे सूती कपड़े पर	८२ पौंड और २ पेंस का निर्यात कर

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि ब्रिटन वाले यह नहीं चाहते थे कि भारत से कोई भी कपड़ा जाए। हाँ, वह चाहते थे कि भारत से कपास तो जाए, लेकिन कपड़ा न जाए। यहाँ से कच्चा माल तो जाए और भारत-वासी ब्रिटेन का बना हुआ कपड़ा पहने। प्लासी-युद्ध के बाद जिस समय क्लाइव मुर्शिदाबाद गया, उस समय का उसने वर्णन किया है। उसका कहना है—जिस समय मैं मुर्शिदाबादमें प्रविष्ठ हुआ। उस समय यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि मुर्शिदाबाद लन्दन के समान समृद्धिशाली है। यदि दोनों नगरों में कोई अन्तर है तो यही कि मुर्शिदाबाद के धनिकों के पास इंग्लैन्ड के धनिकों की अपेक्षा अधिक अचल सम्पत्ति है। इस सबको बिगाड़ने की जिम्मेदारी मालवीय जी ने विदेशी शासन को दी है।

दूसरा शीर्षक है अंग्रेजी औद्योगिक क्रान्ति। इंगलैण्ड में या ब्रिटेन के अन्य नगरों में जो औद्योगिक क्रान्ति हुई, उसकी आजकल के अंग्रेज इतिहासज्ञों की लिखी पुस्तकों में बड़ी चर्चा है। यह क्रान्ति कैसे सम्भव हुई? मालवीय जी ने पिछले जमाने के कई अंग्रेज लेखकों के उद्धरण दिए हैं, जिनसे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि यदि 'इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हुई तो वह बंगाल और कर्नाटक की धन लूट के कारण हुई।

तीसरा शीर्षक है कच्चे माल के निर्यात पर करों का प्रभाव। इसी सम्बन्ध में लार्ड डलहौजी की रेलवे नीति की जहाँ मालवीय जी ने प्रशंसा की है, वहाँ वह यह भी कहने से नहीं चूके कि इस नीति के कारण कच्चा माल तो ब्रिटेन को अधिक जाने लगा पर इस नीति का भारत के उद्योगधन्धों पर बुरा असर पड़ा है, जिनका नतीजा यह हुआ कि अकाल बार-बार देश में पड़ने लगे।

भारतीय चिल्लाते हैं कि प्राविधिक शिक्षण और देशी उद्योगों की उन्नति हो। यह एक अन्य शीर्षक मालवीय जी के नोट का है। इसके बाद अन्य देशों की औद्योगिक उन्नति का वर्णन है और उसका भारत पर प्रभाव।

मार्च, सन् १९१४में भारत में विदेशों से जो आयात हुआ, उसका ब्योरा मालवीय जी ने दिया है उससे यह पता लगता है कि कुछ कम १३ करोड़ पौंड का भारत में आयात होता था। इस रक़म में सोना, चाँदी और सावरेन शामिल नहीं है। अब तो भारत का आयात विदेशों से और भी बढ़ गया है। लेकिन उस समय विदेशी सरकार भारत की औद्योगिक उन्नति के लिये तत्पर न थी, जितनी स्वराज्य होने के बाद देश की सरकार इस ओर सक्षम है।

नोट के २२ पृष्ठों के बाद, मालवीय जी अपने नोट में विदेशी सरकार को इसलिए बधाई देते हैं कि उनकी नीति में स्वभावतः कुछ परिवर्तन हुआ है। मालवीय जी ने सन् १८८१-१८९०, १८९१-१९००, १९०१ से १९०९ तक के जो आँकड़े जापान की एक पुस्तक से दिए हैं, उसकी तालिका हम नीचे दे रहे हैं :—

अवधि	विदेशों से भारत में आयात (दस लाख ऐम्रो में)
१८८१-१८९०	४६.५
१८९१-१९००	१७१.२
१९०१-१९०९	३४६.०

मालवीय जी के नोट का एक शीर्षक है उद्योग-धन्धे और कृषि। इसके उपरान्त उन्होंने कृषि सम्बन्धी शिक्षा के सम्बन्ध में लिखा। फिर टेकनालाजिकल शिक्षा पर वह आ गए। उन्होंने यह सुझाव दिया कि देश में इम्पीरियल इंजीनियरिंग कालेज होना चाहिए या देश में इम्पीरियल पालीटेकनिक इन्सटीट्यूट का होना बहुत जरूरी है। मालवीय जी व्यापारिक शिक्षा में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। इसके उपरान्त औद्योगिक अर्थ व्यवस्था का जिक्र उन्होंने किया। अंग्रेजी पद्धति से काम करने वाले बैंकों की प्रणाली की शिक्षा और सरकारी सहायता की मांग उन्होंने की।

इसके बाद, उनके नोट का शीर्षक है 'उद्योग-धन्धों के इम्पीरियल विभाग की स्थापना। दूसरा शीर्षक है इस नोट का वैज्ञानिक और प्राविधिक (टैकनिकल) सेवाओं का संगठन। वैज्ञानिक अनुसंधान को भी वह नहीं भूले। इसके विषय में उन्होंने नोट में काफी लिखा है। उनके नोट का एक दूसरा शीर्षक है वैज्ञानिक सेवाओं के लिए कैसे व्यक्तियों की भर्ती की जाए। अन्त में उन्होंने अपने प्रस्ताओं को कार्य रूप में परिणत करने के लिए अनुमित व्यय का ब्यौरा दिया। इस सम्बन्ध में उनका सुझाव था कि एक तो अन्य सरकारी विभागों पर खर्चा न बढ़ाया जाय और इस देश में रहने वाले भारतीय और अंग्रेजों का सेवाओं में भर्ती किया जाए। अन्यथा विदेशों से अंग्रेजों को लाने में उन्हें ऊँची तनख्वाहें देनी पड़ेंगी और सम्भव है कि ऊँची तनख्वाहों के देने पर भी उनकी सेवाओं से देश को वंचित रहना पड़े।

खर्च के संबन्ध में इस कमीशन का प्रस्ताव था कि ८६ लाख रुपए सालाना खर्च पड़ेगा। एक करोड़ ५० लाख रुपए लगेंगे शिक्षा-सम्बन्धी इमारतों के बनाने में। इसके अलावा, ६६ लाख रुपये खर्चा और लगेगा। कमीशन ने इस 'केपिटल' खर्चे की लागत के लिए सात वर्षों में ३० लाख रुपए प्रतिवर्ष का अनुमान लगाया था। मालवीय जी ने इसी अनुमान को अपने नोट में ठीक कहा है, यद्यपि उनके प्रस्ताव के अनुसार खर्चा कम बैठेगा।

यह समझना हमारी भूल होगी कि इस नोट में मालवीय जी सदा कमीशन के अन्य सदस्यों के मतों का विरोध करते थे। उनके प्रस्ताओं को सहानुभूति पूर्वक देखने के बाद हर प्रस्ताव पर वे कोई न कोई बात ऐसी कह देते थे जिससे भारतीयों का भला हो। प्रस्ताओं के स्वीकार करने का उनका ढंग यह था कि कमीशन का प्रस्ताव तो स्वीकृत है

लेकिन उसमें अपने सुझाव को देने की प्रवृत्ति को वह रोक नहीं सके। इसके जगह-जगह हमें पर संकेत मिले हैं।

इस नोट का उपसंहार मालवीय जी ने सर फ्रेड्रिक निकलसन के एक उद्धरण से किया है। वह सर फ्रेड्रिक से इस बात में सहमत हैं कि भारत की औद्योगिक उन्नति तभी सम्भव है जब उसके उद्योगों में वे ही कच्चे माल प्रयोग किए जाएँ, जो भारत में मिलते हैं, उद्योग भारत में प्रचुर मात्रा में खोले जाएँ, और उनसे जो मुनाफ़ा हो, वह भारत ही में रहे।

यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि इस कमीशन में उसके स्थानापन्न सभापति, सर आर० एन० मुकर्जी, से मालवीय जी की अनबन हो गयी लेकिन मालवीय जी पर इसका कोई असर न पड़ा। वह मुकर्जी महोदय के मकान पर गए और उनसे हिन्दू युनिवर्सिटी के लिए चन्दा माँगा। मुकर्जी महोदय अवाक् रह गए। उन्होंने मालवीय जी से कहा कि कमीशन में जो कुछ हुआ था, उसके बाद आपका मेरे घर पर आना मैं असम्भव समझता था। आप आए, बड़ी कृपा आपने मेरे ऊपर की। कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। मालवीय जी तो अजात शत्रु थे। वह मुस्करा कर बोले – कमीशन की बात कमीशन तक रही। आपके घर में क्यों न आता? इसके बाद, मालवीय जी ने उनसे काशी विश्वविद्यालय के लिए चन्दा माँगा। मुकर्जी महोदय ने मालवीय जी को वही रक़म दी, जो उन्होंने उनसे माँगी थी। इस तरह इस विवाद का अन्त हुआ। मुकर्जी महोदय को अपने घर पर मालवीय जी का आगमन आश्चर्य चकित कर सकता था, लेकिन मालवीय जी का यह स्वभाव था कि अपने बड़े से बड़े दुश्मन को भी अपनी मन्द मुस्कान से वह पराजित कर देते थे।

पन्द्रहवाँ अध्याय

मालवीय जी का भारत के भविष्य के लिए गोलमेज़ कान्फ्रेन्स का प्रस्ताव और गांधी जी की उस प्रस्ताव की नामंजूरी

यद्यपि भारत की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली आ गयी थी, लेकिन अंग्रेज़ वाइसराय सदैव की भाँति बड़े दिन की छुट्टियाँ वहीं बिताते थे। सन् १९२१ में भारतीय सुधारों की मांटेग्यु-चेम्सफ़ोर्ड योजना के उद्घाटन के सम्बन्ध में ब्रिटिश प्रिंस आफ़ वेल्स भारत पधारे थे। उनके इस आगमन के सिलसिले में बड़े दिन की छुट्टियों के दिनों में कलकत्ते में एक विशेष समारोह करने की योजना बनायी गयी थी। ब्रिटिश युवराज को विक्टोरिया मेमोरियल हाल का उद्घाटन करना था। इधर अंग्रेज़ी सरकार ने इस बात का पूरा प्रबन्ध किया था कि इस अवसर पर राजकुमार का भव्य स्वागत किया जाए। उधर कांग्रेस ने युवराज के स्वागत-सम्बन्धी समारोहों के बहिष्कार की आज्ञा दी थी। इससे अंग्रेजी सरकार बड़े असमंजस में पड़ी और उसने भरसक चेष्टा की कि यदि युवराज के कलकत्ता-सम्बन्धी स्वागत का बहिष्कार कांग्रेस न करे तो अंग्रेजी सरकार बाद में एक गोलमेज़ काफ्रेन्स बुलाने को तैयार होगी, ताकि भारत के राजनीतिक भविष्य के मसले के विषय में समझौता हो जाए।

मालवीय जी इस सम्बन्ध में एक बार वाइसराय से मिले और उनसे इस विषय पर बातचीत की। उस भेंट से मालवीय जी पर यह असर पड़ा कि यदि कलकत्ते में युवराज का बहिष्कार कांग्रेस न करे तो सरकार उसके बदले में कांग्रेस के साथ उसके राजनीतिक लक्ष्य के विषय में समझौता करने के लिए तैयार होगी। इस प्रस्ताव को लेकर मालवीय जी पहले अलीपुर (बंगाल) के सेंट्रल जेल में गये और वहाँ (स्वर्गवासी) श्री चित्तरंजनदास और (स्वर्गवासी) मौलाना अबुल कलाम आज़ाद से मिले। इन दोनों के सामने अपने उस प्रस्ताव को रखा, जो वाइसराय की भेंट से मालवीय जी के मन में उत्पन्न हुआ था। इन दोनों ने उस प्रस्ताव को सुन तो लिया; लेकिन अगले दिन अपना मत बताने का वायदा किया, क्योंकि वे पहले आपस में बातचीत कर लेना चाहते थे। उन्होंने आपस में बात चीत की। वे इस नतीजे पर पहुंचे कि यद्यपि इस कांफ्रेंस से हमारा अन्तिम लक्ष्य तो पूरा होता दिखायी नहीं देता, लेकिन इस प्रस्ताव को हमें स्वीकार कर लेना चाहिए। "यह बहुत बड़ी बात है। इस प्रस्ताव को मंजूर करने से हमारा राजनीतिक संघर्ष आगे बढ़ता है।' गांधी जी को छोड़कर, अन्य कांग्रेसी नेतागण जेलों में बन्द थे। उन्होंने यह विचार मालवीय जी के सामने रखा कि उन दोनों को वाइसराय का गोलमेज़ कांफ्रेंस का सुझाव मंजूर है, बशर्ते कि जो कांग्रेसी नेता जेल में हैं, वे कांफ्रेंस होने के पहले जेलों से छोड़ दिए जाएँ।

दूसरे दिन मालवीय जी फिर अलीपुर जेल में गये और इन दोनों से फिर मुलाक़ात की। इन्होंने उनसे अपना विचार फिर बताया और गांधी जी से मिलने के लिए उनसे

आग्रह किया गया। मालवीय जी पहले वाइसराय से मिले और इन दोनों की बातें उनसे बतायीं। दो दिन के बाद मालवीय जी इन दो नेताओं से फिर मिले और इन्हें बताया कि वाइसराय इस पर राजी हो गये हैं कि तमाम राजनीतिक नेता जो उस कांफ्रेंस में भाग लेंगे जेल से रिहा कर दिये जाएँगे। मालवीय जी की बातों से इन दोनों नेताओं को यह भी मालूम हुआ कि मौलाना मुहम्मद अली और मौलाना शौकत अली भी इस रिहाई में जेल से छोड़ दिए जाएँगे। एक वक्तव्य तैयार हुआ, जिस पर इन दोनों नेताओं के हस्ताक्षर थे और जिसमें स्पष्ट शब्दों में इन दोनों ने अपने विचारों को प्रकट किया था।

इसके बाद मालवीय जी इस वक्तव्य के साथ बम्बई गये और महात्मा जी से मिले। उनसे मालवीय जी ने अनुमति माँगी। मालवीय जी को गांधी जी की अनुमति न मिली।

गांधी जी की यह शर्त थी कि सब राजनैतिक नेता, विशेष कर अली-बंधु, पहले छोड़ दिए जाएँ। महात्मा जी ने कहा कि यह कैसे संभव है कि दबाव में पड़कर हम गोलमेज कांफ्रेंस के विषय में विचार करें, जब हमारे बहुत से नेता जेलों में सड़ रहे हैं। पहले जेल से उनकी रिहाई हो, और तब गोलमेज कांफ्रेंस पर विचार किया जाए।

इन दोनों नेताओं को गांधी जी की यह बात पसंद न आयी। दोनों नेताओं को अचरज भी हुआ और शोक भी हुआ कि महात्मा जी ने उनकी बात न मानी।

कांग्रेस के आदेश से कलकत्ते में युवराज के आगमन पर और उनके सम्मान में आयोजित अन्य समारोहों पर हड़ताल धूम-धाम से हुई, जिसमें पूरी सफलता मिली। उनमें उन्हीं भारतवासियों ने भाग लिया, जो विदेशी सरकार के पिट्ठू थे। इनको छोड़ कर, किसी और भारतवासी ने इन समारोहों में भाग नहीं लिया।

कुछ दिनों के बाद महात्मा जी ने बम्बई में एक सभा की, जिसके सभापति श्री शंकर नायर थे। गांधी जी ने स्वयंमेव सभा के सामने गोलमेज कांफ्रेंस का प्रस्ताव रखा, लेकिन तब तक युवराज भारत से इंग्लैण्ड के लिए रवाना हो चुके थे और अंग्रेजी सरकार को महात्मा जी का यह प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। उन्होंने उनके प्रस्ताव पर विचार भी नहीं किया, बल्कि महात्मा जी के प्रस्ताव को बिलकुल ही नामंजूर कर दिया।

यह हाल मैंने मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की उस पुस्तक से लिया है, जिसे श्री हुमायूँ कबीर ने लिखी है। दुर्भाग्य से श्री जयकर की पुस्तक का प्रथम खंड मुझे देखने को नहीं मिला। उसमें महात्मा जी की बातों ही का हाल हो सकता था।

सोलहवाँ अध्याय

सन् १९३१ में लन्दन की गोलमेज़ कांफ्रेंस में मालवीय जी

यों तो मालवीय जी लन्दन की गोलमेज कांफ्रेंस में विभिन्न विषयों पर बोले, लेकिन उनका मुख्य भाषण 'प्रतिरक्षा' के सम्बन्ध में हुआ था।

यह कांफ्रेंस ७ सितम्बर, सन् १९३१, से पहली दिसम्बर, सन् १९३१ तक चली। लेकिन मालवीय जी का मुख्य भाषण प्रतिरक्षा के सम्बन्ध में हुआ था। उसी का यहाँ पर जिक्र करना आवश्यक है, क्योंकि मालवीय जी ने इस विषय में कांग्रेस की नीति की जो व्याख्या की, वह उस समय को देखते हुए और पंचमेल अखाड़ियों का जमघट देखकर यही कहना पड़ता है कि मालवीय जी ने कांग्रेस के पक्ष को ठीक-ठीक रखा था।

इस कांफ्रेंस में भाग लेने वाले न केवल भारतीय थे बल्कि अंग्रेजों के नेता-गण भी थे। उन सबके नाम यहाँ पर देना आवश्यक है—माननीय लार्ड संकी इसके सभापति थे। इसके सदस्यों की संख्या ३९ थी। उनके नाम हैं—(१) माननीय श्री बेजवुड बेन (२) माननीय मेजर इलियट (३) माननीय चायकाउंट हिलशेम (४) सर सैम्युअल होर (तत्कालीन भारत-मंत्री) (५) माननीय श्री एच० बी० लोज-स्मिथ (६) माननीय लार्ड लोथियन (७) माननीय लार्ड पील (८) माननीय श्री पैथिक-लारेंस (९) माननीय लार्ड रीडिंग (१०) महाराजा गायकवाड (११) नवाब भोपाल (१२) महाराजा बीकानेर (१३) महाराजा धौलपुर (१४) महाराजा रीवाँ (१५) सांगली के प्रमुख साहब (१६) हैदराबाद के सर अकबर हैदरी (१७) मैसूर के सर मिर्जा इस्माइल (१८) ग्वालियर के कर्नल हक्सर (१९) आगा खाँ (२०) डा० अम्बेदकर (२१) सर मानकजी बी० दादाभाई (२२) श्री ए० आर० आयंगार (२३) श्री एम० के० गांधी (२४) श्री एम० ए० जिन्ना (२५) श्री एम० आर० जयकर (२६) श्रीगोविन जोन्स या श्री बेंबल (२७) श्री एन० एम० जोशी (२८) श्री मदन मोहन मालवीय (२९) सर प्रोवाशचन्द्र मित्तर (३०) दीवान बहादुर रामस्वामी मुदालियार (३१) सर सुलतान अहमद (३२) सर तेज बहादुर सप्रू (३३) श्री श्रीनिवास शास्त्री (३४) डा० सफ़ात अहमद खाँ (३५) सर मुहम्मद शफ़ी (३६) श्रीमती सुब्बरायन (३७) सर पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास (३८) सरदार उज्जल सिंह और (३९) श्री जफ़रुल्ला खाँ।

लंदन की गोलमेज कांफ्रेंस की पूरी सदस्यता हमने नहीं दी है जिन सज्जनों के नाम हमने दिए हैं, वह तो एक कमेटी के सदस्यों की नामावली है, जिसका नाम था—'फैडरल स्ट्रक्चर कमेटी' यानी वह कमेटी जो संघीय विधान का ढाँचा तैयार कर रही हो।

इस कमेटी के जिन सदस्यों के नाम हमने दिए हैं, उनमें दस अंग्रेज थे और शेष हिन्दुस्तानी; यानी वे दस ब्रिटेन के प्रमुख राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि थे। भारत के प्रतिनिधियों में श्री गेविन जोन्स या श्री बेंबल थे तो अंग्रेज, पर थे वे ग़ैर-सरकारी प्रतिनिधि।

यदि सम्मेलन को 'शिवजी की बारात' मैंने कहा तो कोई अतिशयोक्ति हमसे नहीं हुई। यह वास्तव में अखाड़े का दंगल था। कांग्रेस की ओर से महात्मा जी अकेले प्रतिनिधि थे। उन्होंने अपने साथ किसी और का नाम नहीं रखा। जिस समय 'प्रतिरक्षा' का प्रस्ताव पेश हुआ, उस समय महात्मा जी को निराशा साफ़ दिखायी देने लगी और उन्होंने कहा कि भारत में पूर्ण स्वराज्य होना चाहिए, जिसकी इस कांफ्रेंस में मिलने की आशा नहीं है, यद्यपि बहुत सी बातों में मालवीय जी का समर्थन उन्होंने किया।

इस कमेटी के सामने सभापति, लार्ड संकी, ने जिन विषयों को विचारार्थ रखा, उनमें निम्न थे—(१) संघीय विधान-मंडल के सदस्यों की संख्या क्या हो (२) और उनमें लोग कैसे चुने जाँय (३) संघीय विधान-मंडल के दोनों सदनों का पारस्परिक व्यवहार (४) संघ और प्रान्तों में आर्थिक सम्बन्ध (५) मंत्रियों का संघ के विधान मंडल से क्या सम्बन्ध हो (६) संघ और प्रान्तों में अधिकारों का वितरण (७) संघ और प्रान्तों के बीच में शास्त्रीय सम्बन्ध (८) संघीय अदालत।

इनमें से (५) और (६) नम्बर के विषयों पर जो बात हुई, वह अधूरी रह गयी। नं० (७) पर कोई बहस नहीं हुई। जो बहस होती थी, वह सभापति के प्रश्नों पर होती थी।

मालवीय जी और सर तेज बहादुर सप्रू में इस बात पर मतभेद था कि संक्रान्ति काल में—जब एक सरकार के स्थान में नयी सरकार की स्थापना हो—प्रतिरक्षा का मन्त्री कौन हो, और वह किसके प्रति उत्तरदायी हो। सर तेज की राय थी कि संक्रान्ति काल में जो भारतीय मन्त्री नियुक्त किया जाए, वह सिर्फ वाइसराय के प्रति उत्तरदायी हो, न कि वह उत्तरदायी हो संघीय एसेम्बली के प्रति। मालवीय जी का कहना था कि प्रतिरक्षा के मामले में नए शासन के आरम्भ ही से भारतीय प्रतिरक्षा-मन्त्री के ऊपर संघीय एसेम्बली का पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए। इसके विषय में लार्ड रीडिंग की राय थी कि वह अंग्रेज हो या हिन्दुस्तानी, यह मामला वाइसराय पर छोड़ देना चाहिए। 'प्रतिरक्षा' का मामला संरक्षित (रिजर्वड) विषय है। उसमें यह पक्ष लगाना अनुचित है कि प्रतिरक्षा-मन्त्री हिन्दुस्तानी हो। यही राय उनकी पहले भी थी और इस समय भी थी। दीवान बहादुर मुदालियार ने सर तेज का समर्थन किया और श्री श्रीनिवास शास्त्री भी सर तेज के समर्थन में बोले। मालवीय जी का साथ दिया अकेले महात्मा जी ने। सभापति महोदय की राय यह थी कि सर तेज का प्रस्ताव मंजूर कर लिया जाए।

मालवीय जी ने सर तेज के वक्तव्य की प्रशंसा की, लेकिन कई व्यापक बातों में उन दोनों में मतभेद था। दोनों के भाषणों को मैंने ध्यान से पढ़ा, पर उसमें जो मुख्य बात निकली, यह थी कि रक्षा-मंत्री किसके प्रति उत्तरदायी हो—वाइसराय के प्रति या एसेम्बली के प्रति वह इन दोनों सज्जनों के मतभेद का कारण बन गयी।

महात्मा जी को लन्दन की इस गोलमेज कांफ्रेंस से बहुत निराशा हुई। उन्होंने कहा कि यदि प्रतिरक्षा का भारतीय एसेम्बली का हस्तान्तरण नहीं किया जाता और उस पर अंग्रेजी सरकार का पहले ही-सा नियन्त्रण रहता है तो भारत में उत्तरदायी शासन

स्थापित करने की घोषणा करना व्यर्थ है। 'मेरा यह स्वप्न है और सम्भव है कि जीवन के अन्त तक मैं इस स्वप्न को लिए रहूँ। लोगों को नहीं मालूम कि इस गोलमेज कांफ्रेंस के कारण मेरा सोना हराम हो गया है।' 'मुझसे कहा जाता है कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह मेरी मूर्खता है; लेकिन आपको समझ लेना चाहिए कि इस मूर्खता के शिकार सहस्त्रों-दस सहस्त्रों—मेरे ही समान, स्त्री-पुरुष भी हैं, और मैं उनकी ओर से यह दावा पेश करता हूँ कि प्रतिरक्षा के मामले में किसी तरह का समझौता कांग्रेस को मंजूर नहीं है। यदि सर तेज की बात मान ली गयी, तो कांग्रेस अधिक से अधिक वर्षों तक देश-शासन के काम में भाग नहीं लेगी। महात्मा जी ने वृहत् सभा में यह भी कहा कि नेहरू कमेटी के प्रस्तावों का जो लोग हवाला देते हैं, वे भारी भूल करते हैं। कांग्रेस लँगड़ा-लूला उत्तरदायी शासन नहीं चाहती। उसने लाहौर (१९२९) की कांग्रेस में 'पूर्ण स्वराज्य' की माँग की है और मैं उसी को लेकर इस कांफ्रेंस में शरीक हुआ हूँ। इसलिए नेहरू-कमेटी के प्रस्तावों की दोहाई देना ग़लत है। वह तो गुजरे जमाने की बात हो गयी। हमें यह देखना है कि आजकल भारत में स्थिति क्या है।

———

सत्रहवाँ अध्याय

मालवीय जी का काया-कल्प

मालवीय जी के काया-कल्प की धूम देश भर में मच गयी और बहुत दिनों तक इसकी चर्चा होती रही। जैसा स्वाभाविक है, बहुत सी बातें इस विषय में भ्रांति-मूलक और मनगढ़ी हैं। इसलिए इस पुस्तक में मालवीय जी के काया-कल्प के सम्बन्ध में सच्ची-सच्ची बातों के कहने की आवश्यकता मैंने समझी है। सही बातों का उद्घाटन 'सरस्वती' में प्रकाशित अपनी लेखमाला में पहले-पहल श्री ब्रजमोहन व्यास ने किया था। दूसरी बार मैं इस विषय पर लिख रहा हूँ। आशा है कि अफ़वाहों के खंडन से और सही बातों को जानकर पाठकों के हृदय में 'सत्य' के प्रति आस्था बढ़ेगी।

क्यों अफ़वाहें फैलीं और लोगों की गलत धारणा इसके विषय में बनी? मालवीय जी के-से महापुरुष की आस्था शास्त्र-अनुमोदित काया-कल्प पर हो, यह कुछ कम अचरज की बात न थी। लेकिन मालवीय जी के काया-कल्प की बातें आँधी की तरह आयीं और निकल गयीं। ऐसी दशा में लोगों को सही बातें न जानने के कारण यदि भ्रम हो जाए, तो कोई अचरज की बात न होगी।

मालवीय जी की आयुर्वेद में आस्था थी। उन्होंने स्वयमेव एक अवसर पर कहा था कि उन्होंने कभी भूल से भी डाक्टरी (ऐलोपैथिक) दवाइयों का प्रयोग नहीं किया है; जीवन भर वह आयुर्वेदिक दवाइयों का उपयोग करते रहे हैं। ऐसी दशा में उनका शास्त्र-सम्मत काया-कल्प में विश्वास हो जाना कोई अचम्भे की बात नहीं है।

देश के अनेक कामों में व्यस्त रहने के कारण मालवीय जी दुर्बल हो गये थे। वह न केवल दुर्बल हुए थे, बल्कि वह निर्बल भी हो गये थे। उनकी कमर झुक गयी थी। सन् १९३६ में विश्राम करने के लिए वह मंसूरी पहाड़ पर चले गए। उस समय उनकी आयु ७५ वर्ष की थी। एक लेखक ने उस समय उनकी आयु ७४ वर्ष की लिखी है। यह उसकी भूल है। उनकी आयु ७५ की थी। वह सदैव कहा करते थे कि धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के लिए शरीर का नीरोग रहना आवश्यक है। उन्होंने वर्षों से कोई शारीरिक व्यायाम नहीं किया था, यद्यपि उनका मूल मंत्र था 'धर्मार्थकाममोक्षाणाम् उपारोग्यं मूल-कारणम्।' दूसरों को वह इस मंत्र का उपदेश देते थे, पर खुद कोई व्यायाम नियमित रूप से उन्होंने नहीं किया था। उनका व्यायाम था मालिश कराना। इसी के बल पर वह वर्षों तक चले। पर दूसरों को वह उपदेश देते थे कि उन्हें नित्य-प्रति व्यायाम करना चाहिए। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'। यह कहावत यदि किसी पर चरितार्थ होती है तो श्री मालवीय जी पर। अब रोने से लाभ क्या?

मालवीय जी का विश्वास था कि काया-कल्प से यदि लाभ हुआ तो वह महात्मा जी से भी अनुरोध करेंगे कि वह काया कल्प का प्रयोग करें। यदि इससे न लाभ हुआ तो उन्हीं तक काया-कल्प की करामात रह जाएगी।

मंसूरी में एक पंजाबी नौजवान, श्री आनंद जी से भेंट हुई। एक दिन बातों-बातों में उन्होंने कहा कि एक स्वामी तपसी जी हैं, जिनकी आयु सौ वर्ष से अधिक की है। स्वामी जी का कहना है कि 'योग-साधन' से कुछ ऐसी आयुर्वेदिक दवाइयाँ इन्होंने निकाली हैं, जिनके सेवन से मनुष्य नीरोग हो जाता है और उसकी आयु भी बढ़ जाती है। उनकी इस बात से मालवीय जी बहुत प्रभावित हुए। मालवीय जी यही चाहते थे कि यदि उनका स्वास्थ्य सुधर जाए तो काशी विश्वविद्यालय, हिन्दू समाज और देश की सेवा वह अधिक दिनों तक कर सकेंगे। श्री आनन्द जी के बताए हुए स्वामी तपसी जी को मालवीय जी ने बुला कर बातचीत की। स्वामी जी ने काया-कल्प की सब विधि मालवीय जी को बतायी; और उन्होंने यह दावा दोहराया कि उनकी बतायी हुई विधि के अनुसार काया-कल्प से आदमी अवश्य नीरोग हो जाता है और उसकी आयु भी बढ़ जाती है। स्वामी जी की इन बातों का मालवीय जी पर बहुत प्रभाव पड़ा।

इसके बाद वह काशी गए और वहाँ से लौट कर प्रयाग आए। काशी में पं० सत्यनारायण शास्त्री, जो वहाँ के प्रतिष्ठित वैद्य हैं और मालवीय जी की सदैव चिकित्सा करते थे, ने और दूसरे मित्रों ने मालवीय जी को काया-कल्प करने के संकल्प से विरत करने की बहुत चेष्टा की। किन्तु मालवीय जी अपने संकल्प में दृढ़ रहे। मालवीय जी पर उनके कहने का कुछ प्रभाव न पड़ा।

यह तय पाया कि काया-कल्प की प्रक्रिया प्रयाग में होगी। गंगा जी के तट पर स्थित शिव-कुटी में रायबहादुर लाला रामचरनदास के बाग में काया-कल्प की तैयारी हुई।

स्वामी तपसी जी के आज्ञानुसार, पंजाब से खूब तगड़ी चार काली गौएँ मँगायी गयीं। जिस बँगलिया में काया-कल्प के दिनों में मालवीय जी को रहना था, उसके बरामदे ईंट से चुन दिए गए थे। आने-जाने के लिए केवल एक ही रास्ता था, और उसमें मोटे टाट का पर्दा लटका दिया गया था, ताकि बाहर की रोशनी तनिक भी न जा सके। रोशनी के लिए मालवीय जी के कमरे में एक लाल चिमनी की लालटेन रखी थी।

जब सब प्रबन्ध हो गया तब मालवीय जी, तपसी स्वामी और मालवीय जी के एक पुत्र मोटर में काशी से प्रयाग आए। आते ही उन्होंने अपने इष्टदेव राधाकृष्ण का दर्शन किया और अपनी पत्नी से मिले। इसके उपरान्त, वह शिव कुटी चले गये।

मालवीय जी के साथ देहरादून के पंडित हरिदत्त शास्त्री ने भी काया-कल्प करने का संकल्प किया था। वह भी शिव-कुटी पहुँच गए थे। उसी बाग़ में मालवीय जी की बँगलियाँ के पास एक बँगलिया में उनका भी इन्तजाम कर दिया गया था।

'काया-कल्प' के शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार, मालवीय जी का मुंडन, रेचन, वमन, इत्यादि कराया गया। तपसी स्वामी जी ने स्वयं अपने सिर के बाल मुंडवाए और आज्ञा दी कि जो कोई मालवीय जी के साथ रहे, उसका भी मुंडन होना चाहिए। अतएव मालवीय जी के पुत्र श्रीगौरीकांत मालवीय, का भी मुंडन हुआ।

ख़ैर, चिकित्सा आरंभ हुई और चालीस दिन में से पहले बीस दिनों में तो मालवीय जी को काया-कल्प से लाभ हुआ। एक दिन पं० हृदयनाथ कुंजरू उन्हें देखने गये। उस समय मालवीय जी सीधे होकर टहल रहे थे। यह देखकर कुंजरू साहब बड़े प्रसन्न हुए। इसी तरह एक दिन सर तेज बहादुर सप्रू मालवीय जी से मिलने शिवकुटी पधारे। उन्होंने मालवीय जी को देखकर कहा—'अब तो मैं रमाकांत को बड़े मालवीय जी कहूँगा; आप तो उनसे छोटे लगते हैं।" पं० रमाकांत मालवीय जी के ज्येष्ठ पुत्र थे।

इस काया-कल्प से मालवीय जी का वज़न १० पौंड से अधिक बढ़ गया था; पर शास्त्री जी के वज़न में केवल चार पौंड की वृद्धि हुई थी। २० दिन के बाद मालवीय जी के स्वास्थ्य ने पलटा खाया। मालवीय जी को नींद कम आने लगी और किसी-किसी दिन वह सारी रात सो नहीं सके, सारी रात उन्होंने जगते ही बितायी। तपसी जी ने औषधि की मात्रा घटायी और अंत में औषधि का देना ही बंद कर दिया। फिर भी नींद का न आना जारी रहा। इससे मालवीय जी के स्वास्थ्य पर बहुत असर पड़ा और वह थोड़े निर्बल हो गये। यद्यपि औषधि बंद कर दी गयी थी, लेकिन मालवीय जी को जो भोजन दिया जाता था, उसमें कोई उलट-फेर न किया गया था। चालीस दिन की मियाद पूरी होने पर उन्हें मूंग की दाल और पतली रोटी दी जाने लगी। १५ दिन विश्राम के बाद वह अपने पैतृक गृह में लौट आए और वहाँ से काशी के लिए रवाना हो गए।

———

अट्ठारहवाँ अध्याय

मालवीय जी की पोती का अन्तर्जातीय विवाह

हम ने पिछले अध्याय में कहा था कि मालवीय जी क्रांति के उपासक नहीं बल्कि विकास के पुजारी थे। वह हौले-हौले हिन्दू समाज में सुधार करना चाहते थे, इस नीयत से कि आजकल का हिन्दू अपने पुरातन गौरव को प्राप्त हो और संसार के सामने वह वही काम करे जो पुरातन काल में किसी समय उसने किया था यानी संसार का उपदेश देने वाला बने। इसीलिए एक समय आया जब उन्होंने अपनी पौत्री का अंतर्जातीय विवाह किया, लेकिन इस विवाह के पूर्व की एक कहानी है। हमने पिछले अध्याय में यह कहा था कि मालवीय जी ने सात आदमियों का शिष्टमंडल इंदौर इत्यादि में खोज करने के लिये भेजा था कि क्या मालवा के श्रीगौड़ ब्राह्मण रोटी-बेटी का संबंध अपने उन भाइयों के साथ करने को तैयार हैं, जो मालवा से ५०० वर्ष पहले चले आए थे।

उस शिष्टमंडल के लौटने पर मालवीय जी ने अपने घर पर एक सभा की, जिसमें मालवा से आए हुए श्रीगौड़ ब्राह्मणों ने भाग लिया, यद्यपि उस सभा में अधिकांश वे ही लोग थे, जो प्रयाग के रहने वाले थे। उस सभा में मालवीय जी के सभापतित्व में एक प्रस्ताव पास हुआ था जिस में जिन गौड़ या श्रीगौड़ ब्राह्मणों के धार्मिक आचार-विचार ठीक और धर्मसम्मत हों, उन में रोटी-बेटी का संबंध होना चाहिए।

जो प्रस्ताव इस सभा में स्वीकृत हुआ, उसकी नक़ल यहाँ पर देना उचित है

यतो धर्मस्ततो जयः।

'जाति और धर्म की रक्षा और उन्नति के लिये यह बात शास्त्रसंमत और न्याययुक्त है कि जो मालवीय गौड़ या श्रीगौड़ ब्राह्मण भिन्न-भिन्न प्रांत में बसे हैं और जिनका धर्म संबंधी आचार और व्यवहार समान है, उनमें परस्पर सजातीय संबंध अर्थात् भोजन और विवाह का संबंध किया जाए। यह प्रस्ताव अखिल भारत-वर्षीय श्रीगौड़ मालवीय-सम्मेलन, प्रयाग, में मेरे सभापतित्व में सर्वसम्मति से मि० वैशाख शुक्ल १०, सं० १९९० को स्वीकृत हुआ।'

५ मई, सन् १९३३ }
प्रयाग }

मदनमोहन मालवीय
सम्मेलन-सभापति

इसके बाद मालवीय जी ने प्रयागस्थ मालवीयों का एक जलसा किया और उनसे निवेदन किया कि उन्हें आपस में मिलजुल कर रहना और परस्पर की एकता बढ़ानी चाहिए।

इन्हीं दिनों मालवीय ख़ानदान के किसी व्यक्ति ने लड़की का अंतर्जातीय विवाह कर दिया। उस पर महात्मा जी को उन्होंने दो पत्र लिखे। महात्मा जी ने उनका जो उत्तर दिया, वह नीचे दिया जा रहा है। महात्मा जी के पत्र को देखने से यह पता चलेगा कि जहाँ उस व्यक्ति की प्रशंसा है, वहाँ मालवीय जी की पद्धति का सही विवेचन भी है।

बंगलौर
ज्ये० कृ० ९

"प्रिय—

आप के दोनों पत्र मिल चुके हैं। पूज्य मालवीय जी से बात करने की इच्छा थी इसलिये आप के पत्र का उत्तर तुरंत नहीं भेज सका।···जाति-सुधारण का कार्य बड़ा गंभीर है और मुश्किल है। उसमें धैर्य की बड़ी आवश्यकता है। मालवीय जी को आपके प्रति कोई द्वेष नहीं है। उनके साथ बात करने के बाद मेरा तो निश्चय हो गया है कि आपकी और उनकी कार्यप्रणाली में भेद है। पूज्य मालवीय जी हिन्दू जाति को सुधारना चाहते हैं। परन्तु एक मनुष्य के कुछ नया कार्य करने से सुधारणा नहीं बन सकती, ऐसा उनका विश्वास है। वह अपनी पद्धति के अनुकूल, जो कुछ प्रयत्न हो सकता है, कर रहे हैं। आपको कष्ट देने का उनके दिल में विचार तक भी नहीं आ सकता है।

अब मेरा अभिप्राय यह है—आपने जो कुछ किया, वह योग्य था। हिन्दू जाति में रहते हुए, हिन्दू धर्म पर संपूर्ण प्रेम रखते हुए, सुधारक अपने काम करते जाएँ और वह करते हुए जो कुछ भी कष्ट पड़े, उसको बरदाश्त करें। समाज के व्यवहार के बाहर जाकर जो कार्य करता है, वह समाज का शासन भी बरदाश्त करे और बरदाश्त करते हुए समाज के प्रति उदार भाव रखे। उसी का नाम सत्याग्रह है। समाज के कानूनों का अनादर करना और पीछे उस अनादर का शासन भोगने से दुःख मानना वह सुधारक का कार्य नहीं है।"

अंत में मालवीय जी ने अपनी पौत्री, कुमारी मालती, का अंतर्जातीय विवाह किया।

इससे यह बात स्पष्ट है कि वह हिन्दू समाज को अपने साथ लेकर चलना चाहते थे। वह क्रांति में विश्वास नहीं करते थे। विकास में उनकी आस्था थी। क्या सामाजिक सुधार में या राजनीतिक सुधार में आजीवन उनका यही तरीक़ा रहा। इसी से बहुत से लोग उन्हें नरम या 'माडरेट' कहते थे; लेकिन मालवीय जी के विषय में लोगों को यह नहीं मालूम कि १८९२ में उनके ऊपर भी अजमेर षड्यंत्र केश का वारंट निकला था। यह बात उन्होंने स्वयमेव काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थी से कही थी, जो स्वयमेव क्रांतिकारी था। इस बात को सुनने के बाद वह छात्र मालवीय जी के चरणों में गिर पड़ा और नतमस्तक हो गया उसने मालवीय जी के प्रति अपनी भक्ति और श्रद्धा अर्पित की। मालवीय जी में मनुष्यता कूट-कूट कर भरी थी, लेकिन वह गाँधी जी की तरह क्रांति के पुजारी नहीं थे।

———

उन्नीसवाँ अध्याय

मालवीय जी की छोटी बहन, पत्नी और ज्येष्ठ पुत्र का निधन

मालवीय जी के पाँच भाई थे और दो बहनें। उनमें छोटी बहन-सुभद्रा जी को, जिन्हें लोग बिट्टी बुआ कहा करते थे, बचपन ही से वैधव्य का दुःख भोगना पड़ा, क्योंकि उनके पति की मृत्यु सन् १८८९ में हुई थी। उनकी मृत्यु का हाल श्री पद्मकांत मालवीय ने इन शब्दों में किया है—'बचपन ही से उन्हें वैधव्य का दुःख भोगना पड़ा था। वह सदैव हम लोगों के परिवार ही में रहीं। उनका जीवन अत्यंत धार्मिक था, सुबह गंगा स्नान को जाना, आकर ठाकुर जी की देखभाल, पूजा-पाठ और गृहस्थी का प्रबंध—यही उनका दैनिक जीवन था। मालवीय जी को अपनी इस छोटी बहन पर अति अधिक स्नेह था। वह कहा करते थे कि 'जब तक मेरी यह साध्वी बहन जीवित है, मैं अपने जीवन के सम्बन्ध में निश्चिन्त हूँ। मुझे काल भी नहीं छू सकता'।

'जैसा बिट्टी बुआ का धार्मिक जीवन था, वैसा ही उनका अन्त भी हुआ। ठाकुर जी की पूजा-शृंगार कर, उन्हें भोग लगा कर और उसे प्रसाद के रूप में लेकर, वह चौकी पर जाकर लेटी ही थीं कि उन्हें पेट में कुछ दर्द मालूम हुआ। वह उठीं, शौच गयीं और नियमानुसार स्नान कर ठाकुर जी का चरणामृत गंगा-जल और तुलसी का पान कर वह चौकी पर फिर से जा कर लेट गयीं। बस, वह फिर नहीं उठीं। कब उनके प्राण-पखेरू उड़ गए, किसी को नहीं मालूम होने पाया। मालवीय जी के छोटे भाई, पंडित श्यामसुन्दर जी की पत्नी, जो उन्हें (बिट्टी बुआ को) शौच जाते देख कर कारण जानने के लिए नीचे आयीं तो उन्होंने उन्हें मृत पाया। परिवार वाले इकट्ठे हो ही रहे थे कि उन्होंने देखा कि मालवीय जी के ज्येष्ठ पुत्र, पंडित रमाकान्त मालवीय, जो उन दिनों मालवीय जी के साथ काशी ही में रहते थे, आ रहे हैं। सबसे अधिक आश्चर्य तो उस समय हुआ, जब उन्होंने मोटर से उतरते ही यह पूछा कि 'बुआ की तबीयत कैसी है?' उन्हें जब उनकी मृत्यु की सूचना दी गयी, तब वह स्तब्ध रह गए। उन्होंने कहा 'आज सुबह ही से बाबू जी कुछ अन्यमनस्क थे। वह कई दिनों से बीमार हैं। आज उन्होंने बिलकुल ही भोजन नहीं किया। ११ बजे के क़रीब उन्होंने बुला कर मुझे ये रुपये दिए कि मोटर से तुम तुरन्त प्रयाग जाओ। आज हम भाई-बहनों में कोई न कोई खंडित होने वाला है। प्रयाग जा कर मेरी बहन का समाचार लाओ और ये रुपये उन्हें दे दो।' हम सब यह सुन कर चकित और स्तब्ध रह गए। यह दुर्घटना घटी सन् १९३४ में।

× × ×

मालवीय जी की पत्नी, कुंदनदेवी, के विषय में कुछ कहना बेकार है, क्योंकि मालवीय जी तक उनके स्वभाव से पूरी तरह परिचित न थे, तब किसी अजान आदमी का उनके विषय में कुछ कहना नितान्त धृष्टता होगी। उनके अंत की कारुणिक कथा श्री ब्रजमोहन व्यास ने 'सरस्वती' में लिखी है। उसे हम ज्यों का त्यों उद्धृत कर देना चाहते हैं, सिर्फ उन श्लोकों आदि को छोड़ कर जिनके कारण महामना के श्री व्यास द्वारा लिखित संस्मरण

और चटपटे हो जाते हैं। इसी से, हमें आशा है, उनके व्यक्तित्व पर काफी प्रकाश पड़ेगा। उनमें गृहस्थी को ठीक तौर से संचालन का गुण मालूम था। पर उनमें मधुरता की कोई कमी किसी को नहीं दिखायी दी।

सन् १९४२ में मालवीय जी की पत्नी का देहान्त हुआ। कैसे यह हुआ और मालवीय जी पर उसका क्या प्रभाव पड़ा, इस कारुणिक कथा को श्री ब्रजमोहन व्यास ने 'सरस्वती' में प्रकाशित किया है—

'सन् १९४२ की बात है। उन दिनों मालवीय जी काशी विश्वविद्यालय में रहते थे, परन्तु बीच-बीच में प्रयाग आते-जाते रहते थे। उनकी पत्नी, सौभाग्यवती कुन्दन देवी, प्रयाग ही में रहती थीं। उन दिनों वह अस्वस्थ रहा करती थीं। हमारी छोटी बहन, सौभाग्यवती विद्या (मालवीय जी की एक पुत्र-बधू), उनकी सेवा में तत्पर रहा करती थी। माघ का महीना था। विद्या जब-तब गंगा-स्नान करने के लिये चली जाती थीं; पर (उसे) सास का ख्याल लगा रहता था। (वह) जल्दी ही लौट आती थीं। एक दिन कुन्दनदेवी ने उससे पूछा—'बहू! मकुन्द (मालवीय जी के तीसरे पुत्र) कहत रहे कि तुम कल्प-वास किया चाहती हो। सोचा कि तुम्हीं से क्यों न पूछ लेई। तुम जाय वाली हो तो बुढ़ऊ (मालवीय जी) तो अबहिन जियत हैं। हम बनारस चली जायी।' विद्या ने कहा—'बहुआ! हम न जावैं। तुम्हीं हमारा कल्पवास हो'। कुन्दन देवी को इससे बड़ा सन्तोष हुआ और उनकी आँखों में वात्सल्य के आँसू आ गये।

'एक दिन विद्या गंगा-स्नान करने गयी थीं। कुन्दन देवी आग ताप रही थीं। उन्हें पता न चलने पाया और उनके आँचर में आग लग गयी। अशक्त तो (वह) थीं ही। (उनसे) कुछ करते-धरते न बन पड़ा। (वह) बहुत चिल्लायीं पर इसके पेश्तर कोई आवै, (वह) बहुत जल गयी थीं। राजा बच्चा (मालवीय जी का एक पौत्र) उस समय लगभग सात-आठ वर्ष का था। दौड़ा-दौड़ा पुराने भारती-भवन के चबूतरे पर गया। उसी समय विद्या गंगा-स्नान से लौट कर आ रही थीं। देख कर रोते हुए चिल्ला कर उसने कहा—'बहुआ बहुत जल गयी हैं।' विद्या भागी-भागी घर आयीं। उन्होंने देखा, बहुआ काँपी जा रही हैं और बराबर 'राजा राम, सीता राम' कह रही हैं। मालवीय जी को तुरंत तार दिया गया। टेलीफोन किया गया। खबर पाते ही मालवीय जी आ गए। यह कहना निरर्थक है कि (उनका) अच्छा से अच्छा उपचार होने लगा। परन्तु यहां आने पर उन (मालवीय जी) की जाँघ में एक भीषण 'कारबंकिल' (उलटा फोड़ा) निकल आया। वह चलने-फिरने से लाचार हो गए। कुन्दन देवी ऊपर के कमरे में पड़ी थीं। मालवीय जी के पुत्र उन्हें कुर्सी पर बैठा कर अटारी पर उठा ले जाते थे। इस प्रकार वह घंटे, डेढ़ घंटे, प्रतिदिन अपनी पत्नी के पास बैठ कर उनका सुख-दुःख पूछते थे।

सेवा करते समय एक दिन कुन्दन देवी से विद्या ने कहा—'बहुआ। तुम ने तो अपने जीवन में कभी कोई पाप की बात नहीं की। फिर तुम्हें क्यों इतना कष्ट मिल रहा है? बहुआ ने धीरे-धीरे कहा—'बहू! एक ही जन्म का पाप नहीं देखा जाता। मालूम नहीं किस जन्म में हमसे पाप बन पड़ा है, उसका भोगमान भोग रही हूँ। तुम्हें महाभारत की

एक कथा सुनावें। जब धृतराष्ट्र के सौ पुत्र युद्ध में मारे गए तो उन्होंने व्यासदेव से पूछा, भगवन्! हमने कौन-सा पाप किया कि हमारे सब पुत्र मारे गए। हमें अपने २१ जन्म की बातें तो याद हैं। उनमें हमने कोई पाप कर्म नहीं किया। फिर क्यों हमें यह दारुण दुःख भोगना पड़ रहा है। व्यासदेव बोले—'राजन्! यह पाप उससे भी पहले का है। एक बार तुम बहुत बीमार पड़े। वैद्यों ने कहा कि यदि प्रतिदिन आप एक हंस के बच्चे का शोरबा पिएँ तो थोड़े दिनों में आप अच्छे हो सकते हैं। इस प्रकार हंस के सौ बच्चों का शोरबा पी कर आप अच्छे हुए हैं। उसी का यह फल है।' इतना कहने के बाद कुंदन देवी चुप हो गयीं और सास-बहू दोनों की आँखों से आँसू झर-झर गिरने लगे।

'कुंदन देवी जिस दिन जलीं, उस दिन से प्रतिदिन उनके पास एक डलिया गुलाब का फूल उनकी रसूलाबाद वाली बगिया से आता था। उसमें सर्वप्रथम थोड़े से फूल निकाल कर परिवार के इष्टदेव राधा-कृष्ण पर चढ़ाने के लिये वह भेज देती थीं। फिर बचे हुए फूलों में से एक-एक, दो-दो फूल बच्चों और बहुओं को देती थीं। मरने के तीन-चार दिन पहले जब मालवीय जी कुरसी पर उनके पास आए तो कुंदन देवी ने उनसे अपना पैर चारपाई पर रखने के लिए इशारा किया। यद्यपि फोड़े के कारण मालवीय जी के पैरों में दर्द था, फिर भी अपनी पत्नी का मन रखने के लिये उन्होंने अपने पैरों को चारपाई पर रख दिया। कुंदन देवी लेटे-लेटे फूलों की डलिया में हाथ डाल कर खुड़ियारने लगीं और उसमें से दो श्वेत गुलाब के फूल चुन कर मालवीय जी के पैरों पर रख दिए और अपने हाथ को अपनी आँखों में लगा लिया।

"कुंदन देवी की आँखों में आँसू आ गए पर उन्होंने आँखों को बन्द नहीं किया कि कहीं आँसू ढुलक न पड़े। फिर बहुत धीरे-धीरे बोलीं—'तुम हमें पहले दुइ दफ़े जाय के लिये मनाकर दिह्यो रहा। हम तुमरी बात मान गये रहे। अब हमें आज्ञा दे देव तो चली जायी।" मालवीय जी थोड़ी देर चुप रहे फिर अँगोछे से आँख पोंछ कर (वह) बोले—'अब तुम्हारा समय आ गया है। अब तुम जाव।'

'दो दफ़ा मना करने' का रहस्य क्या था? १९०१ में प्रयाग में प्लेग का भयंकर प्रकोप हुआ। लगभग तीन-चार सौ आदमी रोज मरते थे। गिलटी निकली, फिर बचना असंभव हो जाता था। नगर के अधिकांश मकानों में ताले पड़ गए। जिसे जहाँ जगह मिली, (वहीं वह) भाग निकला। मालवीय जी का परिवार सिविल लाइन के एक बँगले में चला गया। मालवीय जी ने पीड़ितों के दवा-दारू और मृतों के जलवाने का यथाशक्ति प्रबन्ध किया पर इतने भयंकर प्राकृतिक प्रकोप में सब योजनाएँ लुंज हो जाती हैं। ठेलों में भर-भर कर लाशें यमुना में फेंक दी जाती थीं। (मैंने अपनी आँखों से बलुवा घाट के किनारे यमुना में दो-तीन सौ लाशें उतराते और मल्लाहों को नित्य के गंगा-स्नानार्थियों को नाव पर बिठाकर लाशों को डाँड़ से हटा कर स्नान के लिये ले जाते देखा है।) उन्हीं दिनों सिविल लाइन वाले बँगले में कुंदन देवी को तीव्र ज्वर हो आया और दोनों जाँघों में प्लेग की गिलटियाँ निकल आयीं। इस आपत्ति के सहसा आ पड़ने पर मालवीय जी उद्विग्न तो हो गए पर उन्होंने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। कुंदन देवी की भरपूर चिकित्सा होती रही। एक दिन जब उनकी हालत बहुत बिगड़ी तो मालवीय जी ने रुआसे होकर

उनसे कहा 'तुम चली जावगी तो छोटे-छोटे-बच्चों को कौन सम्हालेगा ? हमें अभी बहुत काम करना है। उसे हम किसके सहारे करेंगे ? तुम न जाव।' कुंदन देवी आँख बन्द किए केवल इतना धीरे से बोलीं, 'तुम चिन्ता न करो। हम न जावें।' वह धीरे-धीरे अच्छी हो गयीं।

"दूसरी घटना १९२० की है। कुंदन देवी इतनी बीमार पड़ी कि उनके, बचने की कोई आशा न थी। इस बार भी मालवीय जी ने उनसे न जाने के लिये कहा और वह बच गयीं। इन दोनों बार मालवीय जी और कुंदन देवी के कथोपकथन में क्या दैवी रहस्य निहित था, यह तो भगवान ही जाने।

"अबकी बार सन् ४२ में सचमुच काल के अटल नियम की नोटिस कुंदन देवी पर तामील हो गयी और वह मालवीय जी के चरणों पर श्वेत पुष्प से श्रद्धांजलि अर्पण करने के बाद, उनकी आज्ञा लेकर, चार दिन के भीतर सर्वदा के लिये मौन हो गयीं। मालवीय जी उनके मृत शरीर को खोये-खोये से देखते खड़े रह गए।

"उनका ध्यान तब टूटा जब गुरदेई बुआ--मोहल्ले की एक प्रौढ़ा स्त्री, जो मालवीय जी के परिवार के प्राणी के समान थीं, बोलीं—'इनके माँग में सेंदुर भर के जैसे पहले बिदा कराय के लाये थे, वैसे ही आज माँग में सेंदुर भर के इन्हें बिदा करो।' हमारी बहन, सौभाग्यवती विद्या ने कुंदन देवी के बीमारी के वस्त्रों को उतार कर उन्हें लाल चुंदरी पहनायी। विद्या मुझसे कहती थीं—'भैया ! यद्यपि मरने के समय सास की आयु ७२ वर्ष की थी, परन्तु वे सुन्दर गोरी नारी तो थीं ही, चुंदरी पहनाते समय (वह) १८–२० वर्ष की युवती मालूम होती थीं। मालवीय जी जब कुंदन देवी की माँग में सेंदुर भरने लगे तो उनकी आँख से दो बूंद आँसू देवी के हँसते-से चेहरे पर टपक पड़े। यही मानो पत्नी की चिता पर उनकी जलांजलि थी।'

"बहुत दिनों की बात है। कुंदन देवी नियम से प्रति दिन गंगा-स्नान करने जाती थीं। उस दिन उनका एक पुत्र साथ में था। कुंदन देवी ठीक गंगा-यमुना के संगम पर स्नान कर रही थीं। गंगा के प्रवाह से उनका पैर फिसल गया और वह यमुना में गले तक पानी में आ गयीं। निकट में एक मल्लाह ने उन्हें डूबने से बचाने के लिए उनका हाथ पकड़ कर गंगा की ओर खींचना चाहा, पर कुंदन देवी ने उसका हाथ झटक दिया और अपने प्रयत्न से छिछले जल में चली आयीं। आकर अपने पुत्र से कहने लगीं—" हमें डूबने से बचाने के लिए मल्लाह ने हमारा हाथ पकड़ लिया, पर हमने उसे झटक दिया। सिवाय तुम्हारे पिता के, और किसी को हमारा शरीर छूने का अधिकार नहीं है।

जब कुंदन देवी की अर्थी बाहर निकली तब मालवीय जी के हृदय की व्यथा ने उनके फोड़े की पीड़ा को दाब लिया। उन्होंने अर्थी में कन्धा लगाया और फिर लँगड़ाते-लँगड़ाते गली की मोड़ तक पहुँचा कर लौट आए। कुंदनदेवी की अर्थी जब दृष्टि से ओझल हो गयी तो वह लौट आए और बाहर चबूतरे पर बैठ गए। अपने घर को उजड़ा हुआ देखकर वह बालकों की तरह रोने लगे।"

× × ×

मालवीय जी के ज्येष्ठ पुत्र (श्री रमाकान्त मालवीय, बी. ए., एल. एल. बी.) का निधन सन् १९४३ में हुआ। इसके विषय में जो वर्णन श्री ब्रजमोहन व्यास ने 'सरस्वती' में दिया है, उसको संक्षेप में हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं :—

"उनका घर का नाम 'बंगाली' था। मालवीय जी को अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री रमाकान्त का विछोह देखना बदा था। विधि के इस दारुण विधान को कौन टाल सकता था ? अपनी माता के मरने पर उनका दाह-कर्म श्री रमाकान्त जी ही ने किया था, परन्तु उनकी बरसी करने की नौबत भी न आयी कि वह बीमार पड़ गये। मालवीय जी उस समय विश्वविद्यालय में रहते थे। पुत्र अपनी आँखों के सामने रहे और उसकी अच्छी से अच्छी दवा की जा सके, इस विचार से श्री रमाकान्त को मालवीय जी ने काशी बुला लिया। वह काशी विश्वविद्यालय के निकट बाबू शिवप्रसाद गुप्त की कोठी में ठहरे। वहाँ सब प्रकार की सुविधा थी, परन्तु उनकी बीमारी बढ़ती ही गयी। एक दिन उनकी हालत बहुत बिगड़ गयी। ज्वर बहुत तेज चढ़ा। मालवीय जी को इसकी सूचना दी गयी। ख़बर देने वालों ने मालवीय जी से कहा—'महाराज ! रमाकान्त जी इस समय घोर कष्ट में हैं। अब कुछ नहीं रह गया। केवल प्राण नहीं निकल रहे हैं। बिना आपकी आज्ञा को पाए हुए उनके प्राण नहीं निकलेंगे। आप उनको इस कष्ट से उद्धार कर दीजिए'। मालवीय जी स्वयं मोटर पर आए और कमर झुकाए, लट्ठी टेकते हुए वह रमाकान्त जी के सामने जाकर खड़े हुए। कुछ क्षण उन्हें देखते रहे, फिर आँखों में आँसू भरकर बोले—'बेटा, तुम्हें बड़ा कष्ट है, अब तुम जाओ।' फरवरी सन् १९४३ के दिन, मालवीय जी की आज्ञा पाकर रमाकान्त जी मालवीय सदा के लिए चल बसे।

"इसके बाद मालवीय जी को मोटर पर बिठाकर लोग उन्हें विश्वविद्यालय के भवन में ले गये। मैं उनके साथ मोटर में, बैठ गया था। रास्ते में वह मुझसे एक शब्द नहीं बोले और न मैं कुछ बोला। बोलने को था ही क्या ?

"मोटर से उतर कर मालवीय जी जैसे-तैसे अपने कमरे में चले गये। किसी से कुछ नहीं बोले और कमरे को भीतर से बन्द कर लिया।"

मालवीय जी को अन्तिम समय बहुत बड़ा दुख झेलना पड़ा। सन् १९४२ में मालवीय जी को अपनी जीवन-संगिनी पत्नी का बिछोह हुआ और सन् १९४३ में ज्येष्ठ पुत्र के निधन का दारुण दुःख हुआ !

———

बीसवाँ अध्याय

मालवीय जी का स्वर्गवास

इन भीषण दुर्घटनाओं—जीवन-संगिनी पत्नी का बिछोह और ज्येष्ठ पुत्र, श्री रमाकांत मालवीय, का वियोग—के कारण मालवीय जी पर जो बीती, उसके बावजूद वह अपने कर्तव्य से कभी विरत न हुए। शरीर को घसीट कर वह काम करते ही रहे। जिस समय नोआखाली के अमानुषिक अत्याचारों का उन्हें समाचार मिला, उस समय उन्होंने एक लंबा वक्तव्य तैयार किया। इसमें उन्हें कई दिन बड़ी मेहनत करनी पड़ी। इसके तीन-चार दिन बाद वह संध्या के समय काशी के पास—आठ मील दूर—शिवपुर के गोशाला के उत्सव में भाग लेने के लिए गये। उत्सव से रात को वह देर में लौटे। कुछ लोगों का कहना है कि उन्हें ठंड लग गयी थी।

दो-एक दिन तक किसी ने इस ठंड़ का कुछ ख्याल न किया, पर मालवीय जी की दशा बिगड़ती गयी और १२ नवम्बर, सन् १९४६ को, ८६ वर्ष की आयु में, मालवीय जी सदा के लिए चल बसे।

कुछ लोगों का कहना है कि श्री जवाहरलाल को प्रधान मंत्री होने की बधाई भी उन्होंने दी थी। भारत का एक महापुरुष सदा के लिए इस असार-संसार को छोड़कर चला गया।

मालवीय जी के अन्तिम दर्शन करने के लिए भीड़ टूट पड़ी। बाहर बरामदे में, जहाँ उनका शव रखा था, वहाँ कोने-कोने में लोग उनके दर्शन के अमृत को पीते नहीं अघाते थे।

मालवीय जी की अर्थी का जलूस श्मशान घाट तक गया था। किसी अर्थी के साथ इतना बड़ा जलूस काशी ने कभी न देखा होगा।

मालवीय जी के अन्तिम समय की एक घटना का उल्लेख कर देना यहाँ पर उचित है। सेठ जुगुल किशोर बिड़ला उन्हें देखने गये। उनसे मालवीय जी ने कहा—"मरने का कोई भय नहीं है परंतु मंदिर न बनने की चिंता मुझे सता रही है। इस पर बिड़ला जी तुरंत बोल उठे—"इसका पूरा भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ। अब आप इसकी चिंता न करें।" बिड़ला जी के इस आश्वासन से मालवीय जी को बड़ी शांति मिली।

देशबन्धु श्री एण्ड्रूज ने मालवीय जी का उनके जीवन काल में जो चित्र खींचा था, उसे हम यहाँ देना चाहते हैं। सब लोगों ने, मालवीय जी के अतिरिक्त, किसी दूसरे को न इतना सौम्य और न इतना आकर्षक पाया। "कोई भी व्यक्ति, यहाँ तक कि खुद महात्मा गाँधी भी, असंख्य हिन्दू जनता को इतने प्रिय नहीं हैं, जितने मालवीय जी हैं। उन्होंने देश की बड़ी सेवा की है, जिसके कारण उन भारतीय नेताओं के बीच में, जो इस समय जीवित हैं, हम उन्हें बहुत ऊँचे आसन पर बैठा देते हैं।

उनकी धर्मनिष्ठा, बच्चों के विश्वास के समान, सरल है; और इस सबके पीछे उनका व्यक्तित्व इतना आकर्षक है कि उसने लाखों आदमियों के हृदयों को मोह लिया है। उन लाखों आदमियों में उन व्यक्तियों की भी गणना होनी चाहिए, जिन्होंने उनको कभी नहीं देखा है, पर केवल उनके (मालवीय जी के) मातृभूमि और हिन्दू-धर्म के प्रति महान् उत्कर्ष द्वारा जो उन्हें जानते हैं।

इस महान् पुरुष के जीवन की समाप्ति पर कौन न रो पड़ेगा? हिन्दू, हिन्दुस्तान और हिन्दी की सेवा उन्होंने आजन्म की। हिन्दी के विषय में महात्मा गाँधी और उनके विचारों में बहुत समानता थी।

महामना तो हमारे बीच से उठ गये। अब तो "आलम" कवि के साथ हम यही दोहराते हैं कि 'नैनन में जो सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करें'।

इक्कीसवाँ अध्याय

मालवीय जी और स्त्री-शिक्षा

मालवीय जी का विश्वास परदा में नहीं था। वह चाहते थे कि स्त्रियां बिना पर्दा के चलें और बाहर निकलें। समाज इसको मानने के लिए तैयार यद्यपि नहीं था, लेकिन महात्मा जी के आन्दोलन के बाद स्त्रियां घर के बाहर निकल पड़ीं और पुरुषों का हाथ बंटाने लगीं। इस समय के पहले जहाँ तक शहरों का सम्बन्ध है, वहाँ तक पर्दा का रूप भयंकर था। देहातों में बहुओं को छोड़कर अधेड़ स्त्रियाँ तक पर्दा का पालन नहीं करती थीं।

मालवीय जी सदा से पर्दा के विरोधी रहे। उनकी राय में यह प्रथा शास्त्रसम्मत और विधि विहित नहीं थी। इसलिए इसके विपरीत वह थे। वह तेजस्वी, पर सुशील माताएँ चाहते थे न कि नजाकत और शौकीनी से दबी हुई रमणियाँ। स्वर्गीय मुन्शी ईश्वरशरण लिखते हैं—'वर्षों पहले की बात है जब इलाहाबाद की कायस्थ पाठशाला का उपाधि-वितरणोत्सव था। मैं और वह दोनों एक साथ गए थे। इलाहाबाद हाईकोर्ट के कोई अंग्रेज जज सभापति थे। उनके साथ उनकी कुमारी कन्या भी आयी थी। वह स्वास्थ्य और शक्ति की साक्षात् मूर्ति मालूम पड़ती थी। सभा विसर्जन होने पर मालवीय जी मेरी ओर घूम कर बोले—'तुमने कुछ देखा?' मैंने कहा—'मैं भी इसी सम्बन्ध में सोच रहा था।' वह बोले—'न जाने किस दिन हमारे देश में ऐसी लड़कियाँ होंगी।'

इसी तरह एक दूसरी घटना का भी उल्लेख मुन्शी ईश्वरशरण ने किया है। एक बार माघ मेले के अवसर पर मालवीय जी और मुन्शी ईश्वरशरण गंगा-स्नान करने गये थे बाँध पर वे पंदल चल रहे थे भीड़ के कारण मुन्शी ईश्वरशरण कुछ पीछे पड़ गए थे। मालवीय जी को थोड़ी ही दूर पर एक अतीव सुन्दरी लम्बी, छरहरी, पंजाबी लड़की, आँखें नीची किए हुए, विष्णुसहस्रनाम का कंठस्थ पाठ करते हुए मंदगति से चली जा रही थी। जैसे ही उस लड़की के पाठ की मधुर ध्वनि मालवीय जी के कानों में पड़ी, वैसे ही मालवीय जी ने उसकी ओर देखा और तुरंत बोले—'ईश्वरशरण' जल्दी आओ। देखो उस लड़की को। कब हमारी बहुएँ और लड़कियाँ ऐसी होंगी।' मालवीय जी की भाषा में उस लड़की का सौन्दर्य, उसकी शालीनता, उसकी नीची निगाहें, उसका स्वास्थ्य, उसकी मधुर कंठ-ध्वनि से विष्णुसहस्रनाम का पाठ—ये सभी स्त्री-शिक्षा के आवश्यक अंग थे। एकदम वह बोल उठे :—

'यथा जन्मान्तराभ्यासात् कण्ठे कस्यापि रक्तता।
तथैव पाठसौन्दर्यं नैकजन्मविनिर्मितम्॥' —राजशेखर

(जैसे बहुत जन्मों के बाद किसी का गला सुरीला होता है, उसी तरह काव्य-पाठ का सौन्दर्य भी बहुत से जन्मों के अभ्यास से होता है।)

सन् १९३५ की बात का जिक्र करते हुए श्री ब्रजमोहन व्यास ने मालवीय जी के गीता-प्रवचन के अवसर पर उनके एक भाषण का उल्लेख, बानगी की तरह किया है—'इस

विद्यालय में केवल विद्या ही पढ़ना नहीं है, इसी के साथ-साथ चरित्र बनाना है। ज्ञान और चरित्र दोनों का मेल कर देने से संसार में मान होगा तथा गौरव प्राप्त होगा।' दूसरे अवसर पर उन्होंने कहा—'विश्वविद्यालय में निवास करने का पहला कर्तव्य यह है कि व्यायाम करके शरीर बनावे। पहले स्वास्थ्य सुधारे, फिर विद्या पढ़े। स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन करे तो जीवन का लाभ (हम) उठा सकते हैं। नित्य सबेरे-शाम नियम से व्यायाम करे। शाम को खेले। मैदान में विचरे। जल्दी भोजन करे और नियम से नित्य अध्ययन करे। धार्मिक उत्सवों, एकादशी-कथा, गीता-प्रवचन आदि में उपस्थित रहे और विद्वानों का उपदेश ले। उनका अनुभव ग्रहण करे और आशीर्वाद ले। अपनी रक्षा आप करे। समय की पाबंदी रखे। व्यर्थ समय नष्ट न करे। माता पूज्य है। हम माता से शिक्षा लें और उनके उपदेश सुनें।'

मालवीय जी ने ऐसे बहुत से उपदेश छात्रों और छात्राओं को दिए थे।

एक स्थान पर वह स्वयमेव लिखते हैं—'शास्त्र बतलाता है कि धर्मार्थ काममोक्षाणां आरोग्यं मूलकारणम् अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के साधन का मूल कारण आरोग्य है। आरोग्य—नीरोगता, तंदुरुस्ती के बिना इनमें से एक का भी साधन नहीं हो सकता। प्रत्येक स्त्री और पुरुष को उचित है कि किसी न किसी प्रकार का व्यायाम नित्य करे जिसमें धर्म के साधन, अर्थ के कमाने, सुख के भोगने और अंत में परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उसकी काया प्रबल और मन निर्मल बना रहे।

दूध पियो, कसरत करो, नित्य जपो हरि नाम।
हिम्मत से कारज करो पूरेंगे सब काम॥

"समस्त हिन्दू सन्तान के लिए शास्त्र के अनुसार मैंने संक्षेप में हिन्दू धर्म का कुछ उपदेश लिख दिया है। जो प्राणी श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इस उपदेश को बरतेगा, वह इस लोक में सुख और मान पावेगा और परलोक में परम पद को पहुँचेगा।'

मालवीय जी की राय में माता पूज्य है। इसीलिए मालवीय जी ने जब बी० ए० पास किया, तब अपने चाचा से नौकरी के लिये इन्कार करने पर माता के कहने से नौकरी कर ली। मालवीय जी स्वयमेव लिखते हैं 'माता की आँखें अब तक मेरी आँखों में धँसी हुई हैं।' इसीलिए मालवीय जी को पुरानी बात याद कर के 'माता के पूजनीया' होने की बात याद आयी। माता वास्तव में किसी बालक या बालिका के लिये पूजनीया है। और उसका उपदेश जो बालक या बालिका न माने, या मानने से आनाकानी करे, उसका-सा दुर्भाग्यशाली शायद ही कोई होगा।

एक समय किसी अधिवेशन में 'हिन्दू यूनिवर्सिटी' जिसे हम काशी विश्वविद्यालय कहते हैं, के गर्ल्स कालेज में (छात्राओं का विद्यालय) प्रधानाचार्या ने अपने भाषण में कहा था—'मालवीय जी छात्रों को पुत्रवत् और छात्राओं को अपनी पुत्री के समान मानते थे और उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और चरित्र-संगठन पर पढ़ाई से अधिक जोर देते थे। वह कहते थे—'वही तो स्त्री-शिक्षा का पावन स्रोत है। स्रोत कलुषित होने से शिक्षा विकृत हो कर हानि पहुँचाती है। छात्राओं के शिक्षण और चरित्र-संगठन का उत्तरदायित्व

वह अध्यापकों पर रखते थे, और उन्हें बहुत ठोंक-बजा कर चुनते थे।' थोड़े में यह कहना काफी होगा कि महामना जी एक धर्मनिष्ठ, सदा जागरूक शिक्षाशास्त्री थे, जो स्त्रियों और बालिकाओं का सर्वांगीण अभ्युदय चाहते थे और उसके लिये अथक परिश्रम और प्रयत्न करते थे।'

सन् १९०४ में मालवीय जी ने स्वर्गीय श्री बालकृष्ण भट्ट और स्वर्गीय श्री पुरुषोत्तमदास टन्डन के सहयोग से प्रयाग में गौरी पाठशाला की स्थापना की जो आजकल उच्चतर माध्यमिक कालेज हो गया है और जिसमें लगभग १,००० लड़कियाँ पढ़ती हैं।

मालवीय जी के स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी विचार दकियानूसी नहीं थे। उनके विचार बहुत उदार थे। वह बालिकाओं की वही शिक्षा देने के पक्ष में थे जो बालकों को दी जाती है। मालवीय जी को जो आटोग्राफ पर हस्ताक्षर करने के लिये कहता था, आटोग्राफ बुक में (वह) यह लिख कर हस्ताक्षर करते थे —

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

(सत्य से, ब्रह्मचर्य से, व्यायाम से, विद्या से, देशभक्ति से, आत्मत्याग से सदा सम्मानित हो।)

बालिकाओं की 'आटोग्राफ बुक' में वह लिखते थे —

जो पै पुत्री होय तो सीता सती समान।
अथवा सावित्री सरिस रूप-शील गुन-खान॥

ये दोनों पद मालवीय जी ही के बनाए हुए हैं। इसी से स्पष्ट है कि वह बालिकाओं के चरित्र-निर्माण पर कितना जोर देते थे।

———

बाईसवाँ अध्याय

मालवीय जी और उनके नौकर

नौकरों के विषय में मालवीय जी के व्यवहार का स्वर्गीय श्री रामनरेश त्रिपाठी के लेख से उद्धरण देना यहाँ उचित है, क्योंकि उन्होंने मालवीय जी का अपने नौकरों के साथ व्यवहार का जो विशद वर्णन किया है, उससे हमें कहीं अधिक बोध होता है कि मालवीय जी का व्यवहार अपने नौकरों के प्रति क्या था :—

एक दिन की बात है। मालवीय जी दोपहर को विश्राम करके उठे थे और दूध की प्रतीक्षा में बैठे थे। मूड़ी (नौकर) सो रहा था। मैंने चाहा कि उसे जगा दूँ और वह दूध ले आए। पर महाराज* (मालवीय जी) ने रोक दिया और कहा—"नींद में है, विश्राम ले रहा है, सोने दीजिए; थोड़ी देर बाद दूध ले लूंगा।"

नौकरों के प्रति महाराज की यह सहृदयता नयी नहीं थी। पर मुझे शंका हुई कि नौकरों के प्रति महाराज की सहृदयता, सम्भव है, सामयिक हो। वृद्धावस्था में एक तो यों ही मनुष्य में दूसरों के प्रति सहानुभूति का भाव बढ़ जाता है, दूसरे यदि वृद्ध आदमी नौकर को प्रसन्न न रखे, तो उसे दिन भर नाना कष्ट भोगने पड़ें। इससे लाचार होकर उन पर दयालुता का भाव रखना ही पड़ता है। मैंने पूछा—"इसके पहले जो नौकर रहे होंगे, वे भी क्या आत्मीय की तरह रखे जाते थे?"

महाराज कुछ गम्भीर होकर कहने लगे—"रामनरेश जी! हम तो ग़रीब आदमी हैं। इससे ग़रीबों के प्रति हमारी सहानुभूति स्वाभाविक है। नौकर को मैं कुटुम्ब से भिन्न नहीं समझता। मेरे यहाँ नौकर के साथ जैसा व्यवहार होता है, वैसा धनी घरों में भी बहुत कम देखने को मिलेगा।—

थोड़ा दम लेकर महाराज मेरे प्रश्न का उत्तर देने लगे —"मेरे यहाँ एक नौकर था। उसका नाम बेनी था। बीस वर्ष के लगभग उसने मेरी सेवा की। अब लगभग बीस वर्ष से वह अपने घर पर रहता है और मैं उसे दस रुपये मासिक देता हूँ। एक शिवदयाल नौकर था। उसे दो रुपये मासिक मिलते हैं। पुराने नौकर को छोड़ाना मुझे प्रिय नहीं लगता।"

मेरी शंका निर्मूल ही थी। बेनी उस समय का नौकर है, जब महाराज की उम्र चालीस वर्ष की थी। तब वृद्धावस्था का कोई प्रश्न ही न था।

आज गोविन्द जी से नौकरों के प्रति महाराज के दया-भाव की एक और कथा सुनने को मिली। एक बार महाराज को जोर का ज्वर आया। वह १०५ या १०६ डिग्री तक पहुँच गया था। उन दिनों वह बाबू शिवप्रसाद गुप्त की कोठी में ठहरे हुए थे। रात में उनके कमरे में किसको सोना चाहिए? घर के लोग यह चर्चा कर रहे थे कि

* घर के बाहर के लोग मालवीय जी को 'महाराज' ही कहकर पुकारते थे।

महाराज ने उसे सुनकर कहा "किसी की आवश्यकता नहीं है।' पर इतने कड़े स्वर में किसी न किसी को पास तो रहना ही चाहिए। रात में प्यास लगे, पेशाब लगे या रोग का कोई प्रकोप हो, तो कौन सहायता पहुंचाएगा ? पर कोई दलील न चली और सबको उनकी आज्ञा माननी पड़ी। फिर भी गोविन्द जी ने एक नौकर को उनके कमरे के बाहर, ठीक दरवाजे पर, सुला दिया ताकि जब वह उठें, तो नौकर को जगाए बिना बाहर न जा सकें।

रात में महाराज पेशाब करने उठे। दरवाजे के सामने उन्होंने नौकर को सोया हुआ देखा। उसे नहीं जगाया। दूसरा दरवाजा खोला और उससे निकल कर आधी कोठी की परिक्रमा करके वह पेशाब-खाने में गए और वहां से निवृत्त होकर बरामदे में रखे हुए गगरे को बाएँ हाथ की कुहनी से टेढ़ा करके हाथ धोने के लिये जल ले रहे थे, तब गोविन्द जी जाग कर आए और आँखों में आँसू भर कर कहने लगे "बाबू ! आप यह क्या कर रहे हैं ? हम लोग किस दिन काम आएँगे ?"

महाराज ने कहा—"भाई ! नौकर दिन भर की मेहनत के बाद आराम से सोया है, उसे कैसे जगाता ?"

मुझे घूमने का तो बहुत मौका मिला है और मेरा परिचय भी राजा से लेकर साधारण गृहस्थ तक प्रायः हरेक श्रेणी और हरेक सुरुचि के लोगों से है; पर नौकरों के प्रति जैसी आत्मीयता मैंने मालवीय जी में देखी वैसी यहां के पहले और कहीं देखी नहीं थी।

प्रायः अधिकांश मालिक अपने नौकरों के प्रति उदासीन और कहीं-कहीं क्रूर ही दिखायी पड़े और कहीं-कहीं नौकर ही मालिक बन बैठे हैं; पर यहां स्वामी और सेवक का अद्भुत ही रूप देखा।

सबसे मजेदार दृश्य तो मुझे तब देखने को मिला था, जब महाराज ने अपने नौकर, मूड़ी, से, जो आठ-दस वर्ष से महाराज की सेवा में है, और जिसकी उम्र पच्चीस वर्ष के लगभग होगी, पीने के लिये दूध माँगा। मूड़ी ने एक आत्मीय की तरह निश्चित भाव से कहा—"अभी दूध नहीं देंगे, अभी तो आप ने दवा ली है।"

महाराज ने शान्त भाव से फिर कहा "दवा लिये देर हुई, दूध ले आओ।" तब मूड़ी दूध लाया। जो मालवीय जी सरकार के बड़े से बड़े अफसर की दी हुई आज्ञा नहीं सह सके, जो अन्याय के विरुद्ध सिंह के समान क्रोध के आवेश में आ जाते थे, वे अपने घर में इतने सरल थे कि एक अपढ़ नौकर उनके सामने निर्भय होकर बोलता था।

तेईसवाँ अध्याय

मालवीय जी की अन्य बातें—१

मालवीय जी ने 'हरिजनों' पर प्रतिबंध हटाने के लिए एक भजन बनाया था। वह भजन इस प्रकार है—

घट घट व्यापक राम जप रे।
मत कर बैर,
झूठ मत भाखै।
मत परधन हर,
मत मद चाखै।
जीव मत मार,
जुवा मत खेलै।
मत परतिय लख,
यही तेरो तप रे।

व्यास जी लिखते हैं कि इन सब कर्मों का मालवीय जी ने अपने जीवन में अभ्यास किया था। "उनका आस्तिक्य इतना प्रबल था कि उससे वह कभी नहीं डिगते थे। प्रयाग तो उनका जन्मस्थान ही था। पहले वह भारती-भवन वाले मकान में रहते थे। बाद में वह जार्ज टाउन वाले अपने बंगले में रहने लगे। जब कभी उन्हें परदेश जाना होता था और वह आए दिन परदेश जाते थे तब स्टेशन जाते समय अपने शहर वाले मकान में वह आते थे, जहां उनके कुलदेवता, राधाकृष्ण की जोड़ी प्रतिष्ठित थी। वहां अपने संपूर्ण वस्त्र उतार, एक गीला दुपट्टा पहन, बड़ी भक्ति से देवता के सामने वह नतमस्तक होते थे। इसमें वह तनिक भी उतावली नहीं करते थे, चाहे वह कितने ही आवश्यक कार्य के लिये परदेश जा रहे हों और चाहे इन सब कामों को विधिपूर्वक करने में रेलगाड़ी छूटने तक की नौबत क्यों न आ जाए। इतनी निष्ठा उन्हें राधाकृष्ण में थी। यह निष्ठा उनकी पंतक थी।"

'मालवीय पत्रिका' में बी० ए० सुन्दरम् का लेख छपा था। उस लेख का कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है

"सन् १९३५। कलकत्ता का दृश्य है, जहां ४९ वर्ष पूर्व महामना ने अपना सर्वप्रथम भाषण दिया था। एक नौजवान ब्रह्मचारी काली मंदिर के समक्ष पशुबलि रोकने के संबंध में अपने प्राणों की बाजी लगाता है। आज उसके अनशन का २५ वाँ दिवस है। ब्रह्मचारी रामचन्द्र अपनी अंतिम घड़ियां गिन रहा है। उस पर मृत्यु की छाया क्रमशः पड़ रही है। मालवीय जी कलकत्ता पधारते हैं। आप ब्रह्मचारी की मृत्यु-शैय्या के निकट जाकर अत्यंत विश्वास के साथ दुर्गा सप्तशती का पाठ करते हैं। पाठ

5534.

दी। 'ओम् नमः शिवाय, ओम् नमो नारायण, ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' आदि मंत्रों की उन्होंने दीक्षा दी। सन् १९३६ में मालवीय जी नासिक गए। वहाँ गोदावरी के तट पर उहोंने बहुत से हरिजनों को मंत्र की दीक्षा दी। (श्री चन्द्रबली त्रिपाठी)

इस सबसे क्या प्रकट होती है? यह बात स्पष्ट है कि मालवीय जी जैसे अपने धर्म में पक्के और दृढ़ थे, उसी तरह दूसरे धर्मों के मानने वालों को भी अपने-अपने मतों पर पक्के और दृढ़ रहने की सलाह वह देते रहे। उनमें विद्वेष कदापि नहीं था। संकीर्णता उनमें छू तक नहीं गयी थी। इसलिए जो लोग उन्हें उर्दू के शत्रु और मुसलमानों के दुश्मन कहते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि मालवीय जी जैसे अपने धर्म में दृढ़ थे, वैसे ही वह दूसरे धर्मों का भी आदर करते थे।

चौबीसवाँ अध्याय

मालवीय जी की अन्य बातें—२

पहली बात जो इस अनुच्छेद में हमें कहनी है, वह यह है कि उनका आत्म-विश्वास सदा अडिग रहा। ईश्वर में आस्था और आत्म-विश्वास मालवीय जी के जीवन की कुंजियाँ हैं।

× × ×

आत्म-विश्वास का एक ही उदाहरण देना काफ़ी है। जब उन्होंने देखा कि 'काम्यूनल अवार्ड' के विषय में उनकी कांग्रेस में हार हुई, तब उन्होंने कलकत्ते में एक बृहद् सभा की। उसके सभापति थे 'लीडर' के सुप्रसिद्ध संपादक और वाग्मी, श्री सी० वाई० चिन्तामणि। उस सभा में बोलनेवालों में थे 'माडर्न रिव्यू' के प्रतिष्ठित सम्पादक, श्री रामानन्द चटर्जी।

× × ×

उस 'काम्यूनल अवार्ड' की धज्जियाँ सभापति ने अपने भाषण में खूब उड़ायीं, पर कांग्रेस में 'काम्यूनल अवार्ड' के विरुद्ध कोई भी दरार न पड़ी।

× × ×

इसी एक उदाहरण से मालवीय जी का आत्म-विश्वास प्रकट होता है। किसी विपक्षी के विरोध में हार मानना वह जानते ही न थे। यदि कांग्रेस के मत को वह परिवर्तित न कर सके तो कोई बात नहीं। उन्होंने स्वर्गीय सी० वाई० चिन्तामणि का, जो उदार दल के थे, और 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक, स्वर्गीय श्री रामानन्द चटर्जी, का जो कांग्रेसी उग्र दल के एक प्रमुख व्यक्ति थे, सहयोग प्राप्त किया। उन्हें इस बात की चिन्ता न थी कि वह किसका सहयोग प्राप्त कर रहे हैं। लड़ाई में उनका ध्येय जीत था। अपने पक्ष को प्रबल करने के लिए वह सदा इस बात की चेष्टा में रहते थे कि सब दलों के आदमियों का सहयोग उन्हें प्राप्त हो, यदि उनका मत उन व्यक्तियों के मत से मिलता हो।

× × ×

कांग्रेस की 'काम्यूनल अवार्ड' के प्रति नीति के विरोध में उन्होंने श्री अणे के साथ कांग्रेस की कार्यकारिणी की सदस्यता से इस्तीफ़ा दे दिया। उनका आत्म-विश्वास इतना प्रबल था।

× × ×

हिन्दू-हितों की रक्षा करना जहाँ उनका ध्येय था, वहाँ वह छुआछूत के विरोधी और नारी को शिक्षा देने के समर्थक भी थे। पर्दा में उनका विश्वास न था।

× × ×

साथ ही जहाँ हिन्दू-हितों की रक्षा करना उनका ध्येय था, वहाँ गो-रक्षा और आयुर्वेद के वह प्रबल समर्थक थे। उनके निधन के तीन-चार दिन पहले वह शिवपुरी में एक गोशाला के उत्सव में शरीक हुए थे, जिससे लौटती बार उन्हें ठंड लग गयी थी।

× × ×

उनके अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण के विषय में जो लोग जानना चाहते हैं, उन्हें भारत के एक साप्ताहिक पत्र 'कामरेड' की विगत फाइलों में इस सम्बन्ध का बहुत मशाला मिल जाएगा। वह 'स्टूडेन्ट' न कहकर 'स्टूड्येन्ट' कहते थे क्योंकि उन्होंने स्वर्गीय श्री आदित्यराम भट्टाचार्य से इस शब्द का यही उच्चारण सीखा था। वह अंग्रेजी कोषों को इस शब्द के उच्चारण के लिए कदापि न मानते थे। इसी तरह 'सोचना' को 'सोंचना' वह कहते थे।

× × ×

यहाँ पर मुझे एक निजी बात याद आ गयी। मालवीय जी के एक सार्वजनिक सभा में न जाने पर उनके पुत्र, स्वर्गीय गोविन्द मालवीय उस सभा में पधारे। वहाँ से लौटने पर मालवीय जी ने मुझ से पूछा 'गोविन्द कैसा बोला'? मैंने उत्तर में कहा—'गोविन्द जी बहुत अच्छा बोले, पर उनके हिन्दी शब्दों के उच्चारण को ठीक करना होगा'। मालवीय जी ने पूछा—'कैसे'? मैंने उत्तर में कहा, 'प्रयागीय ढंग की भाषा वह न बोला करें'। मालवीय जी ने पूछा—'प्रयागीय ढंग'। मैंने उत्तर दिया—'हाँ, प्रयागीय ढंग'। 'हांथ में घांस लेकर वे पूंजा करते हैं'। नकार का उच्चारण प्रयाग की विशेषता है। इसे बोलते समय वह न प्रयोग करें तो ठीक होगा'। मालवीय जी ने इसके उत्तर में मुझे केवल 'नटखट' कहा। यहीं पर यह बात समाप्त हो गयी।

× × ×

एक बार श्री घनश्यामदास बिड़ला से कई बार उन्होंने पूछा कि क्या रुपए के बदले में एक शिलिंग और चार पेंस का लेना ठीक होगा या रुपए का भाव एक शिलिंग और ६ पेंस कर दिया जाए। श्री घनश्यामदास बिड़ला का मत था कि रुपए का भाव एक शिलिंग और चार पेंस हो तो ठीक रहेगा। इस पर मालवीय जी ने कहा कि इस विषय में पं० हृदयनाथ कुंजरू से मैं बात करूँगा। उनकी राय निष्पक्ष होती है। तुम तो व्यापारियों के मत का समर्थन करते हुए दिखायी देते हो।

× × ×

पं० हृदयनाथ कुंजरू ने मालवीय जी के विषय में अपनी सम्मति देते हुए इन नपे-तुले शब्दों का प्रयोग किया है—'सन् १९०८ से लेकर मालवीय जी के अन्त समय तक मैंने उन्हें बहुत नजदीक से देखा था। उन्होंने किसी के लिए भी, (अपने) विरोधी के लिए भी, भूलकर भी कटु-शब्द का व्यवहार नहीं किया था। वह अजातशत्रु थे। वह लोगों की व्यक्तिगत सहायता बहुत करते थे। गांधी जी को छोड़कर, उनसे बड़ा भारतीय कोई नहीं था।

× × ×

डा० भगवानदास का कहना था कि उन्होंने कभी विरोधी के प्रतिकूल एक भी अपशब्द नहीं कहा। उनकी आशावादिता जग-जाहिर है। इसी के बल पर उन्होंने काशी विश्वविद्यालय को रचा। उनमें समझौता कराने की शक्ति विलक्षण थी। इसे उन्होंने कला का रूप दे दिया था। दूसरे लोग जब कठिनाइयों या बाधाओं से निराश हो जाते थे, तभी वह आशाप्रद बातें करते थे। प्रयाग में एकता-सम्मेलन के समय खींचा-तानी थी। लेकिन मालवीय जी की प्रतिभा और सूझ में सदा शान्ति विराजती थी। उस एकता सम्मेलन को असफल बनाया अंग्रेजी कूटनीतिज्ञों ने। नहीं तो दोनों जातियों हिन्दू और मुसलमानों—में समझौता अवश्य हो जाता। जिस समय एकता-सम्मेलन सफलता की ओर बढ़ रहा था, तभी अंग्रेजी सरकार ने बम्बई प्रान्त से सिन्ध को निकाल कर उसे स्वतन्त्र प्रदेश के रूप में घोषित कर दिया। इसी से खुश होकर एकता सम्मेलन में जो मुसलमान प्रतिनिधि आए थे, वे चले गये और इस तरह इस सम्मेलन का अन्त हुआ।

× × ×

कुछ लोग उन्हें भारत के अतीत का प्रतिनिधि मानते हैं। कई हिन्दी लेखकों ने भी उनके विषय में यही बात कही है। किसी ने उन्हें वशिष्ठ का अवतार कहा है और किसी ने उनकी तुलना प्राचीन ऋषि-मुनियों से की है। यह हम मानते हैं कि उनका विश्वास प्राचीन शास्त्रों में था और वह कोई ऐसा काम न करना चाहते थे, जो विधि-विहित या शास्त्र-सम्मत न हो। पर वह लकीर के फ़कीर कभी नहीं रहे। अंत्यजों को दीक्षा देने के विषय में उन्होंने जो कार्य किये, उनकी कहानी कौन नहीं जानता? वह तो हिन्दू समाज से मैल या गन्दगी को निकालना चाहते थे, ताकि हिन्दू कहलाने वाला फिर एक बार संसार के उसी मंच पर आ जाए, जिस पर किसी समय उसका अधिकार था।

× × ×

मालवीय जी की भाषण-शक्ति के विषय में जो श्रद्धांजलि प्रयाग के उच्च न्यायालय के भूतपूर्व जज, श्री शंकर शरन, ने अर्पित की है, उसका एक उद्धरण देना अनावश्यक न होगा। उत्तर प्रदेश के सबसे बड़ा वक्ता निश्चित रूप से पं० मदनमोहन मालवीय थे। "अंग्रेजी और हिन्दी, दोनों ही में (पं०) मदनमोहन मालवीय की रजत जिह्वा अपने समकालीनों के द्वारा सदैव अजित रही। उनका सुन्दर मुखड़ा, उनकी आकृति, उनकी मधुर मुस्कान, प्राचीन गाथाओं के उल्लेख, उनके भाषणों को बहुत ही मोहक और प्रभावपूर्ण बना देते थे।

× × ×

श्री शंकर शरन के पिता, मुंशी ईश्वर शरन, ने मालवीय जी से एक बार कहा कि "मेरा अंग्रेजी उच्चारण आपसे कहीं अधिक सुन्दर होता है। फिर क्या बात है कि जहाँ मुझे सुनकर लोग हँसते हैं, वहाँ आपके भाषण को सुनकर लोग आँसू बहाते हैं"? तुरन्त जवाब दिया मालवीय जी ने—'आप कंठ से बोलते हैं, मैं नाभि से बोलता हूँ। यही आप में और मुझ में अन्तर है"।

× × ×

मालवीय जी का रेल-गाड़ी छोड़ना प्रसिद्ध है। इसका कारण था मालवीय जी की शालीनता। इसके लिए बहुत से लोग मालवीय जी की अनियमितता को दोष देते हैं पर बात ऐसी नहीं है। यदि स्टेशन जाते हुए कोई आगन्तुक आ गया तो पहले मालवीय जी उससे क्षमा-याचना करते थे, लेकिन यदि आगन्तुक महोदय आसन जमाकर बैठ गये तो उसके स्वागत के लिए मालवीय जी खुद बैठ जाते थे, और जितना समय वह लेना चाहे उतना समय वह उसे देते थे। इसीलिए मालवीय जी की रेल प्रायः अपने निर्धारित समय पर चल देती थी, वह मालवीय जी और उनके आगन्तुक महोदय का इन्तजार न करती थी।

× × ×

लेकिन इसके कई अपवाद भी हैं। कभी रेल समय से स्टेशन पर न आयी और कभी मालनीय जी की आशावादिता ने उनका साथ दिया।

× × ×

एक बार की घटना का जिक्र कर देना यहां पर उचित होगा। जब मालवीय जी पुरानी कौंसिल के सदस्य थे तब उन्हें एक प्रस्ताव कौंसिल में दूसरे दिन प्रातःकाल पेश करना था। वह देर से स्टेशन पर पहुंचे। आख़री गाड़ी जा चुकी थी। किसी दूसरी रेलगाड़ी के जाने की संभावना न थी; पर तब भी मालवीय जी इलाहाबाद स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर खड़े रहे। संयोगवश उसी समय वाइसराय की स्पेशल गाड़ी वहाँ आ गयी। उसी पर वह चढ़ गये।

× × ×

मालवीय जी की स्मरण-शक्ति अद्‌भुत थी। एक बार इसे देखकर स्वर्गीय श्री रामनरेश त्रिपाठी आश्चर्यचकित रह गये। घटना इस प्रकार है। एक बार मालवीय जी ने पं० रामनरेश त्रिपाठी से एक गीत गाने का अनुरोध किया। उसे उन्होंने गाकर सुनाया पर मालवीय जी बोले कि यह राग, जिसमें आपने गाना गाकर सुनाया है, ठीक नहीं है। सुनिए, मैं गाकर इसे सुनाता हूँ।' मालवीय जी ने गाया और ह-बहू गाया उसी तरह जैसा उन्होंने उस समय सुना था जब वह काशी विश्वविद्यालय के लिए दान लेने के लिए रायबरेली के एक ज़मींदार के पास गए थे। इतने वर्षों बाद उसी राग में और खेतिहरों के उसी स्वर का चित्र मालवीय जी ने खींच दिया। इसे देखकर पं० रामनरेश का चकित रह जाना समझ में आ सकता है। लेकिन उन्हें क्या मालूम था कि मालवीय जी की स्मरण-शक्ति अद्‌भुत थी और जिसे वह एक बार सुन लेते थे, वह बात उनके हृदय में सदा के लिए अंकित हो जाती थी।

× × ×

पद्मकान्त जी ने 'मालवीय जी की जीवन झलकियां' में मालवीय जी के जीवन की अनेक झांकियां अपनी उक्त पुस्तक में दी हैं। उसमें से कौन दी जाए और कौन न दी जाए, इसका निर्णय करना हमारे लिए असंभव है।

× × ×

सन् १९३५ में काशी विश्वविद्यालय के कुछ मुसलमान विद्यार्थी मुसलमानी त्यौहारों पर छुट्टी की माँग लेकर उप-कुलपति से मिलने उनके निवास स्थान पर गये। उन दिनों महामना जी बहुत बीमार थे, पर वह इन विद्यार्थियों से अपनी सहज मुस्कान और स्नेह के साथ ही मिले। इस घटना का उल्लेख श्री इश्तियाक हुसेन ने अपनी फड़कती भाषा में किया है। उसे ज्यों का त्यों लिखना हमारा फ़र्ज़ है।

× × ×

उन्होंने लिखा है—"हमने अपने आने का उद्देश्य बताकर उन्हें एक दर्ख़ास्त दी। उन्होंने फ़ौरन ही हमारी बातों में दिलचस्पी ली और पूछा—'तुम लोगों ने अपनी दर्ख़ास्त में पैगम्बर के जन्म-दिवस की छुट्टी क्यों नहीं माँगी?' उसी साँस में मालवीय जी समझाने लगे कि ईमानदारी और सम्पूर्ण रूप से अपने-अपने धर्मों का पालन हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए कितना आवश्यक है। अनेक महत्वपूर्ण और शिक्षाप्रद संस्मरण वह सुनाते रहे। और बाद में विश्वविद्यालय की प्रबन्ध-कारिणी समिति के सामने हमारी माँग को रखा और उसे मंजूर कराया। अन्त में श्री इश्तियाक हुसेन का कहना है कि यद्यपि मालवीय जी कट्टर धार्मिक पुरुष थे, परन्तु धार्मिकता और साम्प्रदायिकता एक चीज नहीं है। सच्चा धार्मिक व्यक्ति साम्प्रदायिक हो ही नहीं सकता। वह ईमानदार जो होता है।"

× × ×

इसी तरह की एक घटना का उल्लेख प्रयाग के मौलाना शाहिद हुसेन ने किया है। उनका कहना है कि एक बार वह मालवीय जी के साथ रेलगाड़ी पर सफ़र कर रहे थे। संकोचवश मौलाना ने शाम की नमाज न अदा की। मालवीय जी ने उनसे कहा, 'क्यों जी, शाम की नमाज क्यों नहीं पढ़ी'। मौलाना ने उसी समय मालवीय जी की पूजा के आसन के सामने नमाज पढ़ी। नमाज के ख़त्म होने पर मालवीय जी ने उनसे कहा कि 'जब हिन्दू और मुसलमान अपने अपने धर्म का पालन करना सीख जाएंगे तभी, अन्यथा, नहीं, दोनों जातियों में स्थायी मेल हो सकता है। यह छुरी-काँटे की दोस्ती नहीं है'।

× × ×

श्री वेंकटेश नारायण तिवारी का एक संस्मरण—जून का महीना था। मालवीय जी गुजरानवाला का ख़ालसा कालेज देखने गये। उनके साथ देश के कुछ सार्वजनिक नेता और मैं भी था। पीछे एक लम्बी भीड़ भी थी। प्रायः सबके पास छाते थे। केवल मेरे पास छाता न था। एक नेता ने मेरी ओर देखकर कहा 'क्या आप खुदकुशी (आत्म-हत्या) करने पर आमादा हैं'? दूसरे नेता ने इस पर कहा—'सवा रुपए का तो छाता मिलता है। उसे तुम क्यों नहीं ख़रीद लेते'? मालवीय जी ने भी मुझे देखा। वह भीड़ में दाहिने हाथ थे; बाएँ, जिधर मैं था, आए और छाते की छाया में मुझे लेकर चलने लगे। मैंने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि वह ऐसा न करें। इस पर मालवीय जी ने कहा—'देखो, मैं सेवा-समिति का सभापति हूँ, पर उसका सारा काम तो तुम करते हो। क्या मैं तुम्हारी सेवा भी न करूँ'?

इस घटना में तीनों नेताओं के रूप अलग-अलक व्यक्त हो रहे हैं।

× × ×

इसी तरह की एक दूसरी घटना की चर्चा भी श्री वेंकटेश नारायण तिवारी ने की है :—

'पंजाब के नये लेफ़्टीनेन्ट गवर्नर, श्रीमान् मैक्लेगन से मिलने के लिए मालवीय जी शिमले गये। मैं भी साथ था। जिस कोठी पर मालवीय जी ठहरे थे उसी में मैं भी ठहरा था। मेरी आदत रात में पैर सिकोड़ कर सोने की है। मालवीय जी रात में पेशाब करने उठे। मुझे सिकुड़ा हुआ देखकर उन्होंने समझा कि मुझे सर्दी लग रही है। मेरे ऊपर मालवीय जी ने अपना कम्बल उढ़ा दिया। पर मैं सिकुड़ा ही रहा। दूसरी बार मालवीय जी फिर पेशाब करने जब उठे तो वह एक कम्बल और उढ़ा गये। तीसरी बार उन्होंने तीसरा कम्बल भी उढ़ा दिया। मालवीय जी के पास एक भी कम्बल न रहा और सर्दी खाते हुए बाकी रात उन्होंने बैठे ही बैठे बिता दी। जब सबेरे मैं जगा तब नौकर से मैंने पूछा कि 'मुझे ये कम्बल किसने ओढ़ाए'? नौकर ने कहा, 'बाबू जी ने ओढ़ाए'। प्रातःकाल दो सौ रुपए मालवीय जी ने मुझे दिए और कहा कि, 'इनसे मेरे लिए तुम कम्बल खरीद लाओ'। मालवीय जी का आजीवन यह प्रण रहा था कि न वह किसी दूसरे के बिस्तर पर कभी बैठेंगे और न किसी के बिस्तर पर कभी लेटेंगे। इसी तरह उनका यह भी व्रत था कि वह अपने बिस्तर पर किसी और को कदापि न बैठने देते थे। इसी प्रण के कारण उन्होंने दो सौ रुपये देकर मुझसे कहा था कि मैं उनके लिए बाजार से उन रुपयों के कम्बल ले आऊँ। मेरे ऊपर रात के समय जो कम्बल उन्होंने डाले थे, वे छूत हो गये थे। इसलिए उन्हें नए कम्बलों की आवश्यकता पड़ी।

× × ×

गोलमेज कान्फ्रेन्स में भाग लेने के लिए लन्दन जाते समय उनकी यात्रा का घनश्यामदास बिड़ला ने बहुत ही रोचक वर्णन किया है। गांधी जी और मालवीय जी के सामान को देखकर जहाज के अधिकारी मन ही मन यह कहते थे कि यह शिव जी की कैसी बारात आयी है। पर ऊपर से वे बड़े अदब से इन दो नेताओं के प्रति व्यवहार करते थे। जब मालवीय जी का जहाज अदन पहुँचा तब उनके लिए अरब का दो घड़ा पानी तथा अन्य सामान लिया गया। पर जब मज़ाक में उनसे यह कहा गया कि पंडित जी तो अरब का पानी पीते हैं और मुसलमान हो गये हैं और मौलाना शौकत अली के साथ उनकी खूब निपटेगी, तब मालवीय जी मुस्करा दिए और बोले – 'अरब के पानी को मैं दो बार की संध्या से पाक कर दूँगा और जैसा मैं सनातनधर्मी था वैसा ही मैं अन्त तक रहूँगा'।

× × ×

मालवीय जी की एक विशेषता थी कि वह कभी किसी को अपने बिस्तर पर न बैठने देते थे और न किसी दूसरे के बिस्तर पर वह कभी बैठते या लेटते थे। इसका एक उदाहरण श्री चन्द्रबली त्रिपाठी ने दिया है। वह लिखते हैं कि एक बार मालवीय जी रेल पर सफ़र कर रहे थे। मालवीय जी पहले रेल पर सवार हो गये और उनके सामान के आने में देरी हुई। उसी डिब्बे में कोई भारतीय रेलवे अधिकारी सफ़र कर रहे थे। मालवीय जी को देखकर वह बोले कि 'मेरा बिस्तर बिछा है, इस पर आप बैठ

जाएँ। कब तक खड़े रहिएगा।' उनको उत्तर देते हुए मालवीय जी ने कहा कि 'भाई, किसी के बिस्तर पर न बैठने का मेरा नियम है।' उक्त अधिकारी ने दो तीन बार मालवीय जी से आग्रह किया कि मेरे बिस्तर पर आप बैठ जाइए, तब अन्त में परेशान होकर मालवीय जी ने उनकी बात का उत्तर दिया।

× × ×

मालवीय जी का भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ क्या संबंध था? आज मालवीय जी इस दुनियाँ में नहीं रहे और न भारतीय क्रान्तिकारियों के कमांडर-इन-चीफ़ ही इस असार संसार में हैं। श्री मनमोहन गुप्त (मनमाड-बम केस) का कहना है कि यदि दोनों जीवित होते तो 'दुनियाँ को पता चलता कि पूज्य मालवीय जी का भारतीय क्रान्तिकारियों के साथ क्या संबंध था'।

आगे चलकर वह कहते हैं—"आज पूज्य मालवीय जी के निधन ने दुनियाँ को एक उपयुक्त पिता से ही वंचित नहीं किया बल्कि दुनियाँ को दिवंगत पुत्रों के एक पिता से भी वंचित होना पड़ा है।'

मालवीय जी खुद कहते थे कि अजमेर में सन् १८९० के करीब जो क्रान्तिकारी षडयंत्र का मुकद्दमा चला था, उसमें उनका भी नाम था। इस बात को मालवीय जी ने श्री कृष्णदास से कहा था। उनका यह आशय था कि लोग भले ही उनको मॉडरेट या नरम दल का समझें, लेकिन वास्तव में वह भारतीय क्रान्तिकारियों की सहायता के लिए उत्सुक रहते थे।

× × ×

अंत में मालवीय जी के प्रति श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टण्डन की श्रद्धांजलि को देखिए। "वह श्वेत वस्त्र पहना करते थे। श्वेत ही उनका वस्त्र था और श्वेत ही उनका चरित्र भी। उस प्रकार के चरित्रवान् लोग राजनीति में कम हुआ करते हैं..... .....मालवीय जी महाराज ने जिस पवित्रता से वकालत की, वैसी ही पवित्रता से उनका जीवन बराबर बीता।"

'प्रातःस्मरणीय मालवीय जी महाराज काम स्वयं करते थे पर नाम दूसरों का आगे रखते थे।.....अदालती कामों के लिए हिन्दी को स्वीकार कराने के संबंध में सारा पत्र-व्यवहार वही करते थे, पर उसमें नाम रहता था अयोध्या-नरेश दबुआ साहब का। हिन्दू विश्वविद्यालय की सारी योजना उनकी थी, पर आगे रखते थे, बहरंगा नरेश को'। 'नेकी कर पानी में डाल,' यह उनके जीवन का आदर्श था।

× × ×

आगे चलकर श्री टण्डन जी लिखते हैं "एक बार जब वाइसराय (भारत के प्रधान यही होते थे) की कार्यकारिणी समिति में भारतीयों को लिये जाने की बहुत खबर थी, (तब) मैंने उनसे कहा कि सरकार शायद आपको भी निमंत्रित करे। उन्होंने उत्तर

दिया—इस विदेशी सरकार की बात ही क्या, स्वराज्य सरकार में मैं जनता के लिए सदा आवाज उठाता रहूँगा'। उनके शब्द थे 'आई शैल बी फाइटिंग फार माई पीपुल।'

× × ×

एक बार विदेशी भारत सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि देने की मंशा से उनसे पूछा कि 'क्या आप इस बात को स्वीकार करेंगे?' मालवीय जी ने इस प्रस्ताव का जवाब दिया तो शिष्ट भाषा में, लेकिन उन्हें पंडित मालवीय कहलाना ही पसन्द था, अपने नाम के आगे 'सर' लिखना पसन्द न था। इसलिए उन्होंने इस उपाधि को अस्वीकार कर दिया।

'गुन न हिरानो गुण-ग्राहक हिराने हैं।'

पच्चीसवाँ अध्याय

मालवीय जी की भाषण-शक्ति

मालवीय जी की भाषण-शक्ति कई अर्थों में अनुपम और अद्‌भुत थी। उनका-सा बोलने वाला शायद ही हिन्दुस्तान में दूसरा पैदा हुआ हो। उनके बोलने की मिठास अद्वितीय थी।

मालवीय जी में एक दोष था। उन्हें था बोलने का रोग। बचपन ही से वह वाचाल थे। श्री ब्रजमोहन व्यास का कहना है कि यह रोग उनके घर वालों को सताता है। श्री शिवराम वैद्य का कहना है कि मालवीय जी की दवा एक दफ़ा उन्होंने की। मालवीय जी के मुंह से खून निकलता था। पर बोलने से उन्हें कोई रोक नहीं पाता था। छड़ी लेकर जब उनके बड़े भाई, पंडित लक्ष्मीनरायण जी, उनके साथ रहने लगे तब उनके मुंह से खून का आना बन्द हुआ और वह रोग से मुक्त हो गए। इससे साफ जाहिर है कि मालवीय जी बचपन ही से EXTROVERT या, हिन्दी में यदि इसका अनुवाद किया जाए, तो वह जन्म ही से बहिर्मुखी थे। वह INTROVERT या अन्तर्मुखी कभी नहीं रहे। जब मालवीय जी छोटे थे, तब पंडित देवकीनन्दन जी उन्हें संगम के बांध पर ले जाते थे और उन्हें व्याख्यान देने का अभ्यास कराते थे। मैंने प्रयाग में यह सुना है कि जब मालवीय जी छोटे थे, तब वह व्याख्यान देते और बाँसुरी बजाते थे।

यह तो हुई उनके बचपन की बात; लेकिन बचपन की बात को जाने दीजिए। प्रौढावस्था में और अंत तक मालवीय जी की भाषण-शक्ति देश में ज़ाहिर थी। कांग्रेस अधिवेशन का कोई ऐसा अवसर नहीं हुआ, जिसमें किसी न किसी प्रमुख प्रस्ताव में मालवीय जी न बोले हों और उनके इस भाषण की धूम देश भर में न मच गयी हो।

यहां पर दूसरों की शहादत देना आवश्यक है।

श्री रामनाथ सुमन अपनी पुस्तक में लिखते हैं—'यह मालवीय जी की अद्‌भुत वाग्मिता, उनकी भाषण-शक्ति थी, जिसने पहली ही बार कांग्रेस मंच पर इन्हें लोक-प्रिय बना दिया। तबसे अंत तक मालवीय जी ने जो सफलता प्राप्त की है, उसमें उनकी भाषण-शक्ति उनका प्रधान साधन रही। इस विषय में सब एक मत हैं कि उनके जैसा धारा-प्रवाह बोलने और जन-रुचि को 'अपील' करने वाला वक्ता कांग्रेस में दूसरा नहीं था। उनकी श्रवण-मधुर बोली और विषय को स्पष्ट करने का ढंग अनोखा था। संस्कृत भाषा और साहित्य के ऊपर असाधारण अधिकार, इंगलिश इतिहास और साहित्य का परिचय, जन-समाज की दशा का गहरा अध्ययन और वर्तमान आर्थिक समस्याओं की खोज इन सब विशेषताओं से उनके भाषण प्रकाशित थे। उनके भाषणों का प्रभावशील कोमल युवक-हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ता था, इस विषय में बिहार के डा० सच्चिदानन्द सिन्हा ने अपनी कुमारावस्था की एक घटना लिखी है। यह घटना कांग्रेस के सन् १८८८ ई० के इलाहाबाद अधिवेशन की है जिसमें वह शरीक हुए थे। वह लिखते हैं

'सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और कालीचरण बनर्जी (कलकत्ता, ई० नार्दर्न मद्रास) फ़ीरोजशाह मेहता और के० टी० तैलंग (बम्बई) जैसे अपने समय के भारत के सर्वश्रेष्ठ वक्ताओं की कुछ वक्तृताओं ने मेरे युवकोचित मन पर बड़ा प्रभाव डाला। मुझे सब असाधारण और आश्चर्यजनक प्रतीत होता था। किन्तु मालवीय जी के भाषणों ने मेरे दिल पर जो कभी न मिटने वाला प्रभाव डाला, वैसा किसी दूसरे का न पड़ा। मुझे आज भी याद है कि जब तक मालवीय जी उस विशाल समूह के सामने भाषण करते रहे, मैं मुग्ध-सा, उसमें डूबा हुआ, आत्मविस्मृत की भाँति चुप-चाप बैठा रहा। उनके भाषण में वाग्मिता के साथ मिठास और जीवन था। तब से दीर्घ-कालीन परिचय के बल में कह सकता हूँ कि यद्यपि भारत ने कतिपय बेजोड़ वक्ता और वादी (डिबेटर) पैदा किए, किन्तु मालवीय जी इस क्षेत्र में एक ही हैं। वही एक वक्ता हैं जो श्रोताओं को अपनी भाषा की शक्ति और जोश से नहीं, वरन् निपुणता, आश्चर्यजनक मृदुता, असाधारण आकर्षण 'चार्म'—और सरलतापूर्वक निकलती हुई वाग्धारा से प्रभावित करते हैं। ये सब बातें श्रोता के मन पर कुछ ऐसा प्रभाव डालती हैं कि उनमें विश्वास उत्पन्न हो जाता है।'

'समयानुसार बोलने के ढंग में वह परिवर्तन भी करते रहते थे। वह जहाँ सिंह की भाँति 'दहाड़' सकते थे वहाँ कोयल की भाँति मधुर स्वर में 'कूक' भी सकते थे। उनके बोलने में एक अद्भुत मधुरता थी। वह सच्चे ब्राह्मण की मधुरता थी। श्री केलकर के शब्द मुझे याद आते हैं कि 'उनका बोलना सोते से निकली हुई कल-कल रव कर बहने वाली जल धारा के समान है जिसमें इतना मधुर शब्द होता है कि उसे सुनते ही जाने की इच्छा बनी रहती है।'

श्री सच्चिदानंद सिन्हा पंजाब की बहस के सम्बन्ध में लिखते हैं—'पंजाब हत्याकांड के बाद, उसी वर्ष की ग्रीष्म ऋतु की, शिमला की बात है। बहस 'डिबेट' सनसनीदार रही थी और पंजाब सरकार के चीफ सेक्रेटरी, श्री तामसन, (बाद में दिल्ली के चीफ कमिश्नर सर जेम्स तामसन) उसके (पंजाब सरकार के) प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे। बहस कई दिनों तक चलती रही, जिसमें मालवीय जी ने शायद सबसे महत्वपूर्ण भाग लिया। सरकारी सदस्य श्री तामसन को एक बड़ा शक्तिमान् वक्ता—ज्वालामुखी के ज़ोर के साथ बोलने वाला समझते थे वह मालवीय पर बड़े तीव्र शब्दों में आक्रमण कर रहे थे...। एक मौक़े पर उन्होंने मिल्टन के 'पैरेडाइज़ लास्ट' से एक पद्य सुना कर सोचा कि मालवीय जी के विरुद्ध विजय प्राप्त कर सकेंगे; पर मालवीय ने मौक़े को सम्भाला और अपने जवाब में श्री तामसन की प्रत्येक बात की न केवल धज्जियाँ उड़ा दीं वरन् मिल्टन ही के एक बिल्कुल विरुद्ध अर्थ व्यक्त करने वाले पद्य-खंड को सुना कर उन्हें चुप कर दिया। मालवीय जी की पंजाब-सम्बन्धी ये वक्तृताएँ निश्चय ही बड़ी उच्चकोटि की बौद्धिक विशेषताओं से सपन्न थीं।'

स्वर्गीय सर विश्वेश्वरैया मालवीय जी की एक सभा में उपस्थित थे। उन्होंने उस सभा का हाल लिखा है। वह लिखते हैं—'मैं कलकत्ता की ऐसी एक सभा में मौजूद था जिसमें उन्होंने हिन्दी में बड़ा उत्साहवर्द्धक और ज़ोरदार व्याख्यान दिया था। मेरा ख़याल है कि यह जनवरी, सन् १९१२ ई० की बात है। उसमें धनी, ज़मींदार, मारवाड़ी, व्यापारी और दूसरे लोग बड़ी रक़मों के वादे के साथ आगे आए; बहुतों ने वहीं करेंसी नोटों के बंडल के बंडल मालवीय जी को अर्पण कर दिए। पंडित जी के उत्साह-जनक भाषण ने श्रोताओं को वश में कर लिया था और रुपयों की वर्षा हो रही थी।'

स्वर्गीय डा० दादाभाई नौरोजी और श्री ह्यूम की राय पिछले अध्यायों में दी जा चुकी है, जिसमें मालवीय जी के उस चमत्कारिक भाषण का ज़िक्र है जो उन्होंने सन् १८८६ में कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर दिया था। एक आलोचक लिखते हैं कि मद्रास में जो कांग्रेस का तीसरा अधिवेशन हुआ, उसमें मालवीय जी के भाषणों की धूम मच गयी और श्री ह्यूम के कहने से उत्तर प्रदेश की प्रान्तिक कमेटी के वह मंत्री चुने गये। उस समय कांग्रेस के विपरीत अंग्रेजी सरकार का रुख था। अतएव कांग्रेस के अधिवेशन के होने की संभावना प्रयाग में कुछ ही लोगों को थी। लेकिन वह अधिवेशन हो कर रहा, जिसमें मालवीय जी ने बड़ा परिश्रम किया; और उस अधिवेशन की सफलता का बहुत बड़ा हिस्सा मालवीय जी को मिलना चाहिए।

यद्यपि उन्होंने वकालत थोड़े ही दिन की, लेकिन उच्च न्यायालय के जजों पर उन्होंने अपनी वाग्मिता की धाक जमा ली। जिस समय उन्होंने वकालत करना बंद कर दिया, तब एक जज ने कहा "Pt. Madan mohan malviya has the ball before his feet, but he refuses to kick it." अर्थात् 'पंडित मदनमोहन मालवीय के पैरों के सामने ही गेंद है, पर, वह उसे ठोकर मार कर आगे बढ़ाने से इन्कार करते हैं।'

इसी प्रकार के वचन मैंने श्री गोपालकृष्ण गोखले के मुँह से सुने। सन् १९११ की बात है। उन दिनों में गोखले जी के साथ भारत-सेवक-समिति के प्रधान कार्यालय में मैं रहता था। उनके अतिरिक्त, बाक़ी सदस्य अपने-अपने काम से बाहर चले गए थे। एक दिन शाम के वक्त श्री गोपालकृष्ण गोखले और मैं एक बेन्च पर बैठे थे। उस समय श्री गोपालकृष्ण गोखले ने अपनी तुलना मालवीय जी से की। उन्होंने कहा 'मेरा आत्म-त्याग क्या है? मैं तो जिस समय फर्ग्युसन कालेज में पढ़ाने लगा, तब मुझे माह के अंत में ८०) एकमुश्त मिलने लगे। इतनी बड़ी धन-राशि मैंने कभी नहीं देखी थी। अतएव उसे पाकर मैं तो मालामाल हो गया।' मालवीय जी के विषय में उन्होंने कहा कि 'त्याग तो मालवीय जी का है। ३,०००) रु० माहवार की आमदनी उनकी वकालत से होती थी। मालवीय जी के सामने गेंद था, लेकिन उन्होंने ठोकर मार कर उसे आगे बढ़ाने की कभी लालसा नहीं की। जो आदमी वकालत ऐसे पेशे को लात मार सकता है, उसका आत्म-त्याग वास्तव में आत्म-त्याग है।'

———

छब्बीसवाँ अध्याय

मालवीय जी की निस्वार्थ सेवा और उनकी दानशीलता

मालवीय जी ने कभी किसी से अपने निजी खर्च के लिए एक कौड़ी भी नहीं ली। वह बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उप-कुलपति भी बीस वर्ष तक रहे, लेकिन उप-कुलपति रहते हुए भी उन्होंने विश्वविद्यालय से एक कौड़ी भी नहीं ली उनका यह ध्येय था कि अपनी वाक्-शक्ति का जो उपयोग हो, वह उपयोग दूसरों की सेवा के लिए हो, न कि निजी स्वार्थ के लिए। यही कारण था कि उन्होंने यद्यपि काशी विश्वविद्यालय के लिए एक करोड़ से भी अधिक धन जमा किया लेकिन उससे एक पैसा भी नहीं लिया। डा० एस० राधाकृष्णन् (जो अब हमारे राष्ट्रपति हैं) जब मालवीय जी के बाद बनारस विश्वविद्यालय के उप-कुलपति हुए तब उन्होंने भी मालवीय जी के क़दमों का अनुसरण किया और अपनी सेवाएँ उस विश्वविद्यालय को अवैतनिक रूप से अर्पित कीं।

जहाँ मालवीय जी ने अपनी वाक्-शक्ति का उपयोग निजी कामों के लिए नहीं किया वहाँ पर-दुःख से कातर महामना मदनमोहन मालवीय आजीवन दूसरों की सेवा में अपनी वाक्-शक्ति का उपयोग करने में कभी नहीं हिचके। उनका यह व्रत कबीर के उस दोहे के अनुसार था, जिसमें कबीरदास जी ने कहा है--

"मरि जाऊँ मागूं नहीं, निज स्वारथ के काज।
परमारथ के कारने, मोंहि न आवत लाज॥"

इस देश में बड़े-बड़े दानवीर हुए हैं, पर महामना मदनमोहन मालवीय-सा दानवीर शायद ही कभी भी संसार में हुआ हो।

इसकी एक घटना का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा, यद्यपि ऐसी घटनाएँ मालवीय जी के जीवन में अनेक बार आयीं। मालवीय जी के ज्येष्ठ पुत्र, पं० रमाकान्त मालवीय, की अकाल मृत्यु हो जाने पर उनके पुत्र, और मालवीय जी के पौत्र, को यह चिन्ता सताने लगी कि प्रयाग में स्थित जार्ज टाउन के उनके बंगले पर जो ऋण है, वह कैसे अदा किया जाए। इसी चिन्ता में मालवीय जी के पौत्र दिन-रात डूबे रहते थे। इस ऋण को अदा करने के लिए पंजाब के गोस्वामी गणेशदत्त (जो पंजाब की सनातन धर्म-सभा के सभापति बरसों तक रहे) ने एक महाराजा से कहा कि मालवीय जी के ऊपर जार्जटाउन वाले बंगले का क़र्ज है और उसकी अदायगी की चिन्ता मालवीय जी को दिन-रात सताती रहती है। गोस्वामी जी के कहने से महाराजा ने तुरन्त पचास हजार रुपए की एक चेक लिखा और उसे लेकर मालवीय जी के पास गये। गोस्वामी गणेशदत्त ने उस समय का बड़ा ही रोचक वर्णन दिया है। अतएव निस्संकोच उसे हम यहाँ पर उद्धृत कर रहे हैं--

"पूज्यचरण मालवीय जी के ज्येष्ठ पुत्र का स्वर्गवास हो चुका था। उनके बंगले पर (जो प्रयाग स्थित जार्ज टाउन में था) कुछ ऋण बाकी था। इस कारण मालवीय जी के पौत्र बहुत चिन्तित रहा करते थे। पौत्र के दुःख से महाराज (मालवीय जी) भी दुखित थे। कुल पन्द्रह-बीस हजार रुपयों की बात थी। मुझे जब मालूम हुआ तब मैंने मालवीय जी के भक्त एक महाराजा साहब से इस बात की चर्चा की। महाराजा साहब मालवीय जी से मिलने काशी पधारे और जब वह उनसे मिले तब पचास हजार रुपयों का एक चेक देते हुए वह मालवीय जी से बोले--'महाराज, ये रुपये आपके व्यक्तिगत कार्यों के लिए हैं। इनका उपयोग व्यक्तिगत कार्यों के लिए जैसा आप चाहें वैसा करें।'

'मालवीय जी की आँखों में आँसू छलछला आए और उन्होंने महाराजा साहब को धन्यवाद देते हुए उस चेक को व्यक्तिगत कार्यों के लिए लेना अस्वीकार कर दिया। महाराजा साहब ने बहुत आग्रह किया, पर मालवीय जी नहीं माने।

'अन्त में महाराजा साहब ने मालवीय जी से कहा—'महाराज, आप तो विद्वान् शास्त्रज्ञ हैं। दिया हुआ दान कहीं वापस लिया जाता है? मैं यह चेक अब वापस कैसे ले सकता हूँ?'

'मालवीय जी ने मुझे बुलाया और चेक मुझे देते हुए बोले--'इसे सनातन धर्म महासभा के खाते में जमा कर दो। आधा सभा के लिए है और आधा धर्म-ग्रन्थों का संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित कराने के लिए है।"

× × ×

यह श्री पद्मकान्त मालवीय द्वारा प्रकाशित "मालवीय जी की जीवन-झलकियाँ" नामक पुस्तक से गोस्वामी गणेशदत्त के स्वलिखित एक लेख से मैंने उद्धरण दिया है। उस पुस्तक और मेरे उद्धरण में कुछ शाब्दिक अन्तर है, लेकिन वह नगण्य है; गोस्वामी जी की बात ज्यों की त्यों मैंने रख दी है। इसी एक घटना से मालवीय जी के जीवन की वह झाँकी मिल जाती है जिसे देखकर चित्त आनन्द से प्रफुल्लित हो उठता है। धन्य थे मालवीय जी, जिनके जीवन में व्यक्तिगत कार्यों के लिए ऐसे अनेक बार अवसर आए। जैसे महाराजा साहब के दिए दान को मालवीय जी ने ठुकरा दिया, वैसे ही अनेक बार व्यक्तिगत कार्यों के लिए न तो उन्होंने दूसरों के सामने हाथ पसारा और न निजी कामों के लिए दूसरों की सहायता लेना ही उचित समझा। ऐसे दानवीर थे मालवीय जी! कबीर का वह दोहा बार-बार मुझे याद आता है, जिसमें उन्होंने कहा था कि व्यक्तिगत कार्यों के लिए दूसरों की सहायता लेना अनुचित है, पर दूसरों के हित के लिए दान लेने में कोई आपत्ति नहीं। जिस आदमी ने काशी विश्वविद्यालय के लिए एक करोड़ से अधिक धन संचित किया, वह हमारे लिए पचास हजार की रकम को न लेकर एक अनुपम उदाहरण छोड़ गया है कि व्यक्तिगत कार्यों के लिए दूसरों का दान लेना निषिद्ध है।

यह तो हुई व्यक्तिगत कार्यों के लिए दूसरों से दान लेने की बात, पर मालवीय जी की दानशीलता की बात तो यहाँ आयी नहीं। उसका एक ही उदाहरण देना काफ़ी

होगा। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अर्थाभाव के कारण जो विद्यार्थी उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते थे, उनके अर्थ के अभाव को देखकर मालवीय जी सदा इस बात के लिए तत्पर रहते थे कि वह विश्वविद्यालय में धनाभाव के कारण शिक्षा से वंचित न हों। काशी विश्वविद्यालय में ऐसे अनेक विद्यार्थी थे और हैं जो धनाभाव के कारण उच्च शिक्षा से वंचित नहीं हुए, क्योंकि मालवीय जी का वरद् हस्त सदा उनकी पीठ पर रहता था। उनके लिए विश्वविद्यालय में दाखिले का निःशुल्क प्रबंध मालवीय जी स्वयं करते थे; इसीलिए काशी विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। मालवीय जी को निजी अनुभव था कि स्कूल की फीस देने में उनके माता-पिता को किस मुसीबत का सामना करना पड़ा था। आजीवन वह माता के 'कड़ों की कहानी' को नहीं भूले थे।

मालवीय जी की जीवनी

दूसरा खण्ड

मालवीय जी का प्रयाग की नगर-पालिका की, और उत्तर प्रदेश तथा केन्द्र की व्यवस्थापिका सभाओं की, सदस्यता

पहला अध्याय

मालवीय जी बहुत दिनों तक प्रयाग के नगर-बोर्ड के (इलाहाबाद म्युनिस्पैलिटी के) बरसों तक सदस्य रहे। उन्हें अन्य सदस्यों ने अपना उपाध्यक्ष भी चुना। उन्होंने कई नये मुहल्ले बसाये। लूकर गंज नामक मुहल्ला उन्हीं की कोशिशों का फल है। जिस समय इलाहाबाद में बीसवीं सदी के आरम्भ में प्लेग फैला तब मालवीय जी ने बड़ी तत्परता से लोगों की सेवा की। उनका नियम था कि दिन भर वह रोगियों की दवा-दारू करते और शवों की अन्त्येष्टि क्रिया का काम भी करते थे। इसका वर्णन हमने मालवीय जी की पत्नी, कुंदन देवी, के निधन के अध्याय में किया है।

सन् १९०२ में मालवीय जी का कार्य-क्षेत्र एक नगर-पालिका तक ही सीमित न रहकर सारे उत्तर प्रदेश में फैल गया। सन् १९०२ में ब्रिटिश सरकार ने मालवीय जी को व्यवस्थापक सभा का एक सदस्य नामजद किया। उस समय उसमें केवल १२ सदस्य होते थे। उन सबकी नियुक्ति सरकार ही करती थी। इसमें भी ज्यादातर अंग्रेज ही होते थे। आजकल की भाँति सदस्यों को आलोचना करने की सुविधा न थी। सदस्यगण केवल सलाह दे सकते थे। उसका नाम यद्यपि संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) की कौंसिल था परन्तु वास्तव में वह परामर्श ही दे सकती थी। इस संकुचित क्षेत्र में, इन बन्धनों के भीतर रहते हुए भी मालवीय जी ने समय-समय पर दृढ़ता के साथ जनता का पक्ष लिया। उदाहरण के लिए, सन् १९०३ में बुन्देलखंड में जमीन की बेदखली के कानून का मसविदा सरकार ने पेश किया। इस कानून की मालवीय जी ने बड़ी आलोचना की। उनके भाषण की धूम सारे प्रान्त में मच गयी। इसी तरह शिक्षा-प्रचार, सफाई, आदि में अधिक खर्च करने के लिए मालवीय जी सदा अपने भाषण में सरकार पर जोर डालते रहे।

जिस समय वाइसराय की केन्द्रीय कौंसिल का सुधार हुआ और उसमें जनता के प्रतिनिधियों को प्रान्तिक कौंसिलों के गैर-सरकारी मेम्बरों को चुनने का अधिकार मिल गया तब मालवीय जी और जौनपुर के नवाब अब्दुल मजीद जनता के प्रतिनिधि चुने गये। इस केन्द्रीय कौंसिल में मालवीय जी सन् १९१० से लेकर सन् १९१९ तक बार-बार चुने गये।

इस काल में मालवीय जी के विषय में हमने तीन विषयों को प्रधानता दी है—(१) प्रेस विधेयक, (२) काशी विश्वविद्यालय और (३) पंजाब हत्या-काण्ड। इन विषयों का मालवीय जी की जीवनी में विशेष स्थान है। यों तो मालवीय जी में भाषण देने की शक्ति अपार थी, क्या कांग्रेस में और क्या केन्द्र की व्यवस्थापिका सभा में कोई भी ऐसा महत्त्वपूर्ण विषय नहीं था, जिस पर उनके भाषण न हुए हों और उन भाषणों की विशेषता यह थी कि जिन विषयों पर वह बोलते थे, उन पर नयी रोशनी वह डालते थे। उनके भाषण विचारोत्पादक और शिक्षा-प्रद होते थे। जनता के पक्ष का समर्थन अपने भाषणों द्वारा वह सदा करते थे और केन्द्रीय सरकार को शिक्षा, सफ़ाई आदि के ऊपर अधिक खर्च करने के लिए हमेशा प्रोत्साहित करते और सलाह देते थे।

मार्ले-मिन्टो रिफार्म (सुधार) के अन्तर्गत केन्द्र और प्रान्त की कौंसिलों में जनता के प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि हुई। सरकार द्वारा मनोनीत करने के बजाय प्रान्तिक कौंसिल के गैर-सरकारी सदस्यों को केन्द्र की कौंसिल के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिल गया। मालवीय जी सन् १९१० से लेकर सन् १९१९ तक केन्द्र की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य रहे। सन् १९२० में मालवीय जी केन्द्र की व्यवस्थापिका कौंसिल में नहीं गये, यद्यपि मतदाताओं द्वारा केन्द्र की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों के चुनाव होने का विधान माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों में कर दिया गया था। वे अब प्रान्तिक कौंसिल के प्रतिनिधि नहीं रह गये थे, उन्हें मतदाताओं द्वारा चुना जाने का विधान नये सुधारों में कर दिया गया था।

असहयोग आन्दोलन के पहले क्रम में वह इस बात पर जोर देते थे कि हमारे विद्यार्थियों को कालेजों या स्कूलों का बहिष्कार न करना चाहिए, क्योंकि इससे सरकार का कुछ बनता बिगड़ता नहीं है, वरन् देश में शिक्षार्थियों की संख्या बहुत घट जाएगी। इस बात के विरोध के कारण वह असहयोग आन्दोलन में सन् १९२० में शरीक नहीं हुए। पर ज्यों-ज्यों गांधी जी से मालवीय जी का सम्बन्ध बढ़ता गया त्यों-त्यों वह उनके (गांधी जी के) प्रभाव में आने लगे। इसीलिए उन्हें बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता और प्रयाग के जेलों की हवा खानी पड़ी, लेकिन हर बार जेल की यातनाओं को उन्होंने फूल के समान समझा और अपनी मधुर मुस्कान से यातनाओं को साहस के साथ झेला, यद्यपि अंग्रेजी सरकार ने उनके आचार-विचारों को ध्यान में रखकर उनको हर प्रकार की सुविधाओं का प्रयत्न जेल में कर दिया था।

———

दूसरा अध्याय

प्रेस-विधेयक का विरोध

कहते हैं कि वाइसराय की कार्यकारिणी समिति के एक सदस्य भारतीय को (इंडियन को) बनाया जाए, इस बात पर भारत मंत्री और केन्द्र की सरकार सहमत थे। वाइसराय की कार्यकारिणी में जो भारतीय लिया जाए वह सर (बाद को लार्ड) सत्येन्द्र प्रसन्न सिनहा के नाम पर दोनों सहमत थे। लेकिन एक पक्ष और था। वह यह था कि कौंसिल में आने वाला प्रेस नियन्त्रण कानून का विधेयक का समर्थन स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले करें। उस समय गैर-सरकारी सदस्यों में सबसे अधिक प्रभावशाली नेता गोखले ही माने जाते थे। यदि उनका समर्थन इस कानून के लिए प्राप्त हो जाय तो वाइसराय की कार्यकारिणी समिति के सदस्य सर एस० पी० सिनहा बना दिये जाएँ, अन्यथा कोई भारतीय वाइसराय की कार्यकारिणी का सदस्य न चुना जाए।

मुझे ठीक तरह से नहीं मालूम कि वाइसराय की कार्यकारिणी समिति में किसी भारतीय के लिए जाने की शर्त केन्द्र की सरकार ने लगायी थी या सर एस० पी० सिनहा ने। कुछ भी हो इसके कारण गोखले जी बड़े असमंजस में पड़ गये। अन्त में उन्होंने यह तय किया कि वाइसराय की कार्यकारिणी समिति में किसी भारतीय का प्रवेश उनके प्रेस-विधेयक के विरोध के कारण न रुक जाए, अन्यथा इस विधेयक के विरोध के कारण वाइसराय की कार्यकारिणी समिति में किसी भारतीय के चुने जाने की संभावना खटाई में पड़ जाएगी। अतएव उन्होंने तय किया कि प्रेस-विधेयक के संबंध में उनका विरोध हल्का रहेगा क्योंकि वाइसराय की कार्यकारिणी समिति में किसी भारतीय का प्रवेश न हो सकेगा। उन्होंने वाइसराय की कार्यकारिणी समिति में भारतीय के प्रवेश को प्राथमिकता दी और प्रेस-विधेयक के संबंध में गोखले जी ने अपने विरोध को बहुत हल्का कर दिया।

इस घटना को लेकर गोखले जी की देश के भारतीय अखबारों में बड़ी निन्दा हुई और मालवीय जी की भारतीय समाचार-पत्रों में बड़ी प्रशंसा हुई। जब मालवीय जी ने यह देखा तब वह बड़े दुःखित हुए। मुंशी ईश्वर सरन से उन्होंने कहा कि 'गोखले कायर हैं और मैं बीर हूँ! यही वे (भारतीय अखबारवाले) कहते हैं। आह! कैसा दुःख है! यह बात कलेजे को टूक टूक करनेवाली है। मैं चाहता हूँ कि मैं भी उनके (गोखले के) साथ होता; लेकिन मेरे विश्वास ने इसे असंभव कर दिया है। यदि मैं अपने विश्वास के प्रतिकूल (कभी) आचरण करूँगा तो मैं अपना जनेऊ तोड़ दूँगा।' मुंशी जी का कहना है कि वह बड़े ही भावावेश में थे और अपने मित्र की कटु आलोचना को अत्यधिक अनुभव कर रहे थे।'

इसी घटना को लेकर श्री भगवानदास हालना ने जो लेख लिखा है उसको उद्धृत कर देना अनुचित न होगा। उनका (हालना जी का) कहना है—"सन् १९१० में प्रधान भारतीय कानूनी कौंसिल (केन्द्र की कानूनी कौंसिल) का अधिवेशन हुआ। उस

समय भारत के तत्कालीन वाइसराय उसके अध्यक्ष होते थे। प्रसिद्ध देशभक्त, लार्ड सत्येन्द्र सिनहा, भारतवासियों में पहले-पहल सन् १९०९ में वाइसराय की कार्यकारिणी कौंसिल के मेम्बर हुए थे। लार्ड सिनहा ने उस समय कौंसिल में भारत के अख़बारों का गला घोंटने वाला एक कानून पेश किया। उस समय श्री गोखले, श्री मधोलकर, डा० सच्चिदानन्द सिनहा, बाबू भूपेन्द्र नाथ बोस और पूज्य मालवीय जी आदि उस प्रधान भारतीय कौंसिल के मेम्बर थे। उस समय कांग्रेस में और देश में श्री गोखले की बड़ी तूती बोलती थी। वह बड़े योग्य, विचारवान् नेता समझे जाते थे। कौंसिल के मेम्बर की हैसियत से, उन्होंने समय-समय पर गवर्नमेन्ट के दमनकारी कानूनों का जैसा प्रभावशाली, अपूर्व और तीव्र विरोध किया है, वह मर्मज्ञों से छिपा नहीं है।

'देश के दुर्भाग्य से मिस्टर गोखले ने उक्त प्रेस कानून का समर्थन करना उचित समझा था। पूज्य मालवीय जी, उस कानून के विरोधी थे। श्री गोखले और मधोलकर ने पूज्य मालवीय जी को एकांत में समझाया कि आप भी कृपा कर इस कानून का समर्थन करें और विरोध न करें; यदि विरोध करेंगे, तो आप पर भी गवर्नमेन्ट की बुरी दृष्टि पड़ेगी और आप भी क्रांतिकारी दलवालों में समझे जाएँगे।

"अपने ऐसे योग्य और सम्मानित मित्रों के ऐसा कहने पर पूज्य मालवीय जी बहुत चिन्तित हुए कि हम क्या करें और क्या न करें और ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि तुम्हीं इस संकट से हमें उबारो। पूज्य मालवीय जी ने 'गजेन्द्र मोक्ष' का पाठ किया और ईश्वर से प्रार्थना की कि जैसे आपने गजेन्द्र की रक्षा की, उसी तरह हमारा संकट भी दूर करो। 'गजेन्द्र-मोक्ष का पाठ समाप्त करने पर पूज्य मालवीय जी के अन्तः करण में स्पष्ट रूप से यह प्रेरणा हुई कि वह बिलकुल ठीक हैं और बिना संकोच के हमें प्रेस-विधेयक का विरोध करना ही उचित है। यही बात उन्होंने श्री गोखले और श्री मधोलकर से कह दी कि 'भाई, चाहे गवर्नमेन्ट की मुझ पर भली दृष्टि लगे या बुरी, मेरे अन्तः करण में तो स्पष्ट रूप से इस कानून का विरोध करने की ही प्रेरणा हुई है; अतएव अब मैं तो कल, कुछ भी हो, प्रेस एक्ट का विरोध ही करूँगा'।

यह स्मरण रखने योग्य बात है कि उस सारी कौंसिल में पूज्य मालवीय जी और बाबू भूपेन्द्रनाथ बोस केवल इन दो ही सज्जनों ने उस प्रेस कानून का विरोध किया था। उसका समर्थन करनेवालों में श्री गोखले और श्री मधोलकर आदि अनेक सदस्य तो थे ही। यही नहीं, बिहार के प्रसिद्ध बैरिस्टर, डा० सच्चिदानन्द सिनहा, ने, जो 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में प्रसिद्ध संपादक थे, कौंसिल के सदस्य के रूप में इस अनर्थकारी कानून का समर्थन किया; यह भी न सोचा कि उनकी संपादकीय स्वतंत्रता तो कल ही से छिन जाएगी।

'महीने-दो महीने बाद श्री गोखले को अपना भ्रम स्पष्ट रूप से विदित हो गया कि इस प्रेस कानून का समर्थन करके उन्होंने वस्तुतः गलती की है। यहाँ इस घटना का उल्लेख करने का यही अभिप्राय है कि पूज्य मालवीय जी की बुद्धि बहुत ही पारदर्शी और तीव्र थी। उनमें यह बड़ी विशेषता रही है कि वह जिस बात को

ठीक समझते थे, उसका बहुत स्वतंत्रता और दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन करते थे, चाहे वैसा करने में कभी-कभी लोगों में उन्हें अप्रिय ही क्यों न होना पड़े। वह और लोगों का मुंह देखकर अपना मत स्थिर नहीं करते थे। प्रेस एक्ट का विरोध करने पर पूज्य मालवीय जी का नाम देश भर में गूंज गया। यह घटना मैंने स्वयं पूज्य मालवीय जी के मुंह से सुनी है। उस समय मेरा उनके 'अभ्युदय' से संबंध था।

यह बात श्री भगवानदास हालना ने लिखी है और इसके सबूत में उन्होंने यह भी लिखा है कि उसे उन्होंने स्वयं पूज्य मालवीय जी से सुनी थी। ऐसा ही इंग्लैण्ड को ऋण देने के विषय में या महात्मा गांधी का इनडेमनिटी बिल (क्षतिपूर्ति विधेयक) पर समर्थन होने पर भी अपने अन्तःकरण की दुहाई देकर मालवीय जी ने दोनों विधेयकों का विरोध किया था। उन्होंने केन्द्र की कानूनी सभा में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि अपने अन्तः करण की बात के सामने वह किसी और के कहने पर अपनी राय बदल नहीं सकते हैं।

———

तीसरा अध्याय

मालवीय जी का प्रेस विधेयक पर भाषण

आख़िर यह प्रेस विधेयक का मसला क्या था जिस पर गोखले जी और मालवीय जी में इतना बड़ा अन्तर पड़ गया कि अपने मत पर विश्वास करने के कारण वह गोखले जी का साथ न दे सके ? मालवीय जी का कहना था कि यदि मैं कभी अपने विश्वास के विरुद्ध काम करूँ तो मैं अपना यज्ञोपवीत तोड़ डालूंगा।

मालवीय जी के उस विधेयक के सम्बन्ध में भाषण का अनुवाद देना तो आवश्यक है।

यह याद रखने की बात है कि पं० मदनमोहन मालवीय ने सुप्रीम लेजिसलेटिव कौंसिल की सदस्यता की शपथ २५ जनवरी, सन् १९१० को ली और ४ फरवरी को इस विधेयक की प्रवर समिति में मालवीय जी का नाम आ गया। ८ फरवरी को मालवीय जी का इस विधेयक के सम्बन्ध में लम्बा भाषण हुआ। मालवीय जी के उस भाषण की रिपोर्ट फुलस्केप साइज़ के छपे हुए १२ पृष्ठों में दी हुई है। इसके बाद, संशोधनों पर विचारोपरान्त तात्कालिक गृह-मंत्री ने यह प्रस्ताव किया कि संशोधित विधेयक पारित कर दिया जाए। वह बहुमत से कौंसिल द्वारा मंजूर कर लिया गया।

मालवीय जी ने पहले ही यह आपत्ति की कि इस विधेयक को पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं। यह सही है कि जब सन् १८७८ में वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट पारित हुआ उस विधेयक के समय सिर्फ़ उसमें एक दिन की अवधि दी गयी थी, बड़ी जल्दी की गयी थी। जिस दिन वह पारित करने के लिए केन्द्र की कौंसिल में पेश किया गया उसी दिन वह पारित हो गया। इस विधेयक को पारित करने के लिए सरकार से हमें तीन या चार दिन दिये गये हैं। जिस समय यह विधेयक सरकारी गज़ट में प्रकाशित किया गया, उसके बाद सिर्फ़ तीन या चार दिन का अन्तर डालकर इस विधेयक को कौंसिल में पारित कराने के लिए पेश किया गया। यह समय बहुत थोड़ा है। यह विधेयक बड़ा महत्त्वपूर्ण है और मैं प्रार्थना करूँगा कि इस पर विचार करने के लिए अधिक समय देना चाहिए'। इस विधेयक के समर्थकों ने कोई भी ऐसी बात नहीं बतायी है जिसके कारण इतनी जल्दी इस विधेयक को पारित किया जाए। विधेयक की मालवीय जी को जो आपत्तिजनक बात मालूम हुई, वह यह थी कि कार्यकारिणी व्यक्ति के अधीन जमानत या प्रेस की ज़ब्ती का आदेश इस विधेयक में रखा गया है, न कि न्याय-पालिका (ज्युडीशरी) के अधीन इन बातों का निर्णय हो। इस सम्बन्ध में इंगलैण्ड के विपक्षी दल के प्रमुख नेता, श्री ग्लैड्सटन के उस भाषण का हवाला मालवीय जी ने दिया, जिसमें उन्होंने (श्री ग्लैड्सटन ने) ज़ोरदार शब्दों में मालवीय जी के वर्तमान पक्ष का समर्थन किया था। श्री ग्लैड्सटन का यह भाषण ग्रेट ब्रिटेन के हाउस आफ़ कामन्स में उस समय हुआ था, जिस समय भारत के वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट पर बहस वहाँ हुई थी। श्री ग्लैड्स्टन का कहना था कि जो विधेयक को अधिकार दिए गए हैं, उनका प्रयोग अदालतें करें, न कि कार्य-कारिणी। श्री ग्लैड्स्टन

की उस राय का हवाला मालवीय जी ने बड़ी योग्यता से दिया और उन्हीं दो बातों को लेकर भारतीय समाचार-पत्रों ने मालवीय जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और गोखले जी को 'कायर' तक कह डाला।

यह बात गोखले जी को बहुत दिनों तक खलती रही। इसका पता इस लेखक को उस समय लगा, जब उन्होंने इस लेखक से यह पूछा कि मालवीय जी की तुम्हारे उत्तर के समाचार-पत्रों में बड़ी प्रशंसा छपी है और मेरे लिए उतनी ही कटु आलोचना है। मैंने कहा कि आपकी योग्यता और आत्म-त्याग को लोग कैसे भूल सकते हैं। इस पर गोखले जी ने जो बात कही, उसका उल्लेख कर देना यहाँ पर आवश्यक है क्योंकि उससे मालवीय जी के आत्म-त्याग का कुछ आभास हमें मिलता है।

उस अवसर पर गोखले जी ने कहा, 'मैंने क्या आत्म-त्याग किया ? जिस समय पहले-पहल मैं फ़र्ग्युसन कालेज में अध्यापक के रूप में गया और पहले महीने का वेतन मुझे मिला उस समय मैंने अपने को बहुत बड़ा धनी समझा क्योंकि उतने रुपए मैंने कभी अपनी जिन्दगी में एक मुश्त नहीं देखे थे। यह पहला अवसर था कि इतनी बड़ी रक़म एक बार ही मेरे हाथ आयी। उनके शब्द थे कि 'आई लुक्ड अपान माई सेल्फ़ एज़ पार्सिंग रिच एट दैट टाइम, बट लुक एट मालवीय जी। ही गेव अप ओवर थ्री थाउजेंड रुपीज़ ए मंथ एट द बार। ही हैंड द बाल एट हिज़ फ़ीट बट ही रिफ़्यूज्ड टु किक इट'।

मालवीय जी ने यहाँ तक कहा कि यदि सरकार उनकी आपत्ति को मानने के लिए तैयार न हो और विधेयक को पारित करना आवश्यक समझे तो उनका वैकल्पिक प्रस्ताव यह था कि जैसे अब तक वैसे ही आगे भी जिस समय केन्द्र की सरकार या प्रान्तिक सरकार को किसी सम्पादक, प्रेस के प्रबन्धक या स्वामी या छापनेवाले को यह आदेश दे कि उससे जमानत ली जाए या ज़ब्त की जाए तब उसका निर्णय न्यायपालिका के अधीन कर दिया जाए। इसी प्रकार का नियम पचास वर्षों से चल रहा है। यह कहना गलत है कि अब तक केन्द्र की विदेशी सरकार सोती रही और उसने कोई क़ानून नहीं बनाए, जिनके द्वारा अराजकता का विष लोगों में न फैलने पाए। उन्होंने बहुत-से उन क़ानूनों का ज़िक्र किया जिनके द्वारा इस तरह के प्रचार को सरकार रोक सकती थी।

इसके बाद मालवीय जी ने कहा कि इस विधेयक के दूसरे पहलुओं पर विचार कर लेना चाहिए। बंगाल में अराजकता फैली, उसके राजनीतिक कारण हैं। सन् १९०५ के बाद बंगाल में यह अराजकता फैली है। उसके राजनीतिक कारणों की उपेक्षा कर केन्द्र की सरकार यह विधेयक पारित करने जा रही है। राजनीतिक अराजकता का उपाय राजनीतिक ढंग से होना चाहिए, न कि इस विधेयक द्वारा।

मालवीय जी और गोखले जी में इस बात पर मतभेद था कि जहाँ गोखले जी इस विधेयक को तीन वर्ष तक लागू करने के पक्ष में थे वहाँ मालवीय जी का यह मत था कि न्यायपालिका द्वारा इस बात का निर्णय होना चाहिए कि सम्पादक, प्रबन्धक, प्रकाशक या स्वामी वास्तव में अराजकता फैलाने के गुनहगार हैं या नहीं। उन्होंने घोर विरोध किया कि कार्यपालिका को जमानत मांगने या ज़ब्ती का अधिकार हो।

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद जब से देश स्वतन्त्र हुआ, तब से इस एक्ट के अन्तर्गत किसी प्रेस से जमानत नहीं मांगी गयी। आपत्ति के काल में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि किसी ऐसे प्रेस से जमामत मांगे या उस जमानत को जब्त करे, जिसके द्वारा देशद्रोह की आशंका हो। इसलिए गड़े मुर्दे उखाड़ने की न तो यहाँ पर कोई आवश्यकता है और न इस पर विवाद करने की कोई जरूरत है। विदेशी शासन के हट जाने से प्रेस वालों को जो संतोष हुआ, उसकी यहाँ पर चर्चा करना व्यर्थ है। न गोखले जी ही रहे और न मालवीय जी ही इस असार संसार में विद्यमान हैं।

———

चौथा—अध्याय

हिन्दू विश्वविद्यालय

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बिल २२ मार्च, सन् १९१५ के शुभ दिन पहली बार सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौन्सिल में पेश किया गया। लार्ड हार्डिज ने इस अवसर पर कौन्सिल की अध्यक्षता की। केन्द्र के तत्कालीन शिक्षा-मंत्री, माननीय सर हारकोर्ट बटलर, इस विधेयक को पेश करते हुए पहले बोले। उन्होंने कहा कि इस विश्वविद्यालय-कमेटी की यह उत्कट अभिलाषा है कि आपके राजत्व-काल ही में यह विधेयक पारित हो जाए। आपके नाम के साथ सदा इस विश्वविद्यालय का नाम लिया जाएगा। यह कहना झूठ न होगा कि यदि आप निरंतर इस विश्वविद्यालय के प्रति अपनी अभिरुचि, सहायता और स्वीकृति न देते, तो वह आज के दिन कौंसिल के सामने न आता। विश्वविद्यालय के प्रधान समर्थकों को धन्यवाद देने के बाद, उन्होंने यह बताया कि बिल को सरकारी गजट में सरकार प्रकाशित कर देगी। इसके बाद विधेयक प्रवर समिति के पास जाएगा और वह सितम्बर के अंत में पारित होगा। उन्होंने कहा कि दस वर्ष पूर्व यदि कोई कहता कि इस विधेयक को पारित कराने में भारत सरकार का सहयोग है तो वह पागल समझा जाता। इस विधेयक के जनाने में जो दिक्कतें थीं, उनको सरकार और विश्वविद्यालय कमेटी के सदस्यों ने मिलकर दूर करने में परस्पर सहयोग किया।

उन्होंने आगे चल कर यह कहा कि यह कोई साधारण अवसर नहीं है। आज हम भारतवर्ष में नये प्रकार का विश्वविद्यालय स्थापित करने जा रहे हैं। वर्तमान विश्वविद्यालयों से यह विश्वविद्यालय कई बातों में भिन्न होगा। इसके सब विद्यार्थी विश्वविद्यालय ही में निवास करेंगे और उनकी शिक्षा का प्रबंध विश्वविद्यालय ही करेगा। भारतवर्ष में जितनी जातियाँ और संप्रदाय हैं, उनके सब छात्रों को इस विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने का अधिकार होगा। लेकिन साथ ही, विश्वविद्यालय अनिवार्य रूप से हिन्दू छात्रों को हिन्दू धर्म की शिक्षा देगा। इसका सारा प्रबन्ध हिन्दू जाति करेगी। उसके प्रतिनिधि गैर-सरकारी व्यक्ति होंगे, जिनके हाथ में इस विश्वविद्यालय का प्रबन्ध होगा। मौजूदा विश्वविद्यालयों की निन्दा करना मेरा आशय नहीं है। सचमुच, उनके प्रति यह घोर कृतघ्नता और महान् अन्याय होगा। भारतवर्ष अपने वर्तमान विश्वविद्यालयों के, मानसिक जीवन और कर्तव्य-शीलता के लिए, ऋणी है। इस ओर उन्होंने बहुत काम किया है।

फिर, वह विश्वविद्यायय के संगठन पर बोलने लगे। चूंकि पं० मदनमोहन मालवीय ने इस विषय की अपने भाषण में विस्तृत व्याख्या की है, इसलिए हम सर हारकोर्ट की व्याख्या का सार नहीं दे रहे हैं।

सभापति को संबोधित करते हुए केन्द्र के तत्कालीन शिक्षा-मंत्री ने कहा—'कुछ लोगों को कहते मैंने सुना है कि इस विश्वविद्यालय का संविधान अनुदार है और आश्चर्य में मैंने अपनी आँखों को मला। वर्तमान विश्वविद्यालयों के संविधान की अपेक्षा इस

विश्वविद्यालय का संविधान कहीं अधिक उदार है। हमारी नीति विश्वास की नीति है। यह संविधान अविश्वास पर आधारित नहीं है। भारतवर्ष की सरकार ने हिन्दू-जाति के प्रतिनिधियों को पूर्ण रूप से यह अधिकार दे दिया है कि वे जिस तरह से चाहें उस तरह अपने विश्वविद्यालय का प्रबन्ध करें। सिर्फ़ एक रोक लगायी गई है। यदि सरकार को कभी यह ख़तरा मालूम होगा कि इस विश्वविद्यालय में कु-प्रबन्ध हो रहा है, तो उस समय वह अपने अफ़सरों को भेज देगी ताकि वे उसके कुप्रबन्ध को दूर कर सकें।

कई मिनट तक केन्द्र के तात्कालिक शिक्षा मन्त्री इस विधेयक के विषय में बोले। उनका व्याख्यान बड़ा लंबा है। उस सबको यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है। अपने व्याख्यान के अंत में उन्होंने कहा कि पिछले दिनों जब मैं रामनगर गया था, तब मैंने काशी के घाटों को देखा था और उस स्थान को भी देखा था जहाँ पर गंगा के किनारे शीघ्र ही इस विश्वविद्यालय के बड़े-बड़े भवन बनेंगे। मेरे मन में आया कि यदि मैं हिन्दू होता तो अपनी जाति के लोगों के इस उदार कृत्य को देख कर फूला न समाता। साथ ही मुझे कुछ थोड़ा-सा गर्व भी हुआ कि मैं उस सरकार का एक सदस्य हूँ जो प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के साथ आधुनिक पश्चिमी जगत् की संस्कृति का मेल कराने में सहयोग दे रही है।

सर हारकोर्ट बटलर के बाद माननीय सर सुन्दरलाल, माननीय सर गंगाधर चिटनविस, माननीय महाराजा मनीन्द्रचन्द्र नन्दी, माननीय श्री दादा भाई, माननीय श्री रायनिंगार, माननीय श्री गज़नवी, माननीय श्री दास, माननीय श्री सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, माननीय सर फ़ज़ल भाई करीम भाई, माननीय श्री शीतलवाद, माननीय श्री मनमोहन मालवीय और अंत में माननीय सर हारकोर्ट बटलर बोले। दो व्यक्तियों को—माननीय श्री गज़नवी और माननीय श्री शीतलवाद को—छोड़कर सभी सदस्यों ने इस विधेयक का स्वागत किया और वाइसराय को यह आश्वासन दिया कि हिन्दू जाति इस विधेयक के लिए सदा उनकी ऋणी रहेगी। इन दो सज्जनों का विरोध इस बात पर आधारित था कि जिस सांप्रदायिक विश्वविद्यालय की नीव इस विधेयक द्वारा डाली जा रही है, क्या वह साम्प्रदायिक विश्वविद्यालय विभिन्न जातियों में एकता पैदा करेगा या अलगाव की भावना को बल देगा। उनको भय था कि यह विश्वविद्यालय और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय विभिन्न जातियों में साम्प्रदायिक भावना को और भी प्रबल करेंगे क्योंकि ये दोनों साम्प्रदायिक संस्थाएँ विभिन्न जातियों में फूट के बीज बोएँगी और इनके कारण अलगाव की प्रवृत्ति बढ़ जाएगी। माननीय श्री मदनमोहन मालवीय ने इन दोनों व्यक्तियों के आक्षेपों का मुंह-तोड़ जवाब दिया।

माननीय श्री मदनमोहन मालवीय ने अपने व्याख्यान में अपने इन दोनों माननीय मित्रों के आक्षेपों का जो जवाब दिया था उसका सार-हम उनके शब्दों में—नीचे देते हैं।

उन्होंने कहा कि इन दोनों साम्प्रदायिक विश्वविद्यालयों के विरुद्ध जो आक्षेप लगाए गए हैं, उनका यही उत्तर है कि जिन लोगों ने जिन वर्तमान सरकारी विश्वविद्यालयों में शिक्षा पायी है, जहाँ किसी तरह की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती, क्या उनमें साम्प्रदायिकता या अलगाव का भेद-भाव नहीं पाया जाता? मेरा तो विश्वास है—मालवीय जी ने

कहा—कि अपने धार्मिक सिद्धान्तों की ठीक-ठीक शिक्षा पाने के कारण इन दोनों विश्वविद्यालयों में पढ़े छात्र अपने ईश्वर अपने सम्राट और अपने देश की सेवा पूर्ण रूप से करेंगे।

फिर उन्होंने उस आक्षेप का वर्णन किया, जो हिन्दू छात्रों को हिन्दू धर्म की अनिवार्य शिक्षा पर लगाये गये थे। उन्होंने कहा कि इस धारा का विधेयक से निकालना वैसा ही होगा जैसे किसी योजना का हृदय निकाल लिया गया हो। बहुत से लोग वर्तमान शिक्षासंस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का अभाव देखकर दुःखित होते हैं। इस कारण इस नये विश्वविद्यालय की स्थापना की आवश्यकता है, क्योंकि वर्तमान शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का जो अभाव है वह बहुत कुछ मिट जाएगा। मालवीय जी को विश्वास था कि जहाँ छात्रों में सच्ची धार्मिक भावना जड़ पकड़ेगी वहाँ विनम्रता का उन्नत भाव अवश्य उदय होगा और जहाँ ईश्वर में सच्ची भक्ति है वहाँ मनुष्यों में मनुष्यों के प्रति कम घृणा और अधिक प्रेम उत्पन्न होगा।

मालवीय जी ने आगे कहा कि यह कहा गया है कि जो दो नये साम्प्रदायिक विश्वविद्यालय स्थापित होने जा रहे हैं, उनके छात्रों में भेद-भाव की जो भावना है, वह अधिक न बढ़नी चाहिए।

माननीय श्री शीतलवाद ने यह भी कहा था कि इस विधेयक म जो एक धारा रखी गयी, उसको हटा देना आवश्यक है। उनकी आपत्ति थी कि इस विश्वविद्यालय विधेयक में एक धारा रखी गई है कि हिन्दू विश्वविद्यालय के कोर्ट में—जो इस विश्वविद्यालय की सर्वोच्च नियंत्रक संस्था होगी—हिन्दू के अतिरिक्त और कोई सदस्य नहीं हो सकता, उसे निकाल देना चाहिए। इस आक्षेप का उत्तर देते हुए मालवीय जी ने कहा कि यह विश्वविद्यालय वेदों को पढ़ाएगा और धार्मिक शिक्षा भी देगा। इसलिए इस विश्वविद्यालय में दो संस्थाओं का अलग-अलग विधान है। कोर्ट तो प्रबंधकारिणी समिति होगी, जो विश्वविद्यालय के वित्त को देखेगी और साधारण प्रबंध के लिए जिम्मेदार होगी। उसका यह काम होगा कि विभिन्न विषयों की पढ़ाई का, हास्टल का और दूसरी संस्थाओं के खोलने का प्रबंध करे। कोर्ट के अतिरिक्त, एक दूसरी संस्था होगी, जिसका नाम 'सेनेट' है। 'सेनेट' ही शिक्षण, परीक्षाओं और विद्यार्थियों के अनशासन के लिए जिम्मेदार होगी। श्रीमती एनीबेसेन्ट के अतिरिक्त, कोई भी गैर हिन्दू-अहिन्दू—कोर्ट में न रखा जाएगा। कोर्ट के सदस्य वे ही सज्जन हो सकते हैं, जिनको हिन्दुओं की धार्मिक भावना से सहानुभूति है। हिन्दुओं ने जो दान दिये हैं, उन्हें सन्तुष्ट किया जाना चाहिए कि उनके दानों का प्रबंध वे ही लोग करेंगे, जिनको उनके साथ धार्मिक सहानुभूति होगी, जो उनकी भावना का आदर करते हैं और उनकी इच्छाओं को समझते हैं। यदि विधेयक में यह धारा बनी रहेगी तो विश्वविद्यालय के दाता और भी अधिक मात्रा में दान देंगे। इस संबंध में लार्ड कार्नवालिस के समय का एक उदाहरण मालवीय जी ने दिया। सन् १७९३ में जब संस्कृत कालेज की नींव पड़ी और उसमें वेदों तथा अन्य हिन्दू धार्मिक पुस्तकों के पढ़ाने का का प्रबंध किया गया, तब उस समय कुछ पादरियों ने इसका विरोध किया। यह कैसी उलटी बात है कि एक क्रिश्चियन सरकार अ-क्रिश्चियन धर्म की पुस्तकों का प्रचार कर रही है? इसीलिए

इस विश्वविद्यालय की योजना जब बनी तब उसमें इस बात को बहुत समझ-बूझ कर रखा गया कि उसमें ऐसा कोई प्रतिबंध न लगाया जाए, जिसके कारण हिन्दू दानियों को कुछ भी शंका हो कि वे जो दान इस विश्वविद्यालय को दे रहे हैं, उसका प्रबंध अ-हिन्दुओं के हाथ में है। इसी कारण कोर्ट में किसी अ-हिन्दू को स्थान नहीं दिया गया है। लेकिन 'सेनेट' की सदस्या में इस तरह की कोई रुकावट नहीं है। उसके एक-चौथाई सदस्य अ-हिन्दू हो सकते हैं। 'सेनेट' में — इस विश्वविद्यालय का जो प्राण है — ऐसा कोई बंधन नहीं रहेगा हम अ-हिन्दुओं का सहकार का स्वागत करेंगे, अध्यापकों के चुनाव में कोई धार्मिक भेद-भाव नहीं किया जाएगा। इस विश्वविद्यालय के कालेजों में जो विद्यार्थी आयेंगे, उनमें भी कोई भेद-भाव नहीं होगा। मैं फिर कहता हूँ कि 'सेनेट' ही इस विश्वविद्यालय का प्राण है। उसका दरवाजा सबके लिए—हिन्दू और अहिन्दू के लिए — खुला है। अध्यापकों में कोई भेद-भाव नहीं होगा; उनके चुनाव में न सम्प्रदाय का और न जाति का कोई विचार किया जाएगा। पूर्व और पश्चिम से उत्तम अध्यापकों को हम बुलाएँगे ताकि इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थी उनके चरणों में बैठकर उस ज्ञान से लाभ उठावें जो उन्हें अपने गुरुओं से प्राप्त हो।

अंत में मालवीय जी ने कहा कि इस विधेयक के विषय में इससे अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं। इसका समय तो उस समय आएगा जब यह विधेयक प्रवर समिति से गुजर कर हमारे सामने पेश होगा। उन्होंने करोड़ों हिन्दुओं की ओर से तत्कालीन भारत सरकार को, अध्यक्ष को और सर हारकोर्ट बटलर को धन्यवाद दिया।

इसके बाद विधेयक को पेश करने की आज्ञा मिल गयी। तदनंतर माननीय सर हारकोर्ट बटलर ने कहा कि मैं इस विधेयक को केन्द्रीय कौन्सिल में पेश करता हूँ और भारत-गजट में अंग्रेजी में यह विधेयक प्रकाशित किया जाय और प्रान्तिक सरकारें जिन भारतीय भाषाओं में चाहें, उनमें तथा अंग्रेजी में इस विधेयक को प्रसारित करें। उनका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। उस दिन की सभा, इसके बाद, विसर्जित हुई।

काशी विश्वविद्यालय का अंतिम अंश

बसंत पंचमी के दिन सन् १९१५ में लार्ड हार्डिज के द्वारा काशी विश्वविद्यालय का शिलान्यास हुआ। उसके दूसरे दिन मालवीय जी ने एक सार्वजनिक सभा आयोजित की। इसमें अनेक राजे-महाराजे उपस्थित थे। उपस्थित सज्जनों और महिलाओं में श्रीमती एनी बेसेन्ट भी थीं। दरभंगा के महाराजा ने उस सभा में सभापति का आसन ग्रहण किया। जब और लोग बोल चुके, तब महात्मा जी के बोलने की बारी आयी।

महात्मा जी ने आरंभ ही में यह कहा कि जो राजा-गण आभूषण पहने हुए हैं, उन्हें क्या लाज नहीं आती? उनकी रिआया भूखों मर रही है, उनकी दवा-दारू का कोई इन्तजाम नहीं है। किसान भी मुसीबत झेल रहे हैं, उन्हें पानी की सख्त जरूरत है, लेकिन उन्हें पानी नसीब नहीं होता। ऐसी दशा में राजाओं का आभूषण धारण करना कहाँ तक उचित है? उन्हें चाहिए कि वे इन आभूषणों को त्याद दें और प्रजा की सेवा में लग जाएँ।

महात्मा जी के इन शब्दों को सुनकर राजा लोग हँसे और उनके बचनों को उपेक्षा के रूप में हँसी में उड़ा दिया।

इसके उपरान्त, महात्मा जी, क्रान्तिकारियों पर आ गये। उन्होंने क्रान्तिकारियों की देशभक्ति की बड़ी प्रशंसा की। इसपर श्रीमती एनी बेसेन्ट ने कहा—'स्टाप, मिस्टर गान्धी, स्टाप' अर्थात् गान्धी जी अपना बोलना समाप्त कर दें। पहले श्रीमती एनी बेसेन्ट सभा से उठीं और बाद में दूसरे राजाओं ने भी सभा से उठ जाना उचित समझा। इस तरह पहले दिन मालवीय जी द्वारा आयोजित सभा भंग हुई। इस दृश्य को देखकर मालवीय जी की बुरी दशा हुई। वह बीमार हो गये। मालवीय जी अपनी मोटर पर सवार होकर श्री शिव प्रसाद गुप्त की कोठी पर चले गये। गान्धी जी भी उसी मोटर पर मालवीय जी की बगल में बैठे, पर दोनों नेताओं में कुछ बातचीत नहीं हुई। महात्मा जी का विचार था कि किसी तरह मालवीय जी स्वस्थ हो जाएँ, यही ईश्वर की बड़ी कृपा होगी। कोठी पर पहुँचने पर, गान्धी जी ने मालवीय जी से कहा कि उन्हें बोलने ही नहीं दिया गया। बीच ही में सभा भंग हो गयी। क्रान्तिकारियों की हिंसा-प्रवृत्ति के विरुद्ध महात्मा जी बोलने वाले थे, लेकिन श्रीमती एनी बेसेन्ट के कारण वह न बोल सके, बीच ही में सभा भंग कर दी गयी।

मालवीय जी की बीमारी को सुनकर राजा-महाराजाओं का तांता श्री शिव प्रसाद गुप्त की कोठी पर लग गया। उनसे मालवीय जी ने गान्धी जी की बात कह सुनायी। राजा-महाराजाओं ने जवाब दिया कि यदि महात्मा जी के ऐसे विचार हैं तो कल फिर सभा की जाए और उसमें वे सब शरीक होंगे।

अतएव, मालवीय जी ने दूसरे दिन सभा बुलायी और गांधी जी का फिर ले भाषण हुआ। उन्होंने कहा कि क्रान्तिकारियों को हिंसा का मार्ग छोड़ देना चाहिए और अहिंसा का व्रत लेना चाहिए। हिंसा से देश की दशा सुधर नहीं सकती। वह तो अवनति के गड्ढे में गिरेगा। महात्मा जी अहिंसा के व्रती थे और क्रान्तिकारी हिंसा में विश्वास करते थे। उनकी देशभक्ति में किसी को संदेह नहीं था। जिस हिंसा मार्ग का उन्होंने अवलम्बन लिया था, वह ग़लत था, ऐसी महात्मा जी की धारणा थी। इसीलिए उन्होंने क्रान्तिकारियों से कहा कि वे हिंसा के मार्ग को छोड़कर अहिंसा के मार्ग पर आ जाएँ। इत्यादि बातें महात्मा जी ने बड़े बलपूर्वक और जोरदार शब्दों में कहीं, जिनका श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ा। राजे-महराजे भी, जो उनके भाषण को सुनने के लिए उत्सुक थे, प्रभावित हुए। इस तरह से इस सार्वजनिक सभा का अंत हुआ।

× × × ×

यहाँ पर एक बात का कहना अनुचित न होगा। मालवीय जी को काशी विश्वविद्यालय के लिए २५ लाख रुपए जमा कर संतोष न हुआ। जब वह कभी यात्रा पर जाते थे, तब वह अपने साथ विश्वविद्यालय का नक़्शा रखते थे। धनी यात्रियों के सामने वह उसे फैला दिया करते थे और ज्ञान के उस मंदिर का गुण-गान करने लगते थे, जहाँ पर हिन्दू-धर्म और संस्कृति की विशेष शिक्षा के साथ-साथ आधुनिक शिक्षाओं का भी प्रबंध था।

श्री जे० बी० कृपलानी के अनुसार वह कहते थे—'पवित्र गंगा के किनारे, महादेव विश्वनाथ की इस नगरी में, तीर्थ-यात्रा के इस पावन और प्राचीन स्थान में, इस काशी नगरी में, जहाँ महाराजा हरिश्चन्द्र ने दान में न केवल अपना सर्वस्व राज्य ही दे डाला था, वरन् अपने पुत्र और पत्नी को भी अर्पित कर दिया था, इस नगरी में जहाँ अनंत काल से बड़े-बड़े ऋषि-मुनि रहते थे और जहाँ उनमें से कुछ का स्थान अब भी है, जहाँ प्रत्येक हिन्दू को अपने अंतिम दिनों को बिताने और सांस लेने की इच्छा रहती है, व जहाँ असंख्य हिन्दुओं ने अपनी राख पवित्र गंगा में विसर्जित की है, प्राचीन काल ही से वह एक उच्च शिक्षा का स्थान था, जहाँ पर विद्यार्थी निःशुल्क उच्च शिक्षा पाते थे और उनके खाने-पीने का प्रबंध रहता था, ऐसे स्थान में मैं एक विश्वविद्यालय की स्थापना कर रहा हूँ जहाँ प्राचीन ज्ञान का सम्मिलन पदार्थ-विज्ञान और आधुनिक शिल्प-कला-विज्ञान के साथ होगा। ज्ञान-प्राप्ति में सहायता से बढ़कर अन्य कोई भी दान नहीं है। उदार हृदय के लोगों के लिए यह एक अनुपम अवसर है जब वे हृदय खोल कर दान दे पुण्य और अवधड़दानी बाबा भोलेनाथ की अनुकंपा सहज ही में प्राप्त कर सकते हैं।' ये बातें वह बोलचाल की भाषा में कहते थे। इस प्रकार मैंने—श्री कृपलानी जी कहते है—'कितने साथ के यात्रियों को दान के लिए वायदा करते देखा था।

कृपलानी जी के विचार से, गांधी जी के बाद मालवीय जी सबसे बड़े 'भिक्षुक' थे। उनके दान लेने की कथा कहाँ तक कही जाए ?

× × × ×

मालवीय जी ने जहाँ कहीं किसी धनी को देखा, उससे विश्वविद्यालय के लिए चंदा लेने की बात उन्होंने छेड़ी। उनका मन्तव्य था कि काशी विश्वविद्यालय के लिए वह करोड़ों रुपए जमा करें और उसमें वह नयी इमारतें बनाएँ जिनमें विद्यार्थियों के लिए सब प्रकार की शिक्षा सुलभ हो जाए। इसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी मिली। उनके नीरोग होने का मुख्य साधन था उनका काया-कल्प। उनके द्वारा उनको आयु बढ़ने की भी सम्भावना थी। इसीलिए उनको काया-कल्प की धुन सवार हुई। अंत तक उन्हें मोक्ष की परवाह नहीं रही। मरने के बाद भी वह भारत में पैदा होने और देश की सेवा करने के इच्छुक थे।

× × × ×

मालवीय जी ने आजीवन काशी विश्वविद्यालय की सेवा की, लेकिन उनका कथा-वाचन कभी न छूटा। हर पर्व में वह खुद कथा बाँचते थे या किसी दूसरे विद्वान् से कथा कहलाते थे। बरेली के कथावाचक, श्री राधेश्याम, ने ऐसे अवसरों पर कई कथाएँ कहीं, जिनका वर्णन उन्होंने अपने एक लेख में किया है।

———

पांचवाँ अध्याय

हिन्दू यूनीवर्सिटी विधेयक का अध्याय एक में प्रारम्भिक हाल दिया गया है। इस अध्याय में इस विधेयक की प्रगति की कहानी दी जाएगी।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल का यह अधिवेशन शिमले में हुआ क्योंकि स्वयमेव वाइसराय, लार्ड हार्डिग, सभापति की कुर्सी पर आसीन थे। उस दिन उन्होंने सभापति के आसन को अपने मंत्रियों में से किसी को नहीं दिया। यह अधिवेशन पहली अक्तूबर, सन् १९१५, को हुआ।

प्रश्नोत्तर के बाद, सबसे पहले तत्कालिक शिक्षा-मंत्री, सर हारकोर्ट बटलर बोले। उन्होंने अपने भाषण में जो कुछ कहा उसका सार नीचे दिया जाता है—

उन्होंने कहा कि यह विधेयक प्रवर-समिति से गुजर कर आज इस कौंसिल में पेश किया जाता है। उन्होंने कहा कि इस विधेयक के संबंध में कोई विवाद इस कौंसिल में खड़ा हुआ तो केन्द्र की सरकार इस विधेयक को वापिस लेने के लिए मजबूर हो जाएगी। उन्होंने विधेयक के विषय में उन आक्षेपों का जवाब दिया जो उसके सम्बन्ध में कुछ सदस्यों ने उठाए थे।

पहले तो उन्होंने इस विधेयक के सम्बन्ध में उसके रूप का वर्णन किया। उन्होंने यह स्वीकार किया कि यह विधेयक वर्ण-संकरी है। इस विधेयक के बनाने में केन्द्र की सरकार और हिन्दू-यूनीवर्सिटी कमेटी में जो समझौता हुआ, उसी को इस विधेयक में रखा गया। प्रवर-समिति ने कुछ संशोधन किये हैं। अतएव वास्तव में यह विधेयक वर्ण-संकरी है। उचित तो यह होता कि हिन्दू यूनिवर्सिटी कमेटी जिन निर्णयों पर पहुँचती वे निर्णय सरकार के सामने प्रस्तुत होते। लेकिन उस कमेटी ने उन फ़ैसलों को विधेयक का रूप देना उचित समझा। इसीलिए केन्द्र की सरकार को उस विधेयक को परस्पर समझौते के अनुसार ठीक करने में कुछ देरी लगी। यह विधेयक इस तरह से वर्ण-संकरी निकला। लोगों का यह एतराज बिल्कुल ठीक है कि यह बिल उस तरह का विधेयक नहीं है, जिस तरह के विधेयक आम तौर से केन्द्र की सरकार पेश किया करती है।

इतना कहने के बाद वे उन आक्षेपों की तरफ़ मुड़ गये जो इस कौंसिल के कुछ सदस्यों द्वारा इस पर लगाये गये थे। पहला आक्षेप इस विधेयक के सम्बन्ध में सदस्यों ने उठाया था कि इसमें 'हिन्दू' की परिभाषा नहीं दी गयी है। लेकिन आज तक किसी ने 'हिन्दू' शब्द की परिभाषा नहीं दी। देश में बहुत-सी संस्थाएँ हैं जिनको हिन्दू लोग दान देते हैं और इसलिए वह दान देते हैं क्योंकि उन संस्थाओं को वे हिन्दू मानते हैं। कौन हिन्दू है और कौन अहिन्दू है—इसका निर्णय विश्वविद्यालय के सक्षम अधिकारियों पर छोड़ देना उचित है। वही इस बात का निर्णय करेंगे कि किस छात्र को हिन्दू माना जाए और किसको अहिन्दू।

दूसरे आक्षेप का जवाब देते हुए शिक्षा-मंत्री ने कहा कि हिन्दू धर्म की लाजिमी शिक्षा के लिए विधेयक में किसी धारा के लगाने की जरूरत नहीं। अपने समर्थन में उन्होंने उन शिक्षा-संस्थाओं का हवाला दिया, जिनको हिन्दू, मुशलमान और ईसाई चलाते हैं और जिनमें धार्मिक शिक्षा उन्हीं के मतों के अनुसार लाजिमी दी जाती है। ऐसी दशा में विधेयक की धारा ४ (२) को रखने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि हिन्दू विश्वविद्यालय कानून के जरिए से नहीं बल्कि विश्वविद्यालय के स्टैट्यूटस में यह नया स्टैट्यूट बना सकती है जिनके द्वारा हिन्दू छात्रों के लिए हिन्दू धर्म की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय।

इन लांछनों का जवाब देने के बाद तात्कालिक शिक्षा-मंत्री ने प्रान्तिक और केन्द्रीय सरकारों के नियंत्रण की बात कही। उनके अनुसार प्रान्तिक और केन्द्रीय सरकारों में नियंत्रण में मतभेद होने की कोई सम्भावना नहीं है। इस सम्बन्ध में प्रान्तिक लेफ़्टीनेन्ट गवर्नर, सर जेम्स मेस्टन, की उदारता और कार्यकुशलता की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की। शिक्षा की वृद्धि में सर जेम्स का जो हाथ रहा उसकी उन्होंने बड़ी तारीफ़ की और कहा कि इस विश्वविद्यालय के 'विजिटर' के रूप में सर जेम्स मेस्टन का होना इस विश्वविद्यालय के लिए बड़े गौरव की बात है।

अपने प्रारम्भिक भाषण में यह भी कहा कि प्रवर-समिति के सामने उन्होंने यह कहा था कि कौन्सिल के सामने अपने भाषण में वह इस बात को स्पष्ट कर देंगे कि यदि किसी अध्यापक के विषय में कोई शिकायत हुई तो अध्यापक महोदय को अपनी सफ़ाई देने का पूरा मौका दिया जाएगा। उन्होंने इस बात पर पूरा जोर दिया कि प्रान्तिक और केन्द्रीय सरकारों में मतभेद की कोई सम्भावना नहीं है। उन्होंने अंत में कहा कि सरकारी नियंत्रण के विषय में वह किसी तरह का समझौता करने के विरोधी हैं। यह विधेयक यदि विवाद-ग्रस्त हुआ तो सरकार के लिए यह संभव नहीं है कि गैर-सरकारी सदस्यों में मतभेद होने के कारण यह विवाद-ग्रस्त विधेयक पारित किया जाए।

उनके सुनने के बाद श्री विजय राघवाचारी ने एक शाब्दिक संशोधन पेश किया। धारा ४ (१) में उनका संशोधन था कि जहाँ जातियों और धर्मों का जिक्र है वहाँ वर्गों का भी जिक्र करना उचित है। उनका यह संशोधन सर्व-सम्मति से स्वीकार किया गया। जो चार अन्य संशोधन इसी माननीय सदस्य के नाम थे, उन्हें उन्होंने वापस ले लिया। अब समय आया कि संशोधित विधेयक को पारित किया जाए। माननीय डा० सुन्दरलाल ने (जो बाद को 'सर' हुए) अपना भाषण दिया। वह बहुत संक्षिप्त था। उसमें उन्होंने अध्यक्ष महोदय और उनकी सरकार को उस सहायता के लिए बहुत धन्यवाद दिया और इसके लिए भी धन्यवाद दिया कि यह विधेयक इसी अधिवेशन में कौंसिल के सामने पेश किया गया। उन्होंने अपनी कृतज्ञता, विशेष रूप से प्रकट की, तात्कालिक शिक्षा मंत्री के प्रति जिन्होंने बड़े कौशल और सूझ-बूझ के साथ कौंसिल में इस विधेयक को पेश किया। उन्होंने उनकी बहुमूल्य सलाह और सहायता के लिए भी धन्यवाद दिया, जो उन्हें हर समय प्राप्त होती रही। उन्होंने कहा—'सौभाग्य से वह दिन आ गया है जब यह विधेयक कानून-पुस्तक पर अपना स्थान लेगा'।

बाद में उन्होंने कहा कि इस विश्वविद्यालय के लिए ८० लाख का चन्दा इस समय तक हो चुका है, जिसमें से ५० लाख विश्वविद्यालय के पास है। भारत सरकार से हर समय सहानुभूति पाने के लिए उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

माननीय डा० सुन्दरलाल के बाद माननीय सर गंगाधर चिटनवीस का भाषण हुआ। उन्होंने कहा कि व्यक्तिगत रूप से इस बिल में बहुत दोष हैं। यह समय समझौते का समय है जिसमें व्यक्तिगत आक्षेपों को स्थान नहीं मिलना चाहिए। विधेयक के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि इस विश्वविद्यालय का जो संविधान है उसमें सरकारी विचारों और विश्व-विद्यालय के दान-दाताओं के मतों में समझौता हुआ है। इसीलिए भारत सरकार इस पर सहमत हुई कि वर्तमान योजना को नये ढंग से लागू करने की आवश्यकता हुई। ऐसी दशा में यह सारहीन बुद्धिमत्ता होगी कि मौजूदा शर्तों को फ़िलहाल मान लिया जाए और विश्व-विद्यालय का बाद में जो विकास होगा, उसके प्रकाश में आयन्दा के संशोधनों पर विचार किया जाय।

अंत में बिल का स्वागत करते हुए उन्होंने कहा कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वास्तव में एक उपयोगी संस्था होगी और उससे जो छात्र निकलेंगे वे राजभक्त, शान्तिप्रिय और उद्यमी नागरिक होंगे।

उनके बाद माननीय महाराजा सर मनीन्द्रचन्द्र नन्दी बोले उन्होंने विधेयक का स्वागत किया उनके बाद माननीय पं० मदन मोहन मालवीय बोले। उन्होंने अध्यक्ष महोदय, माननीय सर हारकोर्ट बटलर और कौन्सिल के सदस्यों को धन्यवाद दिया और कहा—'वह नीति, जिसके द्वारा यह विधेयक कौन्सिल में पेश हुआ है, जनता में विश्वास की उदार नीति है और उनके साथ उनकी आशाओं और आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति की नीति है'।

आगे चलकर उन्होंने कहा कि इस विधेयक के विषय में पूर्व कथा कहने की कोई आवश्यकता नहीं है लेकिन कुछ लोगों की जानकारी के लिए यह बता देना जरूरी है कि इस तरह का विश्वविद्यालय स्थापित करने की योजना महामान्य काशीनरेश के सभापतित्व में सन् १९०४ में पहली बार प्रकाशित हुई थी, लेकिन कुछ कारणों से सन् १९११ तक यह योजना सुषुप्तावस्था में रही। सन् १९११ से सन् १९१५ तक इस विश्वविद्यालय की स्थापना की योजना अन्तिम रूप में कौंसिल के सामने पेश हुई। चार वर्ष की अवधि इस विश्वविद्यालय की स्थापना में लगी जब कि लन्दन विश्वविद्यालय की स्थापना में सात वर्ष लगे थे। इसी दौरान में उन्होंने अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी का स्वागत किया जिनकी स्थापना के लिए मुसलिम जाति के लोगों ने प्रचुर धन दिया है। उन्होंने यह आशा प्रकट की है कि दोनों विश्वविद्यालय—बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी और अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी आपस के भाईचारे में मिल कर काम करेंगी।

इस विधेयक की जो समालोचना हुई, उसका उन्होंने उत्तर दिया। पहला उत्तर तो उन्होंने इस बात का दिया कि सर्वसम्मति से बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की कमेटी ने यह प्रस्ताव किया था कि भारत के वाइसराय इस विश्वविद्यालय के पदेन चान्सलर हों लेकिन भारतमंत्री को यह बात मान्य न हुई। सरकार के साथ अन्त में जो समझौता हुआ, उसके

अधीन विश्वविद्यालय को अपना चान्सलर चुनने की स्वतंत्रता मिल गयी और उत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर इस विश्वविद्यालय के पदेन 'विजिटर' नियुक्त होंगे।

इस सम्बन्ध में उन्होंने यह कहा कि बाज मामलों में सरकार को यह अधिकार होगा कि वह विश्वविद्यालय को सलाह दे। उदाहरण के लिए यदि किसी अध्यापक की नियुक्ति विश्वविद्यालय में हो गयी, उस अध्यापक के विषय में सरकार को जितना मालूम होगा, वह विश्वविद्यालय को नहीं मालूम होगा। ऐसी दशा के होने पर यद्यपि इसकी बहुत कम संभावना है—जो पत्र-व्यवहार विश्वविद्यालय और सरकार के बीच में होगा, उसमें विश्वविद्यालय को अध्यापक के सम्बन्ध में सफाई देने का अधिकार होगा। यही आम तौर से सरकारी रिवाज है और यही विश्वविद्यालय के साथ बरता जाएगा।

हमारे कुछ सम्मानित देशवासियों ने भ्रमपूर्वक हिन्दू यूनिवर्सिटी कमेटी की स्थिति को समझने में भूल की है। उनका यह आरोप बिलकुल निराधार है कि इस कमेटी ने सरकारी नियंत्रण को बिना आपत्ति के मान लिया है। भविष्य में इस नियंत्रण की आवश्यकता नहीं पड़ेगी— ऐसी मेरी बलवती आशा है।

इसके बाद उन्होंने यह आशा प्रकट की कि भविष्य में इस अधिनियम में जो संशोधन होंगे और उनके सम्बन्ध में सरकार के विचारार्थ जो पत्र भेजेगा, उस पर सहानुभूति के साथ सरकार विचार करेगी। अंत में उन्होंने कहा कि इस विधेयक में जो भावी संशोधन होने को हैं उन पर पहले कोर्ट और सिनेट विचार कर लें। जब ये दोनों संस्थाएँ पूर्ण रूप से संगठित हो जाएँ; तब इस कौंसिल के सामने उन संशोधनों को पेश करना उचित होगा।

इसके बाद माननीय श्री दादा भाई का भाषण हुआ। उन्होंने अपने भाषण के आरम्भ में यह कहा कि उनके निर्वाचन क्षेत्र में अधिकतर मतदाता हिन्दू हैं और वे इसका स्वागत हर्षोल्लास के साथ करते हैं। उनका विचार है कि इस साम्प्रदायिक विश्वविद्यालय की स्थापना से हिन्दुओं के उच्चतम हितों की रक्षा करना संभव होगा। अतएव वे इस विश्वविद्यालय की स्थापना के अनुकूल हैं। ऐसी दशा में उन्होंने कहा—इस विधेयक का स्वागत वह करते हैं यद्यपि इस विधेयक के विषय में उन्होंने उन समालोचनाओं का उल्लेख किया जो इस विधेयक के विरुद्ध सम्मानित लोगों ने उठाए हैं।

इनके बाद माननीय श्री विजय राघवाचारी बोले। उन्होंने कहा कि 'मैं इस विधेयक का समर्थन करता हूँ इसलिए नहीं कि तात्कालिक शिक्षा-मंत्री ने इसका समर्थन किया है बल्कि इसलिए कि यह मेरा कर्तव्य है और विधेयक के गुणों और अवगुणों को जाँचने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इस विधेयक का समर्थन मुझे करना चाहिए'।

कई आक्षेप उन्होंने इस विधेयक पर लगाये हैं। उन आक्षेपों के लगाने में उनकी मन्शा केवल यह थी कि वह अपने विचारों को कौंसिल के सामने प्रकट कर दें यद्यपि उनके विचार तात्कालिक शिक्षा मंत्री तथा अन्य शिक्षा-शास्त्रियों के विचारों से मेल नहीं खाते। उनकी मंशा अपने व्यक्तिगत विचारों को कौंसिल के सामने रखना मात्र है ताकि उनका निराकरण हो सके। लेकिन अंत में उन्होंने इस विधेयक का स्वागत किया।

उनके बाद केन्द्र के कानून-मंत्री, सर अली इमाम, बोले। उन्होंने सिर्फ़ माननीय श्री विजय राघवाचारी की एक आपत्ति पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल ने अपने फ़ैसले में इस बात का निर्णय कर दिया है कि इंडियन कौंसिल एक्ट के अन्तर्गत इस कौंसिल को वे ही अधिकार प्राप्त हैं जो इंगलैण्ड की संसद् को प्राप्त हैं।

तदनन्तर केन्द्र के तात्कालिक शिक्षामंत्री, माननीय सर हारकोर्ट बटलर, बोले। उन्होंने बधाई दी कि इस संसद् में इस विधेयक पर जो बहस हुई वह संतोषजनक रही। उन्होंने महाराजा दरभंगा, डा० सुन्दरलाल और माननीय पं० मदनमोहन मालवीय को विशेष रूप से धन्यवाद दिया कि इस विधेयक के विषय में बहुत बार हम लोगों में बहस हुई और अंत में समझौता हो गया। भारत की सरकार इस विश्वविद्यालय के भविष्य के विषय में शुभ-कामना देती है। जब कुछ शर्तें पूरी हो जाएँगी तो भारत-सरकार इस विश्वविद्यालय को प्रतिवर्ष एक लाख रुपए का दान देगी।

अंत में यह विधेयक पारित हो गया और अधिनियम के रूप में देश के सामने आया।

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने एक पुस्तक निकाली है। उसका नाम है 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का इतिहास' वह अंग्रेज़ी में है। हिन्दी में भी उसका अनुवाद प्रकाशित करने की चेष्टा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय कर रहा है। इस पुस्तक को देखने से पाठकों को विधेयक और उसके संशोधनों का पूरा हाल मिलेगा)

———

छठवाँ अध्याय

सन् १९१७-१८ में ग्रेट ब्रिटेन को १४ करोड़ ४० लाख पौंडों का ऋण देने का विरोध मालवीय जी ने किया।

सन् १९१७ में मालवीय जी एक सौ मिलियन (एक मिलियन = दस लाख) पौंडों का कर्ज़ ग्रेट ब्रिटेन को देने के लिए सहमत नहीं हुए थे। उन्होंने इम्पीरियल कौंसिल में भी इस मसले को उठाया था, लेकिन अंत में उस प्रस्ताव को मालवीय जी ने वापस ले लिया।

सन् १९१८ में जब ४५० लाख पौंडों का अतिरिक्त ऋण ग्रेट ब्रिटेन को देने का सवाल उठा, तब मालवीय जी ने उसका भी विरोध किया। कौंसिल के चार सदस्यों ने महामना मालवीय जी का साथ दिया।

जिस समय १० करोड़ पौंडों का कर्ज ग्रेट ब्रिटेन को दिया जाने वाला था, उस समय उनके घर पर अनेक सज्जन उनसे मिले और उन्हें बहुत समझाया कि वह इस कर्ज़ का विरोध न करें परन्तु उनका अंतःकरण इस बात को स्वीकार करने को तैयार न हुआ। कोई उनका साथ दे या न दे, वह इस बात पर अडिग थे कि वह इस कर्ज़ का विरोध अवश्य करेंगे। उन्होंने वैसा ही किया, यद्यपि ग़ैर-सरकारी मेम्बरों में से किसी ने भी उनका साथ देना मंजूर न किया। मालवीय जी सदा अंतःकरण की आवाज के सामने किसी का कहना न मानते थे और जो बात उन्हें ठीक जँचती थी, वही वह करते थे। यह सिद्धान्त का मामला था, इस पर समझौता कैसा? उन्होंने जो कभी नहीं किया, उसका करना उनके लिए असंभव था। मुझे मालूम है कि कितना उन पर दबाव डाला गया, पर वह अपने संकल्प और सिद्धान्त के पक्के थे। इसीलिए उन्होंने किसी की बात न मानी। यद्यपि किसी ग़ैर-सरकारी मेम्बर ने उनका साथ न दिया, तो भी वह अपने सिद्धान्त को छोड़ने के लिए तैयार न थे।

इस दस करोड़ पौंड का क़र्ज़ ब्रिटेन को देने की एक उल्लेखनीय घटना है। पहले कौंसिल का यह नियम था कि अपने भाषण के अंत में सरकारी या गैर-सरकारी सदस्य इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में अपने प्रस्ताव को पेश कर सकता था। उसी के अनुसार मालवीय जी ने अपने विरोधी प्रस्ताव को अंत में पढ़ा और वापिस ले लिया। यह देखकर वाइसराय ने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल की नामावली में यह संशोधन किया कि जिस किसी सदस्य को कौंसिल में प्रस्ताव रखना हो वह उसे अपने भाषण के आरम्भ में पेश करे और तब उस पर भाषण करे।

यदि पहले ही से यह नियम होता तो अध्यक्ष पद से वाइसराय इसे तुरन्त नामंजूर कर देते और तब मालवीय जी का भाषण इस सम्बन्ध में न हो सकता। लेकिन मालवीय जी ने बुद्धिमत्ता की और अपना प्रस्ताव अंत में पढ़ा और उसे वापिस ले लिया। मालवीय जी ने नियमावली की इस त्रुटि को पहले ही से भाँप लिया था और नियमों के अन्दर रहते हुए भी अपना विरोध सबके सामने रख दिया। उसका क्या परिणाम होगा, इसकी इन्हें न कभी चिन्ता थी और न उन्होंने इस बात की कभी परवाह की कि कौन उनके साथ है और

कौन नहीं। उनका अंतःकरण जिसे ठीक समझता था, उसी को वह ठीक समझते और करते थे। धन्य है वह महापुरुष, जिसमें इतनी लगन और प्रेम अपने सिद्धान्त के प्रति हो।

हम पहले कह चुके हैं कि जब ४ करोड़ ५० लाख का अतिरिक्त कर्ज़ ग्रेट ब्रिटेन को देने की बात उठी तब भी मालवीय जी ने उसका विरोध किया। चार अन्य सदस्यों ने इस बार उनका साथ दिया। उनके नाम ये हैं— माननीय श्री खापरडे, माननीय श्री वी०जी० पटेल, माननीय श्री रंगस्वामी और माननीय श्री बी० एन० शर्मा। हमें दुःख है कि दूसरे ग़ैर-सरकारी मेम्बरों ने इस अवसर पर महामना मालवीय का साथ देना उचित न समझा।

मालवीय जी के इस अवसर पर दिये गये भाषण का सार हम संक्षेप में दे रहे हैं। उनके तर्कों का कोई जवाब संभव न था, पर ग़ैर-सरकारी बहुमत से यह प्रस्ताव मंजूर हो गया कि ग्रेट ब्रिटेन को ४ करोड़ ५० लाख पौन्डों का अतिरिक्त ऋण दिया जाए।

मालवीय जी की इस अवसर पर दलीलें क्या थीं? मालवीय जी ने कहा कि देश-भक्ति और राजभक्ति का यह तकाजा है कि प्रथम महायुद्ध में ग्रेट ब्रिटेन की जो भी सहायता हम कर सकें, वह करें। इसीलिए पहले ऋण का विरोध होते हुए भी अपने प्रस्ताव को उन्होंने वापिस ले लिया था। भारत बहुत ग़रीब देश है और ग्रेट ब्रिटेन की ४ करोड़ ५० लाख पौन्डों का अतिरिक्त कर्ज़ देने में वह असमर्थ है। यदि ग्रेट ब्रिटेन के स्वतंत्र उपनिवेशों की तरह वह भी मालदार होता तो दूसरी बात थी। शिक्षा और स्वास्थ्य के मामले में हम बहुत पिछड़े हैं। युद्ध के बाद इन दोनों मदों पर हमें बहुत रुपया खर्च करना पड़ेगा; इनके अलावा, युद्ध से लौटे हुए सिपाहियों की पेंशन आदि के लिए हमें सहायता करनी पड़ेगी। देश की जनता बहुत ग़रीब है, और उस पर अधिक बोझ डालना अन्याय होगा, इत्यादि बातें मालवीय जी ने कहीं। लेकिन उनकी बातों का अन्य ग़ैर-सरकारी सदस्यों पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। केन्द्र के तत्कालीन वित्त-मन्त्री ने यह पहले ही घोषणा कर दी थी कि यदि अधिकांश ग़ैर-सरकारी सदस्य इसके विरुद्ध होंगे तो सरकार इस प्रस्ताव को वापस ले लेगी। उन्हें मालूम था कि तत्कालीन सरकारी सदस्यों की मदद से इस तरह का प्रस्ताव कौंसिल में पास हो सकता था। फिर क्यों हिन्दुस्तानियों के लिए सरकार की ओर से यह घोषणा की गई कि यदि अधिकांश हिन्दुस्तानी सदस्य इस प्रस्ताव के विरोध में अपना मत देंगे तो सरकार इस प्रस्ताव को वापस ले लेगी। हिन्दुस्तानियों को बदनाम करने का यह अच्छा मौका था। यदि हिन्दुस्तानी सदस्य बहुमत से इस प्रस्ताव का विरोध करते हैं तो ग्रेट-ब्रिटेन के लोग यह झट से कहने लगेंगे कि हिन्दुस्तानियों को मान्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार न दिये जाएँ, क्योंकि उनमें दायित्व की भावना अभी कम है। यदि वे इसका समर्थन करते हैं तो इस अतिरिक्त ऋण के बदले में उन्हें वे सुधार दिए जा सकते हैं। इन सुधारों के लालच में पड़कर बहुत से सदस्यों ने अपने बहुमत से इस प्रस्ताव को मंजूर किया। किसी की नीयत पर हमला करने की हमारी इच्छा नहीं है, लेकिन कई वक्ताओं ने अपने भाषण में इस ओर इशारा किया था कि इस घोषणा का अर्थ यही है कि यह गुण भरा हंसिया है, उसे न लीलते बने और न मुँह के बाहर निकालते बने! इस प्रस्ताव के समर्थन में कई सदस्यों ने जो भाषण किये, उनसे यही ध्वनि निकलती है।

———

सातवाँ अध्याय

रौलट बिल का विरोध

मालवीय जी रौलट बिल संख्या २ पर कई बार बोले। उनके बोलते समय वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने अपने अध्यक्ष पद से तथा तत्कालीन गृह-मंत्री और तत्कालीन न्याय-मंत्री ने कई बार मालवीय जी को टोका। हर दफा मालवीय जी ने समुचित उत्तर देकर आपत्ति करने वालों का मुंह अपनी मधुर मुस्कान के साथ बन्द कर दिया। एक बार उन्हें रोष आया, जिस समय मालवीय जी पर तत्कालीन गृह-मंत्री ने व्यक्तिगत आक्षेप करना शुरु किया, यहाँ तक कि उनकी नेक नीयती पर भी आक्षेप उन्होंने किया, तब मालवीय जी से न रहा गया और उन्होंने कहा कि तत्कालीन गृहमंत्री का मेरे तर्कों का जबाब देना तो ठीक है लेकिन मेरे ऊपर बदनीयती का लांछन लगाना अनुचित है।

हमने ऊपर कहा है कि इस विधेयक के दूसरे पठन पर बोलते हुए मालवीय जी ने ढाई घन्टे तक भाषण किया और प्रायः संशोधनों पर युक्तिसंगत भाषण किये। जिन संशोधनों पर मालवीय जी ने भाषण किया, उनकी संख्या लगभग १९ है। हर बार विधेयक पर जो संशोधन गैर-सरकारी सदस्यों की ओर से पेश किये गये, उन सबका समर्थन मालवीय जी ने मत देकर किया। किसी गैर-सरकारी भारतीय सदस्यों ने या बर्मा के प्रतिनिधि ने इस विधेयक का समर्थन नहीं किया। मालवीय जी ने तीसरे पठन पर जो वक्तृता दी, वह गजब की थी लेकिन उनका जो भाषण इस विधेयक के दूसरे पठन पर हुआ वह अद्‌भुत था। दूसरे पठक के समय, विधेयक के आधार-भूत सिद्धान्तों को कौंसिल मानती है या नहीं, यही बात कौंसिल के सामने पेश थी और मालवीय जी ने अपने भाषण में इस विधेयक के आधार-भूत सिद्धान्तों की धज्जियां उड़ा दीं। यह कहना अनुचित न होगा कि सरकार का इस विधेयक को लाना सर्वथा अनुचित था। गैर-सरकारी सदस्यों ने सरकारी सदस्यों से अपील की, अनुनय-विनय की, लेकिन सरकार पहले ही से यह तय कर चुकी थी कि येन-केन-प्रकारेण इस विधेयक को सरकारी सदस्यों की सहायता से कौंसिल में पारित कराना है। यद्यपि कौन्सिल ने सरकारी बहुमत से इस विधेयक को पारित किया, पर वह कभी लागू न किया गया। भारत-सरकार की हठधर्मी को देखकर अचरज होता है। उदार भारत-मन्त्री, श्री मान्टेग्यू, का हाथ इस में साफ देखायी देता है कि यह विधेयक कौन्सिल में पारित होते हुए भी कभी इस देश में लागू नहीं किया गया। गैर-सरकारी सदस्यों की, इस विधेयक का विरोध करने में, विजय हुई। संभव है कि मांटेग्यू-चेम्सफार्ड-सुधार के कारण और उदार भारत-मंत्री की वजह से यह अधिनियम भारत में लागू न किया गया था और न आज तक लागू हुआ, यद्यपि यह विधेयक अधिनियम का रूप धारण कर चुका था। इस विधेयक के तीनों पठनों में सरकारी सदस्यों का बहुमत था और इसी वजह से वह अधिनियम के रूप में बन सका।

इस विधेयक के आधारभूत सिद्धान्तों पर मालवीय जी का जो भाषण हुआ, वह नीचे दिया जाता है। इसमें यथासंभव मेरे ही शब्द होंगे। महामना मालवीय जी के शब्दों का अनुवाद करने की चेष्टा नहीं की गयी है।

मालवीय जी ने पहले इस बात का उत्तर दिया कि तत्कालीन गृह-मंत्री का यह कहना गलत है कि इस विधेयक को पारित करने में गैर-सरकारी सदस्यों की बड़ी जिम्मेदारी है। इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि सरकारी सदस्यों की इस विधेयक को पारित करने में उतनी ही अधिक जिम्मेदारी होगी, जितनी गैर-सरकारी सदस्यों की। इसलिए दोनों को मिल कर यह विचार करना चाहिए कि यह विधेयक पारित किया जाए या नहीं। मालवीय जी ने सरकार से यह अपील की कि वह इस विधेयक को वापिस ले ले।

फिर उन्होंने उन प्रान्तों के नाम लिये, जिनके विषय में रौलट कमेटी की रिपोर्ट में अराजकता या क्रान्ति का कोई आरोप नहीं लगाया गया था। इन प्रान्तों के नाम हैं — (१) उत्तर प्रदेश, (२) बम्बई, (३) मद्रास, (४) मध्य प्रदेश, (५) असम और (६) बिहार। पंजाब में गदर पार्टी का जोर उन्होंने स्वीकार किया लेकिन सिक्खों की बृहत् सभा ने गदर आन्दोलन को दबा दिया और तब से वहाँ इस आन्दोलन का कोई नामो-निशान भी बाकी नहीं रह गया।

बंगाल के विषय में बोलते हुए उन्होंने कहा कि यह आन्दोलन—हत्या का आन्दोलन—तब शुरू हुआ, जब सब तरह से बंग आन्दोलन असफल साबित हुआ। देश के किसी भाग में अराजकता या विप्लव के साथ सहानुभूति नहीं है। हम चाहते हैं कि इसका अंत ठीक ढंग से किया जाए, गलत ढंग से नहीं।

इसके बाद उन्होंने इस विधेयक के आधारभूत सिद्धान्तों की आलोचना की, जो रौलट बिल के विषय में गैर-सरकारी कमेटी ने कहा है, उसी से बहुमत कुछ मिलता-जुलता है। अतएव उनके ढाई घंटे के भाषण को संक्षेप में देने के बजाय, हम पाठकों से यही अनुरोध करेंगे कि रौलट बिल के सम्बन्ध में जो कुछ गैर-सरकारी कमेटी ने कहा है, (जो अलग दिया गया है), उसे वे पढ़ने की कृपा करें।

आठवाँ अध्याय

पंजाब में मार्शल ला का विरोध

मालवीय जी पंजाब के मार्शल ला के लगने के विषय में साढ़े चार घंटे तक बोले। उनके इस भाषण से देश को पता लगा कि मार्शल ला के कारण पंजाब को क्या-क्या कष्ट उठाने पड़े। जब तक उनका यह भाषण नहीं हुआ था तब तक पंजाब के विषय में सारा देश अन्धकार में था। जब उनका यह भाषण हुआ तब देश को पता लगा कि मार्शल ला के कारण पंजाब के अंग्रेज अफ़सरों ने वहाँ पर मार्शल ला के लगने पर कितने अमानुषिक अत्याचार किए।

यह मसला इस तरह से उठा कि क्षति-पूर्ति के लिए सरकार एक विधेयक कौंसिल के सामने लायी। उस समय अध्यक्ष पद पर भारत के वाइसराय और गवर्नर-जनरल लार्ड चेम्सफ़ोर्ड थे। अध्यक्ष पद का इस्तेमाल उन्होंने किया और तत्कालीन गृह-मंत्री ने इस विधेयक को कौन्सिल के सामने उपस्थित किया। इस विधेयक का उद्देश्य था कि मार्शल ला के लगने पर पंजाब के अफ़सरों ने वहाँ की जनता पर जो अत्याचार किए, वे यद्यपि कानूनी नहीं थे लेकिन नेकनीयती से उन कामों को उन्होंने किया, उन्हें इस विधेयक द्वारा क्षमा प्रदान की गयी थी।

इस सारी बहस में न तो श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने, न श्री तेजबहादुर सप्रू ने, और न श्री श्रीनिवास शास्त्री ने कोई भाग लिया। यहाँ तक तो उनका ऐसा न करना किसी हद तक समझ में आ जाता है लेकिन इस विधेयक पर जो न बोले थे, उनमें श्री विट्ठल भाई पटेल का चुप रहना समझ में नहीं आता। इन चारो ने रौलट बिल के सम्बन्ध में जो बहस हुई उसमें बहुत बड़ा भाग लिया था, लेकिन इस विधेयक पर वे एकदम मौन रहे। मालवीय जी, डा० सच्चिदानन्द सिन्हा, श्री बी० एन० शर्मा और आसाम के प्रतिनिधि ने सरकारी पक्ष की जो धज्जियाँ उड़ाई, वह देखते ही बनती है।

एक और उल्लेखनीय बात है। मालवीय जी का जवाब देने के लिए पंजाब के तत्कालीन चीफ़ सेक्रेटरी, मिस्टर टामसन, भी मनोनीत किए गए थे। उनका मुख्य काम मालवीय जी को जवाब देना था, और इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने इस काम में बड़ी चतुरता दिखायी। मालवीय जी ने साढ़े चार घंटे के भाषण में जिन बातों की चर्चा की थी, उनका सिलसिलेवार उत्तर देकर पंजाब के तत्कालीन चीफ सेक्रेटरी ने सरकार की ओर से अपने पक्ष का समर्थन किया। उन्हें क्या मालूम था कि मालवीय जी की कही हुई बातें हन्टर कमेटी के सामने सिद्ध हो जाएँगी और गांधी (या ग़ैर सरकारी) कमेटी के सामने जो शहादत आयी उसमें सरकारी पक्ष की पोल खुल जाएगी। इसीलिए हमने पंजाब-काण्ड के सम्बन्ध में गैर-सरकारी कमेटी या गांधी-कमेटी को इतना महत्व दिया है कि उसके प्रतिवेदन के कई अध्यायों का सार हमने दिया है।

गांधी कमेटी ने अपने प्रतिवेदन में मालवीय जी के विषय में जो कुछ लिखा है उसका अनुवाद हम देना उचित नहीं समझते। मिस्टर टामसन का मालवीय जी पर जो आक्रमण हुआ, इस प्रतिवेदन में उसकी घोर निन्दा की और यह कहा कि सर्वमान्य नेता की नेकनीयती के विरुद्ध इस तरह का लान्छन लगाना सर्वथा अनुचित था, जब उनकी कही हुई बातें हण्टर कमेटी के सामने सरकारी गवाहों से साबित हो गयीं; लेकिन श्री टामसन अपने एक भाषण में यह कह चुके थे कि वह पंजाब के तत्कालीन ले० गवर्नर, सर माइकेल ओडायर, के हृदय से प्रशंसक हैं, और पंजाब में उन्होंने जो कुछ किया, वह सब ठीक था।

अब, आइए, इस क्षति-पूर्ति विधेयक (इन्डेमनिटी बिल) की चर्चा की जाए। १८ सितम्बर सन् १९१९ को इस विधेयक को कौन्सिल के सामने उपस्थित करते हुए तत्कालीन गृह-मन्त्री ने जो भाषण दिया, उसका सार यह था कि पंजाब में मार्शल-ला के दिनों में जिन अफ़सरों या अन्य लोगों ने नेकनीयती से कोई काम किए, उनको क्षमा प्रदान की जाए। यद्यपि उनके वे काम ग़ैर-कानूनी थे। इसके उत्तर में असम के सार्वजनिक प्रतिनिधि, माननीय श्री चन्दा ने विरोध में भाषण किया। उनके बाद माननीय श्री सरदार सुन्दर सिंह जी मजीठिया का भाषण हुआ। उन्होंने जो भाषण किया उसमें बहुत संकोच के बाद उन्होंने कहा कि मैं इस विधेयक के पक्ष में हूँ और अपने मित्रों से यह आशा करता हूँ कि वे ऐसे मसलों को न उठाएँ जिनकी जाँच के लिए सरकारी कमेटी नियुक्त हो रही है।

इसके बाद, मालवीय जी बोले। कई बार उनके इस भाषण के सिलसिले में तत्कालीन गृह-मन्त्री और तत्कालीन न्याय-मन्त्री ने टोका, पर हर बार अध्यक्ष की आज्ञा से मालवीय जी बोलते रहे। उनके इस भाषण का सारांश यहाँ देने की हमें कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती, जिसमें पंजाब की उन्हीं बातों का जिक्र है, जिनको देश भर में लोग अच्छी तरह से अब जान गये हैं; लेकिन जो उस समय पहली बार देश के सामने आयीं जब मालवीय जी बोले। मालवीय जी का कहना था कि जाँच पहले हो और तब इस तरह का विधेयक कौन्सिल के सामने लाया जाए। इसके विपक्ष में सरकारी मत था कि जाँच से इस विधेयक का कोई सम्बन्ध नहीं है। पंजाब के अफ़सरों या अन्य लोगों ने जो काम नेकनीयती से किये हैं उनके कामों को कानून का जामा पहनाया जाए। ऐसा सदा होता रहा है, और यही भारत सरकार को भी करना चाहिए।

मालवीय जी के बाद, माननीय श्री टामसन का भाषण हुआ। उन्होंने खुले दिल से उन सब बातों का समर्थन किया जो मार्शल-ला के पंजाब में लगने पर सरकारी अफ़सरों या अन्य लोगों ने किये थे, यदि वे काम नेकनीयती से किये गये हों। उनकी राय में किसी सरकारी अफ़सर या अन्य किसी आदमी ने ऐसा कोई काम नहीं किया, जो नेकनीयती से न किया गया हो। इसलिए पंजाब के अफ़सरों और दूसरे लोगों के कामों को आँख मूँद कर इस कौन्सिल को क्षमा करना चाहिए। जो पंजाब में हुआ, वह नेकनीयती से अफ़सरों या अन्य लोगों ने किया। वैसा करना सर्वथा उचित था।

मिस्टर टामसन के बाद माननीय मेजर मलिक सर उमर हयात खाँ बोले। उनके बाद माननीय महाराजा सर मनीन्द्रचन्द्र नन्दी बोले। जहाँ पहले वक्ता ने ज़ोरों से विधेयक का समर्थन किया था, वहाँ दूसरे वक्ता ने यह कहा कि पंजाब के मामले की जाँच

जितनी जल्दी हो सके, वह करायी जाए और तब तक के लिए यह विधेयक स्थगित कर दिया जाए। इसके बाद माननीय श्री वनम, माननीय श्री हेली, माननीय श्री सच्चिदानन्द सिन्हा, इत्यादि बोले। अंत में बहस के दौरान में जो बातें उठायी गयीं थीं, उनका जवाब तत्कालीन गृह-मंत्री ने दिया। कौंसिल ने बिल को पेश करने की अनुमति दे दी और उसके बाद तत्कालीन गृहमन्त्री ने इस विधेयक को पेश किया और यह भी कहा कि सरकारी गजट में यह विधेयक छापा जाए।

इस तरह दो दिन की बहस के बाद यह विधेयक कौंशिल में उपस्थित हुआ।

२४ सितम्बर को यह बिल फिर कौन्सिल के सामने आया। श्री मदन मोहन मालवीय ने फिर यह मांग की कि पहले इसे प्रवर समिति में जाना चाहिए और जब प्रवर समिति की रिपोर्ट मिल जाए तब विधेयक पर विचार करना चाहिए। अपने संशोधन को पेश करते हुए श्री मालवीय जी ने बहुत से प्रमाण दिए लेकिन अंत में अध्यक्ष के फ़ैसला देने के बाद यह तय हुआ कि मालवीय जी कोई संशोधन नहीं पेश कर रहे हैं बल्कि विधेयक का विरोध कर रहे हैं। मालवीय जी का पक्ष सरकारी और ग़ैर-सरकारी बहुमत से गिर गया और उनके समर्थन में पांच सदस्यों ने बहस में भाग लिया। कई संशोधन इस विधेयक के सम्बन्ध में पेश हुए लेकिन सरकारी और ग़ैर-सरकारी बहुमत से अस्वीकार कर दिये गये। माननीय डा० सच्चिदानन्द सिन्हा का एक संशोधन स्वीकार किया गया, उसकी भी रोचक कहानी है।

बात यह हुई कि माननीय डा० सच्चिदानन्द सिन्हा विधेयक के विषय में—विधेयक की प्रस्तावना के विषय में—जब बोल रहे थे तब तत्कालीन गृह-मंत्री ने यह वायदा किया था कि यदि माननीय सदस्य की आपत्ति विधेयक की प्रस्तावना के विषय में है तो उसके सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है। इसी वायदे के सिलसिले में तत्कालीन गृह-मन्त्री ने एक संशोधन पेश किया जिसे कौंशिल ने सर्व-सम्मति से स्वीकार कर लिया।

बाकी संशोधनों के विषय में श्री मालवीय जी का समर्थन भाषणों द्वारा प्राप्त था; पर वे सब सरकारी या ग़ैर-सरकारी बहुमत से नामंजूर कर दिए गए। जब ता० २५ सितम्बर को विधेयक के तीसरे पाठन की नौबत आयी तब श्री मालवीय जी ने माननीय श्री टामसन की अनर्गल बातों का जवाब दिया। इसके बाद तीसरे पाठन पर श्री मालवीय जी के बाद श्री टामसन बोले और अपनी कही हुई बातों का एक बार फिर समर्थन किया। उन्होंने कहा कि उदासीन मनुष्य अपनी झेंप को मिटाने के लिए दूसरों पर हमला करता है। माननीय मालवीय जी के सारे आक्रमण विफल हो गये। माननीय पंडित जी का पूंछ का फटकारना इस बात का सबूत है कि वह कितने उदास हैं। इसके बाद माननीय मेजर मलिक सर उमर हयात खाँ बोले। उनके बाद माननीय डा० सच्चिदानंद सिन्हा की बारी आयी। उन्होंने अपने भाषण में माननीय श्री टामसन के तर्कों का जवाब दिया और श्री मालवीय जी के पक्ष का समर्थन किया। उनकी यह वक्तृता बड़े ठाठ की हुई। अन्य कई सदस्यों ने इस विधेयक के तीसरे पाठन पर भाषण किये। उनके नाम गिनाने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन्होंने अपने-अपने पक्षों ही का समर्थन किया था। इस तरह कौंसिल ने सरकारी और ग़ैर-सरकारी बहुमत से इस विधेयक को पारित कर दिया।

पंजाब-काण्ड की बात बहुत पुरानी है और गड़े मुर्दे उखाड़ने की हमें कोई आवश्यकता

नहीं जान पड़ती। लेकिन प्रश्न यहाँ पर यह है कि विधेयक पर बहस से मालवीय जी के हाथ क्या लगा? यह स्पष्ट है कि मालवीय जी इस विधेयक में जो संशोधन करवाना चाहते थे, वे नहीं हुए। यह भी सही है कि जब महात्मा गान्धी तक ने इस बिल का समर्थन कर दिया था तब ग़ैर-सरकारी सदस्यों को बल मिल गया कि वे भी इस बिल का दिल खोलकर समर्थन करें, लेकिन अंत तक मालवीय जी अभिमन्यु की तरह इस विधेयक के विरोध में बोलते रहे। अतएव यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस विधेयक का विरोध करने से मालवीय जी के हाथ क्या लगा।

हमारी राय में मालवीय जी को इस विधेयक के सिलसिले में अपनी स्थिति को साफ़ करने के लिये यह कहना पड़ा कि यद्यपि महात्मा जी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा है, और उनके मतों का वह पूर्ण रूप से आदर करते हैं, लेकिन उनसे भी बढ़कर उनके अन्तः करण की आवाज है। उस आवाज के विरुद्ध वह कदापि नहीं जा सकते। उन्होंने कहा—'मेरा अन्तः करण मुझे यह बताता है कि इस रूप में इस विधेयक को पारित न होना चाहिए, जैसा वह है। यह महात्मा जी से भी ऊँची आवाज है'।

एक तो मालवीय जी को अपनी स्थिति साफ़ करने का मौक़ा मिला और दूसरे उनके भाषणों का यह फल हुआ कि पंजाब में मार्शल-ला के दिनों में अफ़सरों ने जो अत्याचार जनता पर किए थे उनका कुछ हाल लोगों को मालूम हो गया। पंजाब सरकार की विज्ञप्तियों से वहाँ का हाल अन्य प्रदेशवालों को पता नहीं लगता था। यह पहला अवसर था जब मालवीय जी के कौंसिल में भाषण से लोगों को सच्ची बातों का पता लगा, उसके बाद तो हंटर कमेटी के सामने जो शहादत हुई या गान्धी कमेटी (ग़ैर-सरकारी कमेटी जिसे हमने कहा है) के प्रतिवेदन से लोगों को बहुत कुछ हाल पंजाब के विषय में हासिल हुआ और उन्हें सच्ची बातों का बोध हुआ। सरकारी विज्ञप्तियों में तो अन्य प्रदेश वाले यही समझते थे कि पंजाब में अराजकता फैल गयी है और मार्शल-ला से पंजाब के लोगों का ढाढस बंध गया है। लेकिन सरकारी विज्ञप्तियों को अन्य प्रदेश वाले ठीक न समझते थे। जैसे आज दिन चीनी अख़बारों में प्रकाशित विज्ञप्तियों को हम ठीक नहीं समझते और न यही समझते हैं कि वे सही-सही बातों का सच्चा विवरण देंगे। वही हाल तब के भारत का था कि अंग्रेजी सरकार के कथनों को कोई भी अन्य प्रदेश वाला ठीक नहीं समझता था। मालवीय जी के भाषणों से पंजाब के विषय में मार्शल-ला के दिनों में जो कच्चा और सच्चा हाल मिला, उसने अन्य प्रान्त वालों की आँखें खोल दीं। यह दूसरा परिणाम मालवीय जी के भाषणों का है। उस ससय के लिए बहुत आवश्यक था कि भारत के अन्य प्रदेशों को पंजाब के मार्शल-ला के विषय में सही बोध हो जाए। अब, इस समय, दैव के विधान से न तो मालवीय जी इस लोक में हैं और न माननीय मिस्टर टामसन। दोनों ही उस निद्रा में सो गये हैं, जिसका अन्त नहीं। लेकिन उसके पारस्परिक विद्वेष को हमें भूल जाना चाहिए और जो कटु वचन मालवीय जी के-से प्रतिष्ठित नेता की शान में उन्होंने कहे उन्हें भुला देना ही माननीय श्री टामसन के साथ उदारता का व्यवहार होगा। न्याय करने वाला तो ईश्वर है और उस न्याय को उसी हाथ में छोड़ देना हमारा कर्तव्य है। हम कौन हैं, जो दूसरों का न्याय करें।

नवाँ अध्याय

गैर-सरकारी या गाँधी कमेटी की प्रस्तावना

आदि में इस गैर-सरकारी कमेटी ने उस पत्र की प्रतिलिपि दी है, जो उसने अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन के सभापति, पं० मोतीलाल जी के नाम लिखा था।

उस पत्र में इस कमेटी ने यह कहा है कि पं० मोतीलाल नेहरू पहले इस कमेटी के एक सदस्य थे। उनके कांग्रेस के सभापति हो जाने पर कोई दूसरा नाम उनके स्थान में नहीं रखा गया क्योंकि उस समय तक कमेटी के सामने जो शहादत आनी थी उसका काम पूरा हो चुका था। आगे चलकर कमेटी ने कहा कि इस कमेटी के पहले सदस्य मौलाना फ़ज़लुहक़ रखे गये थे। लेकिन कार्य वश उन्हें कलकत्ते जाना पड़ा। अतएव उनके स्थान में श्री एम० आर० जयकर का नाम इस कमेटी में रखा गया। इस तरह कमेटी के सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं :- (१) श्री मोहनदास कर्मचन्द गाँधी (सभापति), (२) श्री चित्त-रंजन दास, (२) श्री अब्बास तैय्यब जी, और (४) श्री एम० आर० जयकर।

इस कमेटी को हमने गैर-सरकारी कमेटी कहा है क्योंकि पंजाब में मार्शल-ला की जाँच के लिए जो सरकारी कमेटी बनी थी, उसके सभापति लार्ड हन्टर थे और कमेटी के सभापति के नाम उस कमेटी का नामकरण होता है। अतएव सरकारी कमेटी को हमने यहाँ हन्टर कमेटी और गाँधी कमेटी को गैर-सरकारी कमेटी कहा है।

इस टिप्पणी के बाद, संभव है, किसी को भी भ्रम न होगा कि गैर-सरकारी कमेटी से हमारा क्या अर्थ है। गैर-सरकारी कमेटी के सभापति महात्मा गाँधी थे। उसे गाँधी कमेटी न कहकर हमने इन अध्यायों में उसे गैर-सरकारी कमेटी कहा है ताकि हन्टर कमेटी या सरकार द्वारा नियुक्त कमेटी का भेद पाठक को खुद मालूम हो जाए।

इस वक्तव्य के बाद गैर-सरकारी कमेटी या गाँधी कमेटी और सरकारी कमेटी या हन्टर कमेटी का भेद आसानी से पाठकों को समझ में आ जाएगा।

दसवाँ अध्याय

पंजाब कांड

पहले अध्याय को छोड़कर दूसरे अध्याय से इस प्रतिवेदन का बहुत संक्षिप्त सार हम प्रारम्भ करते हैं। दूसरे अध्याय में यह कहा गया है कि सर माइकेल ओडायर के शासन में किस तरह से पंजाब की जनता बिगड़ गयी थी। शिक्षित वर्गों के ख़िलाफ़, खास तौर से, सर माइकेल ओडायर की क्रूर दृष्टि थी। राजनीतिज्ञों को वह व्यर्थ का आदमी समझते थे। उनका कहना था कि जनता के नेता वे लोग हैं जो राजनीति में भाग नहीं लेते बल्कि स्थानीय जनता के ऊपर जिनका प्रभाव है। रङ्गरूटों के ऊपर उनकी कृपादृष्टि थी, लेकिन जिस तरह से फ़ौज में उनकी भर्ती की गयी और अंग्रेज सरकार को सहायता देने के लिए 'वार फन्ड' आदि खोले गए, उनसे जनता में रोष फैल गया और इस कारण पंजाब के नगरों में वह हड़ताल हुई जिसका सानी हिन्दुस्तान के किसी नगर में नहीं मिल सकता। बारूद तो सर माइकेल ओडायर के कारण पहले ही से समाज में फैल गयी थी, उसको चिनगारी देने की जरूरत थी कि वह फट पड़े।

सर माइकेल ओडायर ने जो भूलें कीं, उनमें से एक थी डिफेन्स आफ़ इन्डिया ऐक्ट के अन्तर्गत उन्होंने लोकमान्य बालगंगाधर तिलक और श्री विपिनचन्द्र पाल ऐसे प्रतिष्ठित नेताओं को पंजाब जाने से रोक दिया। दूसरी भयंकर भूल जो उन्होंने की, वह महात्मा जी को पंजाब से बाहर निकाल देने की आज्ञा दी और डा० किचलू और डा० सत्यपाल को नजर-बन्दी की आज्ञा दी। महात्मा जी को निकालने और अमृतसर के दो नेताओं की गिरफ्तारी से आग और भी भड़की और जो कुछ अमृतसर में हुआ, यद्यपि वह निन्दनीय है, उसका सारा दोष कमेटी वालों ने सर माइकेड ओडायर की नीति पर थोपा है। पाँचवें अध्याय के दूसरे भाग में अमृतसर में मार्शल-ला के अन्तर्गत जो अत्याचार हुए, उनका विशद वर्णन हम कर देना चाहते हैं ताकि लोगों को मालूम हो जाए कि मार्शल-ला के अन्तर्गत और जगहों में भी वैसे ही अत्याचार हुए होंगे। यों तो इस अध्याय के दूसरे भाग में जिसमें जिन स्थानों में मार्शल-ला के अन्तर्गत अत्याचार हुए, उनका वर्णन मिलेगा। इन स्थानों के नाम हैं :—अमृतसर, तरनतारन, लाहौर, कसूर, पत्ती व खेमकरण, गुजरांवाला, वजीराबाद, निज़ामाबाद, अकालगढ़, रामनगर, हाफ़िज़ाबाद, सांगलाहिल, मोमन, मनियांवाला और उसके पड़ोसी स्थान, नवांपिण्ड, चहड़खाना, थोबूपुरा, लायलपुर, गुजरात, जलालपुर और मलकवाल। ये सब स्थान इन पाँच जिलों में हैं जिनमें मार्शल ला प्रसारित किया गया था (१) अमृतसर (२) लाहौर (३) गुजरांवाला (४) गुजरात और (५) लायलपुर।

अमृतसर की कहानी काफी लम्बी है और लगभग तीस पृष्ठों में उसकी कथा इस प्रतिवेदन में कही गयी है। संक्षेप से उसका सार हम यहाँ देना चाहते हैं ताकि लोगों को

पता लग जाए कि अमृतसर में किस तरह मार्शल-ला के लगाने पर अत्याचार हुए और किस तरह चुन-चुन कर नेताओं को जलील किया गया।

सिर्फ़ शिक्षित वर्ग ही को मार्शल-ला के अन्तर्गत यदि जलील किया गया होता तो कोई बात भी थी; लेकिन शिक्षितों और अशिक्षितों में सर माइकेल ओडायर के शासन ने कोई भेद नहीं किया, और हर तरह से इस बात की चेष्टा उसने की कि अमृतसर में या अन्य स्थानों में जो राजनीतिक चेतना जगी है, उसका अन्त कर दिया जाए। इसीलिए जनता को सबक सिखाने के लिए अमृतसर का प्रसिद्ध गोलीकान्ड हुआ और वहाँ पर और बहुत से कुकृत्य किए गए, जिनके कारण जनता में तूफान-सा आ गया। दब तो जनता उस समय गयी थी, लेकिन मालवीय जी आदि के पहुँचने पर लोगों का दबा हुआ जोश दुगुना हो गया।

अमृतसर में क्या हुआ और क्या नहीं हुआ! तारीख ६ अप्रैल, सन् १९१९ को वहाँ पर हड़ताल मनायी गयी। वैसी हड़ताल देश के किसी अन्य नगर में देखी नहीं गयी। ९ अप्रैल को रामनवमी का त्योहार हिन्दुओं ने मनाया और उसमें हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर त्योहार की खुशियाँ मनायीं। दो जातियों के इस बढ़ते हुए परस्पर मेल को देखकर सर माइकेल ओडायर आग बबूला हो गया और उन्होंने आज्ञा दी कि अमृतसर वालों को इसका सबक़ सिखाया जाए ताकि वे आयन्दा ऐसी हरकत न करें। १३ अप्रैल को जलियाँवाला बाग़ में गोलीकान्ड हुआ जिसमें प्रतिवेदन के अनुसार लगभग १,००० आदमियों की मृत्यु हुई। उन्होंने यह गलत लिखा है कि सेवा-समिति के हतों के आँकड़े ५०० थे। यह बात सही है कि हमारी सेवा-समिति के स्वयंसेवकों ने पंजाब के तमाम ज़िलों की जाँच-पड़ताल नहीं की होगी और यह भी सही है कि सेवा-समिति द्वारा संगृहीत हतों के आँकड़े ग़लत हो सकते हैं। प्रतिवेदन में जो अनुमानित हतों की संख्या १,००० दी गयी है, वही ठीक हो। सरकार की ओर से पहले तो जलियाँवाला बाग़ के हताहतों की संख्या १०० बतायी गयी थी। लेकिन बाद को वह संख्या बढ़कर १,३०० हो गयी जिसे हन्टर कमेटी ने और सरकारी आदमियों ने सही स्वीकार किया। यदि हतों की संख्या इस प्रतिवेदन के अनुसार १,००० थी तो आहतों की संख्या ३,००० होगी यानी हताहतों की संख्या ४,००० तक पहुँच जाती है। काफ़ी प्रमाण दिए गए हैं इस प्रतिवेदन में, और उनके आँकड़े सही मालूम होते हैं। सेवा समिति ने कुछ ही जगह हतों की संख्या जमा की थी। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि पंजाब के सारे ज़िलों में घूम कर उसके स्वयं-सेवकों ने हतों की संख्या का अन्दाज़ लगाया। जनरल डायर का कहना है कि हतों की संख्या से तिगुनी आहतों की संख्या होनी चाहिए। इस हिसाब से २०,००० की भीड़ में गोली चलने के कारण ४,००० से कम हताहतों की संख्या नहीं होनी चाहिए।

इस रिपोर्ट में कहा गया है कि लाहौर का यदि प्रथम दर्जा है तो अमृतसर का उसके बाद महत्व है। कई बातों में अमृमसर लाहौर से भी बढ़ा हुआ है। उसकी आबादी उस समय १,०७,००० थी। यहीं पर स्वर्ण मन्दिर—गोल्डन टेम्पल जो सिखों का प्रमुख तीर्थस्थान है। धार्मिक स्थान होने के अतिरिक्त यह नगर पंजाब का सबसे बड़ा

व्यापारिक केन्द्र है। विशेषकर पंजाब से और साधारणतः बाहर के लोग भी अमृतसर आते-जाते हैं—कुछ धर्म-भाव से प्रेरित होकर और कुछ व्यापार के सिलसिले में।

डा० किचलू उस समय अमृतसर के एक मुसलमान नेता थे। उन्होंने मुनस्टर यूनीवर्सिटी से दर्शनशास्त्र में आचार्य की उपाधि पायी थी और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के स्नातक थे। किसी समय वह अलीगढ़ में भी विद्यार्थी रहे थे। जिस समय का यह हाल है, उस समय उनका विवाह हो गया था और दो बच्चे थे। बहुत दिनों तक हिन्दू-मुसलमानों में एकता के लिए उन्होंने प्रयत्न किया था।

डा० सत्यपाल हिन्दू थे। बी० ए०, एम० बी० की उपाधि उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से प्राप्त की थी। प्रथम महायुद्ध में एक वर्ष तक वह अदन में आई० एम० एस० में केप्टिनेन्ट रह चुके थे। अमृतसर में डा० किचलू के साथ वह काम करते थे। दोनों नेता रौलट बिलों के ख़िलाफ़ आन्दोलन करने के कारण जनता में बहुत प्रिय हुए। दोनों ही सत्याग्रह के सिद्धान्त को मानने वाले थे। इसमें कोई संदेह नहीं—यह रिपार्ट कहती है—कि रौलट आन्दोलन के कारण उनका प्रभाव और भी अधिक जनता पर हो गया था और जो सभाएँ वह करते थे, उनमें अधिकतर लोग जाते थे। रिपोर्ट में कहा गया है कि इसमें कोई संदेह नहीं कि रौलट आन्दोलन के कारण जैसी अमृतसर में, वैसी ही अन्य जगहों में भी जनता की अधिक भीड़ होने लगी थी और अपने इन जलसों में निरन्तर भाग लेने के कारण वे लोकप्रिय हो गए थे।

२९ मार्च, सन् १९१९ को डा० सत्यपाल के ख़िलाफ एक सरकारी आज्ञा प्रसारित हुई कि वह जनता में भाषण न करें और अमृतसर में अपने घर ही पर रहें। ३० मार्च को भारत के विभिन्न भागों में हड़ताल मनायी गयी। उस दिन अमृतसर में भी हड़ताल हुई। सभा में बोलने वालों ने इस जलसे को धार्मिक और शान्तिपूर्ण मनाने के पहलू पर ज़ोर दिया। डा० किचलू के अंतिम शब्द ये थे—'हम लोग सदा राष्ट्रीय हितों में व्यक्तिगत हितों की कुरबानी के लिए तैयार रहें। महात्मा गान्धी का संदेश आप लोगों को पढ़ कर सुनाया गया। रौलट बिलों के ख़िलाफ देशवासियों को तैयार हो जाना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि सारे देश में ख़ून-खराबा हो या इस नगर में। तैयार हो जाओ काम करने के लिये अपने अंतः करण के अनुसार, चाहे इसके कारण तुम्हें जेल जाना पड़े या देश-निष्कासन की आज्ञा तुम्हारे ऊपर लगे।'

इसके बाद उन्होंने अपने व्याख्यान में यह कहा, 'किसी को क्लेश या कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। शान्तिपूर्वक अपने घरों को लौट जाओ। बाग में टहलो। किसी पुलिस वाले को या गद्दार को कोई अपशब्द न कहना जिसके कारण उसको दुख पहुँचे या शान्ति-भंग होने की संभावना हो।'

लेकिन सर माइकेल ओडायर अमृतसर की इस हड़ताल से और उसकी सफलता से बहुत विचलित हुआ। उन्होंने डा० किचलू पर उसी तरह का एक बन्धन लगाया, जैसा डा० सत्यपाल पर लगा हुआ था। ३ अप्रैल को यह आज्ञा प्रचारित की गयी कि श्री कोतूमल, पं० दीनानाथ और स्वामी अनुभवानन्द पर भी इसी तरह के बंधन लगें। इन

आज्ञाओं से जनता का मन बहुत बिगड़ गया और उसमें बेचैनी फैल गयी। ६ अप्रैल को दूसरी हड़ताल हुई और एक सभा भी हुई जिसमें जनता की उपस्थिति ३० मार्च, सन् १९१९ की सभा से भी ज्यादा थी। सरकारी प्रतिवेदनों का हवाला देते हुए यह प्रतिवेदन कहता है कि इस सभा में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें डा० किचलू और दूसरों के ऊपर बन्धन लगाने वाली आज्ञाओं को रद्द करने की सरकार से प्रार्थना की गयी। उनका सिर्फ एक ही दोष बताया गया कि उन्होंने जनता को यह बताया कि रौलट बिलों का सही अर्थ क्या है।

९ अप्रैल की रात को पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर माइकेल ओडायर ने तय किया कि डा० किचलू और डा० सत्यपाल को नजरबन्दी की आज्ञा दी जाए। यह आज्ञा उसी रात को डिप्टी कमिश्नर को मिली थी। डिप्टी कमिश्नर ने १० अप्रैल की प्रातःकाल अपने बँगले पर डा० किचलू और डा० सत्यपाल को बुलाया था। उन के आने पर डिप्टी कमिश्नर ने उन्हें वह सरकारी आज्ञा दिखायी और अज्ञात स्थान के लिए मोटरकार से उन्हें भेज दिया। इसकी खबर बिजली की तरह चारों ओर फैल गयी। जनता जमा होने लगी। मातम मनाने वालों की यह भीड़ थी—नंगे सर, बहुतों के पैरों में जूते नहीं और सब बिना लाठी के। जनता जा रही थी डिप्टी कमिश्नर के बंगले पर उनसे यह प्रार्थना करने के लिये कि उनके प्रिय नेता उन्हें लौटा दिए जाएँ। अमृतसर की मुख्य सड़कों से भीड़ गयी। रास्ते में उसने पार किया नेशनल बैंक को, टाउन हाल को और क्रिश्चियन मिशन हाल को—ये वे ही इमारतें हैं जो थोड़े समय के बाद विध्वस्त कर दी गयीं।

जब यह भीड़ रेलवे कैरेज ओवर ब्रिज पर पहुँची, तब सैनिकों ने उसे रोका। भीड़ ने सैनिकों से कहा कि हमें फ़रियाद करने के लिए डिप्टी कमिश्नर के पास जाने दीजिए। वह आगे बढ़ी और सैनिकों ने उसे जाने न दिया बल्कि उस पर गोली चलायी। कुछ लोग मारे गए और कुछ घायल हुए। कुछ लोग तो रेलवे फुट ब्रिज की ओर बढ़े और कुछ हाल बाजार की तरफ। जब वह हाल बाजार गए, तब वे अपने साथ मृतों और घायल आदमियों को भी लेते गए। इस से जनता और भी भड़क उठी। थोड़े समय में रेलवे कैरेज ब्रिज और फुट ब्रिज पर जनता का बहुत बड़ा अंश दिखायी पड़ा। इस बार जनता के हाथ में लाठियाँ और लकड़ी के टुकड़े थे। दोनों पुलों की सुरक्षा सैनिक कर रहे थे।

भीड़ की आवाज़ सुन कर वकील लोग डिप्टी कमिश्नर के पास गए और उन्होंने अपनी सेवाएँ अर्पित कीं कि किसी तरह वे भीड़ को वापस कर देंगे। वकीलों को यह आज्ञा मिल गयी और उनके आने पर अमृतसर के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने वकीलों को यह बताया कि भीड़ का कुछ हिस्सा माल गुदाम की ओर बढ़ा है। जो भीड़ माल गुदाम की ओर बढ़ रही थी, उसे वकील लोग लौटाने में सफल हुए; लेकिन भीड़ के उस अंश को लौटाने में वह सफल नहीं हुए जो पुलों पर था। उस पर तुरन्त सैनिकों ने गोली चलायी और जनता के लगभग बीस आदमी मारे गए। बहुत से लोग जख्मी हुए। दो वकील — सर्वश्री सरारिया और मकबूल महमूद, भीड़ को तितर-बितर करने में, सैनिकों की गोली से किसी तरह बच गए।

अधिकारियों ने इन दोनों वकीलों से क्षमा याचना की और कहा कि उन्हें नहीं मालूम था कि वे भीड़ को हटाने में लगे हुए थे। मि० मकबूल महमूद भागे हुए सिविल अस्पताल में गए और वहाँ से डाक्टर धनपतराय को जख्मियों की मरहम-पट्टी करने के लिए बुला लाए। अस्पताल से आहतों को ले जाने के लिए स्ट्रेचर आ गए थे, लेकिन सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस ने यह कह कर उन्हें वापस किया कि जनता खुद अपना इन्तजाम करे। कुछ आहत डा० केदारनाथ के मकान पर गए और वहाँ पर मिसेज ईसडेन जख्मियों को देख कर हँसी और कहा कि हिन्दुओं और मुसलमानों को वही मिला, जिसके वे पात्र थे। जनता बिगड़ उठी और अस्पताल में घुस गयी। लेकिन मिसेज ईसडेन को वह नहीं पाया क्योंकि मिसेज बेंजमिन ने उसे छिपा लिया था और वह किसी तरह छिपे स्थान से भाग खड़ी हुई। उत्तेजित भीड़ ने नेशनल बैंक को तहस-नहस किया और उसके मैनेजर, मि० स्टुअर्ट, और उसके खजांची, मि० स्काट, को मार डाला। जो भीड़ मालगुदाम की तरफ गयी थी, उसने रेलवे गार्ड, मि० राबिन्सन, को मार डाला। भीड़ ने एलायन्स बैंक पर हमला किया और उसके मैनेजर मि० ताम्पसन, ने जब भीड़ पर गोली चलायी, तब भीड़ ने उसे मार डाला और उसके शव को बैंक की कुर्सियों आदि के साथ जला दिया। लोको ब्रिज पर मि० रोलैन्ड की हत्या की गयी। टाउनहाल डाकखाना और मिशन हाल जला दिए गए और इसी तरह भक्तनवाला रेलवे स्टेशन का कुछ भाग जला दिया। इसके बाद चार्टर बैंक पर भी हमला हुआ, लेकिन वहाँ कोई नुकसान नहीं हुआ। मिस शेखड पर, जो साइकल पर थी, भयंकर हमला हुआ लेकिन उनके एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी के पिता ने उन्हें बचा लिया। भीड़ में कुछ बदमाश भी आ मिले, जिन्होंने अवसर देख कर नेशनल बैंक के गोदामों को लूट लिया।

तारीख १० अप्रैल को जो कुछ हुआ, वह पाँच बजे के पूर्व हुआ था। शाम के पाँच बजे तक भीड़ का हत्याकाण्ड और लूटमार खत्म हो चुकी थी।

तारीख ११ अप्रैल को मृतों को जलाने या गाड़ने का सवाल उठा। पहले तो अधिकारी लोग इस बात पर अड़े रहे कि चार से अधिक लोग एक शव को ले कर न जाएँ, लेकिन अंत में यह फ़ैसला हुआ कि दो बजे तक दाह या गाड़ने का संस्कार पूरा कर भीड़ लौट आए।

प्रतिवेदन प्रश्न करता है कि क्या भीड़ की यह ज्यादती रोकी नहीं जा सकती थी? क्या बेगुनाहों की जानों की रक्षा नहीं हो सकती थी? पुलिस उस समय क्या करती रही? टाउन हाल के पास ही कोतवाली थी जिसमें काफी पुलिस मौजूद थी। भीड़ ने कोतवाली पर हमला नहीं किया, पर हमला किया टाउन हाल पर। दूसरी इमारतें जो जल कर भस्म हुईं, वे कोतवाली के पास ही थीं। पुलिस को अच्छी तरह मालूम था कि बैंकों को आग लगायी जा रही है। ऐसे समय में पुलिस का चुप रहना कुछ समझ में नहीं आता।

लाहौर के कमिश्नर मि० किचिन १० अप्रैल को अमृतसर आए। उनका कहना है कि रास्ते में कहीं भीड़ का नामोनिशान न था। बेरोकटोक वह अमृतसर में दाखिल हो गए। उन से जब लार्ड हन्टर ने पूछा कि क्यों नहीं किसी असैनिक मजिस्ट्रेट को सैनिकों के साथ भेजा? तब उसने जवाब दिया – 'मैं यह समझता था कि सैनिकों की टुकड़ी को

अपना रास्ता साफ़ करने के लिए युद्ध करना पड़ेगा और इसलिए असैनिक मजिस्ट्रेट का वहाँ होना स्वभावतः उनके रास्ते में बाधक होता।···कोतवाली से पुलिस निकाली गयी और उस में कुमुक भेज दी गयी'। लेकिन जनता ने दोनों बातों का विरोध नहीं किया। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर, माइल्ज अविंग, ने सैनिकों के हाथ शहर की रक्षा का भार सौंप दिया। उसी दिन वह अमृतसर से फिर लाहौर लौट गए और इस की सूचना पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर को दी गयी। लेफ्टिनेंट गवर्नर ने अमृतसर का जो प्रबन्ध मि० किचिन ने किया था, उसकी सूचना पा कर उन्हें शाबाशी दी। इसी अरसे में, यानी ११ अप्रैल को, जनरल डायर अमृतसर आ गए और उन्होंने अपना सदर मुकाम रामबाग में स्थापित किया।

जनरल डायर ने आते ही जो पहला काम किया, वह शहर के आदमियों की धर-पकड़ थी। वह शहर में गए और बारह गिरफ्तारियाँ कीं। भीड़ ने न उनका मुकाबला किया और न उनके सैनिकों पर कोई हमला हुआ। १३ अप्रैल को साढ़े ९ बजे प्रातःकाल जनरल डायर फिर शहर में गए और अपने घोषणापत्र को प्रसारित करवाया। जिस समय हन्टर कमेटी के सामने जनरल डायर की शहादत हो रही थी, उसके बीच में वह बोले—'किसी तरह का जुलूस शहर के किसी भाग या उसके बाहर निकालने की मुमानियत थी। इस तरह का कोई भी जुलूस या चार आदमियों का जमा होना गैर-कानूनी समझा जाएगा। ऐसे जुलूस या चार आदमियों के जमाव पर सख्ती से काम लिया जाएगा, यदि आवश्यकता हुई।'

जनरल डायर से सिर्फ दो बातों पर काफी देर तक जिरह हुई। उनका क्या अर्थ था 'यदि आवश्यकता हुई', और उनका क्या अर्थ था 'चार आदमियों के जमा होने' का, जब ये शब्द जुलूस के बाद आए हों। 'If necessary' का एक ही अर्थ था कि जब भीड़ को हटाने का और कोई साधन न हो; और 'चार आदमियों के जमा होने' का एक ही अर्थ हो सकता है कि चार आदमियों का आम सड़क पर जमा होना; अन्यथा, निजी मकानों के अन्दर चार आदमियों का जमा होना घोषणा के अन्तर्गत आ जाएगा।

यह घोषणा पंजाबी और उर्दू में हुई थी। जनरल डायर घोषणा देने वाले के साथ थे। इसमें दो या तीन घन्टे लगे। नक्शे के देखने से साफ़ ज़ाहिर होता है कि शहर के आधे हिस्से में, जिसमें सब से बड़ी आबादी थी, लोगों ने इस घोषणा को नहीं सुना था। १३ अप्रैल को वैसाखी थी। इस दिन से हिन्दुओं का नव-वर्ष आरम्भ होता है बहुत से लोग आसपास के गाँवों से आए थे, जिन्हें इस घोषणा का कुछ भी पता न था। सरकारी गवाह भी इस बात को स्वीकार करते हैं।

लगभग जनरल डायर की घोषणा के समय, इस प्रतिवेदन का कहना है, एक लड़के ने दूसरी घोषणा की सूचना दी। कनस्टर बजाकर यह घोषणा की गयी थी, जिसमें यह कहा गया था कि जलियाँवाला बाग़ में चार बजे (शाम को) एक जलसा होगा, जिसका सभापतित्व लाला कन्हैयालाल करेंगे।

पौने बारह बजे के लगभग जनरल डायर को यह सूचना मिली कि जलियाँवाले बाग में साढ़े चार बजे एक बड़ा जलसा होगा। जनरल डायर ने उस जलसे को रोकने

के लिए कोई क़दम नहीं उठाया। लार्ड हन्टर के पूछने पर उसने कहा कि मैं वहाँ जितनी जल्दी पहुँच सकता था, पहुँचा था। उसने कहा कि उसके साथ बन्दूकधारी पच्चीस गोरखा और बन्दूकधारी पच्चीस सिक्ख थे। इनके अतिरिक्त उसके साथ चालीस और गोरखे थे; जो सुसज्जित थे खुखरियों से। उसके साथ दो 'आरमर्ड कारें' भी थीं। पाँच बजे या पाँच पन्द्रह पर शाम को वह जलियाँवाला बाग़ पहुँचा।

इसके बाद प्रतिवेदन में जलियाँवाला बाग़ का वर्णन है। बाग़ इसे कहना ग़लत है। यह तो ऊसर भूमि का खुला मैदान है। बहुत से लोग इस ऊसर भूमि के मालिक थे। बहुत जगहों पर तो मकानों के पिछवाड़े इसकी तरफ़ थे। मैदान में तीन पेड़ थे, एक टूटी-फूटी समाधि थी और एक कुआँ था। इसमें जाने का रास्ता मुख्य दरवाज़े से था, जिसके द्वारा 'आरमर्ड कारें' नहीं जा सकती थीं। इसके बाहर निकलने का और कोई रास्ता नहीं था। चार-पाँच जगह से दीवारों में सूराख़ थे जिनके द्वारा गली से होकर लोग सड़क पर जा सकते थे। मुख्य दरवाज़े से लगा हुआ एक चबूतरा था जिस पर सिपाही खड़े किए जा सकते थे। जिस समय जनरल डायर ९० सैनिकों के साथ बाग़ में पहुँचे, उस समय भीड़ को आसानी से बाहर निकलने का कोई रास्ता न रह गया। जनरल डायर ने अपनी जिरह में यह भी स्वीकार किया कि उस समय उसने यह तय कर लिया था कि भीड़ पर गोली चलायी जाय, क्योंकि लोग उसकी आज्ञा के विरुद्ध जमा हुए थे।

इस साथ प्रतिवेदन में लाला गिरधारीलाल का बयान दिया गया है, सैकड़ों आदमियों को गोलियों से मरते हुए मैंने देखा, क्योंकि, जनरल डायर के अनुसार, गोली चलने के बाद भीड़ के लोग तितर-बितर होकर भागने लगे थे; लेकिन, गोली की वर्षा बराबर जारी थी। वहाँ मैंने लोहू-लुहान देखा और बहुत से लोग भीड़ के भागने के कारण पैरों के नीचे कुचल गये थे। जो लोग ज़मीन पर लेटे थे, उनपर भी गोलियों की वर्षा हुई।····· मुर्दों में प्रौढ़ आदमियों और कम उम्रवाले बच्चों को भी मैंने देखा। कुछ के सिर फट गये थे, कुछ की आँखों में गोली लगी थी, बहुतों के नाक, कान, छाती, बाहें या पैर गोलियों से हत या ज़ख्मी हो गये थे।' लाला गिरधारीलाल का कहना है कि 'मैंने एक हज़ार से ऊपर आदमियों को मृतक पाया।····· बहुत से आदमी भाग रहे थे और उनमें से कई आदमियों को अपने सम्बन्धियों के शवों या घायलों को छोड़कर भाग जाते मैंने देखा, क्योंकि उनको भय था कि आठ बजे रात्रि के बाद उनपर फिर गोली चल सकती है।

जनरल डायर की घोषणा का दूसरा अंश इस प्रतिवेदन में यहाँ पर दिया गया है। दूसरा अंश इस तरह से है कि शहर का कोई आदमी अपने घर से बाहर आठ बजे रात्रि के बाद न निकले क्योंकि यदि कोई आदमी अपने घर के बाहर पाया गया तो उसका फ़ौरन गोली से उड़ा दिया जाना सम्भव है। इस प्रतिवेदन में यह कहा गया है कि २० अगस्त को—इस घटना के ४ महीने बाद—मृतकों की संख्या जानने की कोशिश सरकार ने की। पंजाब के चीफ़ सेक्रेटरी, मिस्टर टामसन, ने केन्द्र की संसद् में यह कहा था कि २९० हतों की संख्या सरकार को मिली है। इस प्रतिवेदन का कहना है कि हतों की संख्या के सम्बन्ध में लाला गिरधारीलाल का अनुमान ही ठीक है।

जलियाँवाला-हत्याकान्ड का वर्णन करना असम्भव है। जलियाँवाला बाग़ की बीभत्सता की चर्चा करना वर्णनातीत है। इस प्रतिवेदन का कहना है कि इस हत्याकान्ड को अच्छी तरह समझने के लिए यह जरूरी है कि सरकारी शहादत और 'हमारी'—इस ग़ैर—सरकारी कमेटी—के सामने दी गई शहादत को ध्यान से पाठक पढ़ें। १० अप्रैल की दुर्घटना के बाद, अंग्रेज अधिकारियों का क्रोधित हो जाना समझ में आ सकता है। इस प्रतिवेदन में डाक्टर बालमुकुन्द, सब असिस्टेन्ट सर्जन से सिविल सर्जन की जो बातचीत हुई, उसका वर्णन है। सिविल सर्जन ने कहा कि ११ को जनरल डायर अमृतसर आ रहे हैं और वह इस नगर को गोलों से नष्ट कर देंगे। ऐसा करने में उन्हें आधे घन्टे से ज्यादा समय नहीं लगेगा। डा० साहब ने इस पर कहा 'मैंने जवाब में कहा कि मैं शहर में रहता हूँ और यदि गोलाबारी हुई तो मेरा क्या होगा?' उसने जवाब दिया कि तुम्हें शहर छोड़ देना और अस्पताल में रहना चाहिए, यदि तुम अपने को बचाना चाहते हो।' शहर पर गोलाबारी का प्रस्ताव सम्भवतः छोड़ देना पड़ा और १३ अप्रैल को जलियाँवाला बाग़ के हत्याकान्ड का सुअवसर मिल गया और जनरल डायर ने उससे लाभ उठाया। जनरल डायर का यह भी कहना है कि पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, सर माइकेल ओडायर, ने जनरल के इस काम की, यानी जलियाँवाला बाग़ के हत्याकान्ड की, सराहना की।

१४ अप्रैल का दिन शवों को जलाने या दफ़नाने में बीता, या घायलों की देख-रेख में। इस काम के लिए सरकारी आज्ञा की जरूरत थी। एक संक्षिप्त घोषणा प्रकाशित की गयी कि लोगों को अपने शवों को जलाने या दफ़नाने की आज्ञा है, लेकिन कोई प्रदर्शन न होना चाहिए।

१४ अप्रैल को २ बजे दोपहर को एक सभा की गयी, जिसमें स्थानिक निवासी, म्युनिसिपल कमिश्नर्स, सौदागर और मजिस्टेट कोतवाली में जमा हुए। उनके सामने लाहौर के कमिश्नर, मिस्टर किचिन, ने निम्न भाषण किया—तुम लोग शान्ति चाहते हो या लड़ाई? हर बात के लिए हम तैयार हैं। सरकार के पास हर तरह की शक्ति है। सरकार ने जर्मनी को जीता है और वह प्रत्येक बात करने में समर्थ है। जनरल डायर आज जो आज्ञा दें उसे तुम मानो। शहर के अधिकारी और मैं कुछ नहीं कर सकते। जो वह आज्ञा दें, उसे तुम लोगों को मानना पड़ेगा।

मिस्टर किचिन के बाद, जनरल डायर लगभग पाँच बजे शाम को आए। उनके साथ थे सर्वश्री माइल्स अरविंग रेहिल, प्लोमर और सैनिक रक्षक। वे लोग बड़े क्रोधित थे। जनरल डायर ने कमरे में घुस कर उर्दू में स्पीच दी। उनकी स्पीच का सार यह है:—'तुम शान्ति चाहते हो या युद्ध? यदि तुम युद्ध चाहते हो तो सरकार उसके लिए तैयार है। यदि तुम शान्ति चाहते हो तो मेरी आज्ञाओं का पालन करो और दुकानों को खोल दो; अन्यथा, मैं गोली चलाऊँगा। खुलकर बोलो। क्या तुम्हें लड़ाई पसंद है? यदि यहाँ पर शान्ति स्थापित होना है तो मेरी आज्ञा है कि तमाम दुकानों को तुरन्त खोल दो। तुम्हें खुद शान्ति मनाना है; यन्यथा, दुकानें बलपूर्वक और बन्दूकों से खोली जायेंगी। यदि तुम्हें मेरी आज्ञाओं का पालन करना है, तो अपनी दुकानों को खोल दो। खुल कर बोलो कि क्या तुम युद्ध चाहते हो? 'जनरल के भाषण के बाद, मिस्टर माइल्स अरविंग

जो उस समय अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर थे, बोले, 'तुमने अंग्रेज़ों को मार कर बहुत बुरा काम किया है। तुमसे और तुम्हारे बच्चों से इसका बदला लिया जाएगा।'

१५ अप्रैल को सब दुकानें खुल गयीं, लेकिन इस प्रतिवेतन का कहना है कि इससे प्रतिहिंसा की भावना शान्त नहीं हुई। मार्शल ला नगर में दूसरे दिन लगा दिया गया और ९ जून तक वह लागू रहा। समृतसर के नागरिकों का जीवन विभिन्न तरीकों से असह्य कर दिया गया:—

'(१) जिस गली में मिस शेखुड पर हमला हुआ था, उसमें तिल्ली पर बाँध कर लोगों को कोड़े लगाने का प्रबन्ध किया गया था। जो उस गली से चलना चाहें, उन्हें पेट के बल रेंगना पड़ता था।

(२) सिद्धान्त में अंग्रेज अफ़सरों को सलाम करना सबके लिये लाजिमी कर दिया गया; लेकिन वास्तव में हर अंग्रेज के सामने सलाम करना सबका फ़र्ज था। अन्यथा गिरफ्तार होने और अपमान सहने का खतरा था।

(३) कोड़ों की सजा छोटी-छोटी बातों पर दी जाती थी। कोड़े सार्वजनिक रूप से लगाए जाते थे या दूसरी तरह भी।

(४) शहर के सब वकील अकारण स्पेशल कान्स्टेबल बनाये गये और उनसे साधारण कुलियों का काम लिया गया।

(५) अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियाँ हो रही थीं। और जब वह गिरफ्तार थे तब उनपर अमानुषिक अत्याचार, बेइज्जती इत्यादि, किए गए। इन अत्याचारों का उद्देश्य था कि वे अपराध को स्वीकार करें या झूठी शहादत देने को तैयार हों या सिर्फ उन्हें ज़लील करना था।

(६) अपराधों की सुनवायी के लिए विशेष 'ट्राइब्यूनलस्' स्थापित किए गए, यद्यपि जनता को अपील करने का अधिकार नहीं था।

आइए, पहले रेंगन की आज्ञा का वर्णन किया जाए। गली की पूरी लम्बाई लगभग डेढ़ सौ गज है। इस गली के बीचोबीच एक टिकटिकी लगायी गयी, जिस पर बाँध कर कोड़ों की सजा लोगों को दी जा सके। रेंगने की आज्ञा आठ दिन तक लागू रही। घुटनों के बल चलना या उन्हें उठाना वर्जित था। जो कोई घुटनों को उठाता था, या उसके बल चलने की चेष्टा करता था उस पर फ़ौरन् बन्दूकों के कुन्दों का प्रहार होता था। लगभग डेढ़ सौ गज तक पेट और हाथ के सहारे से रेंगना पड़ता था। गली गन्दी थी। यह विचारणीय है इस प्रतिवेदन का कहना है, कि यह आज्ञा मौखिक थी और ऊपर के अधिकारियों के कहने से यह आज्ञा रद्द की गयी थी।

इस गली में एक जैन मन्दिर भी था, जिसमें कुछ साधु भी रहते थे। लाला रलियाराम, अफीम के ठेकेदार, का मन्दिर के पास मकान था। जिस समय वह पहले दिन अपनी दुकान पर जाने लगे तो उन्हें रेंगने पर मजबूर किया गया। उन्होंने अपने बयान में एक बड़े मार्के की बात कही। पूरे आठ दिन तक न कोई भंगी दिखायी दिया और न कोई

भिश्ती। आठ दिन तक न मकानों का कूड़ा हटाया गया और न पाख़ाने ही साफ़ किये गये। आठ दिन तक न तो 'हमें' कोई सब्जी मिली और न दूसरे खाद्य पदार्थ ही।

जिन दिनों रेंगनेवाली आज्ञा का पालन कराया जा रहा था, उन्हीं दिनों कबूतरों और दूसरे जानवरों पर बन्दूकों से छर्रे चलाए गए। पिंजरापोल की जो गली के सिरे पर था - दुर्दशा अकथनीय है। गलियों में जो कुएँ थे, उनके पड़ोस में सैनिकों के पेशाब करने से गन्दगी फैल गयी थी।

सरकारी शहादत है कि कुल पचास आदमियों को गली में रेंगना पड़ा। हमारे ख्याल से सरकारी अनुमान इस मामले में वैसा ही ग़लत है, जैसे जलियाँवाला बाग़ की दुर्घटना में जनरल डायर का कहना कि हतों और आहतों की कुल संख्या १०० थी।

जिन आदमियों ने लाज़िमी सलाम करना नहीं देखा है, उनके लिए पीड़ा और ज़िल्लत की गहराई का अनुमान लगाना असम्भव है इस प्रतिवेदन में कहा गया है।

कोड़ों की सज़ा, जहाँ तक वह सार्वजनिक तरीक़े से दी जाती थी, ज़लील भी थी और पीड़ा में असह्य भी। सरकारी शहादत से यह मालूम होता है कि क़िले या फ़ोर्ट के अनुशासन को न मानने के कारण या मिस शेखुड पर हमला करने के कारण यह सज़ा दी जाती थी। उदाहरण के लिए, उन छः बालकों को लीजिए, जिनमें से प्रत्येक को तीस-तीस कोड़ों की सज़ा मिली थी। उनमें से प्रत्येक टिकटिकी में बाँध दिया गया और उसे तीस कोड़े लगाए गए। सुन्दर सिंह चार कोड़ों के बाद बेहोश हो गया। जब किसी सैनिक ने उसके मुँह में पानी डाला तब उसे होश आया। उस समय उसपर फिर कोड़ों की वर्षा हुई। वह फिर बेहोश हो गया। लेकिन जब तक उसे तीस कोड़े नहीं लगे, तब तक उस पर कोड़ों का लगना जारी रहा।

चौथे आरोप के समर्थन में इस प्रतिवेदन में कई शहादतें दी गयी हैं। चौथा आरोप यह था कि वकील 'स्पेशल कांस्टेबल' बनाये गये। जनरल डायर का कहना है कि 'स्पेशल कांस्टेबलों' ने बहुत उपयोगी सेवाएँ कीं। मिस्टर किचिन का कहना है कि 'वे उसे पसन्द करते थे'। इन दोनों के कथनों का प्रतिवाद बकीलों की ग़ैर-सरकारी कमेटी के सामने शहादत से मिलता है कि इस सज़ा का सारा उद्देश्य वकीलों को ज़लील करना था। अमृतसर में ९३ वकील थे। वे सब इसी तरह से ज़लील किये गये थे।

मार्शल ला के ज़माने में जो अंधाधुन्ध धर-पकड़ हुई और क़ैदियों के साथ जो व्यवहार किया गया, उसका वर्णन दुःखद है। कई सज्जनों की शहादतों में से हम डा० केदारनाथ भण्डारी की शहादत को देते हैं। उन्होंने इस कमेटी के सामने जो बयान दिया, वह रोमांचकारी है।

डा० केदारनाथ भण्डारी सीनियर असिस्टेंट सर्जन थे। १० अप्रैल को मिस ईस्डन पर हमला करने के लिये जो भीड़ गयी थी, उसमें से किसी का नाम बताने के लिए सरदार सूखासिंह ने २० अप्रैल को डा० केदारनाथ भण्डारी से कहा। डा० केदारनाथ भण्डारी, जिनकी आयु ६२ वर्ष की उस समय थी, ने कहा कि वह ऐसा नहीं कर सकते। अब डा० केदारनाथ भंडारी की ज़बानी जो उनपर बीती थी, उसका हाल सुनिए :—

'उनके इन्कार कर देने पर सरदार सूखासिंह, मिस्टर प्लोमर और मिस्टर मार्शल चिल्ला उठे 'ओह, तुम सरकारी मदद करना नहीं चाहते, तुमको भी गिरफ्तार किया जाएगा'। इसपर डा० केदारनाथ भंडारी ने जवाब दिया कि 'मैं किसी को कैसे नामज़द करूँ, जिसको मैंने नहीं देखा। तुम जैसा चाहो वैसा मेरे साथ बर्ताव करो'। इसपर सरदार सूखा सिंह ने डाक्टर से कहा 'तुम्हें गिरफ्तार करने की मुझे आज्ञा मिल गयी है'। उन्हें कोई लिखित आज्ञा नहीं दिखायी गयी, लेकिन अपने असिस्टेन्ट के साथ वह हवालात में भेज दिये गए। ता० २७ अप्रैल को उन्हें अमृतसर के सबसीडियरी जेल में भेजा गया। हवालात से 'सबसीडियरी जेल' एक मील था उन्हें सवारी नहीं दी गयी, यद्यपि डाक्टर ने उसकी माँग की थी। वह ६२ आदमियों के साथ हथकड़ियों में जेल ले जाये गये। जिस समय जेल में डाक्टर पहुँचे, वह बेहोश हो गये, लेकिन जल्दी ही ठीक हो गये क्योंकि एक दयालु पुलिसमैन ने उन्हें कुछ जल पीने को दिया। वहाँ वह एक 'सेल' में बन्द कर दिये गये। उन्हें घर से भोजन और वस्त्र मँगाने की आज्ञा नहीं मिली। २ मई को अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर जेल में गये और डाक्टर ने उनसे सवाल किया कि वह क्यों गिरफ्तार किये गये? डिप्टी कमिश्नर का जवाब यह था कि—'उनके विरुद्ध कोई बात नहीं है, सिवाय इसके कि जिस समय भीड़ ने मिस ईस्डन पर हमला किया था तो उन्होंने उसके बचाने की कोई चेष्टा नहीं की।' १२ मई को वह और उसके सहायक जेल से छोड़ दिये गये। उनके ख़िलाफ़ कोई जुर्म नहीं लगाया गया। इसी तरह के इस प्रतिवेदन में संलग्न और गवाहों के बयान हैं। इस पर इस ग़ैर-सरकारी कमेटी का कहना है कि अंधाधुन्ध गिरफ्तारियों का सिर्फ उद्देश्य था, उन निरपराध आदमियों के ख़िलाफ़ शहादत जमा करना, जो मार्शल-ला के लागू होने पर क़ानून के प्रति सबसे बड़ा काला धब्बा है, गिरफ्तारशुदा आदमियों के प्रति अत्याचार और ज़िल्लत की कहानी है। सब तरह के, और हर दशा के, आदमी इस तरह से गिरफ्तार किए गए। कोई भी आदमी न बचा, जिसे क़ानूनी सुरक्षा का भरोसा हो। घूस का बाज़ार भी गर्म रहा, लेकिन यह काम सरकार का है कि घूस लेनेवालों को उचित दंड दे।

अमृतसर ज़िले में, सांख्यिय के अनुसार, १८८ आदमियों के अपराधों की सुनवाई हुई, जिनमें से तीन बरी हुए। अन्य अदालतों के सामने १७३ आदमियों का मुकदमा सुना गया, जिनमें से ३२ या तो बरी हुए या जेल से छोड़ दिये गये। शेष आदमियों को सज़ाएँ सुनायी गयीं।

अमृतसर नगर के बाद कसूर की कहानी भी सुन लीजिए, जहाँ दो निरीह अंग्रेज सैनिकों की हत्या हुई। इस प्रतिवेदन के अनुसार ६ अप्रैल को इस शहर के निवासियों ने कोई हड़ताल नहीं की। ११ अप्रैल को गाँधी जी की गिरफ्तारी और डा० सत्यपाल और डा० किचलू की नज़रबन्दी की ख़बर कसूर में प्रातःकाल पहुँची। उस दिन कुछ समय के लिए हड़ताल की गयी और आम सभा भी हुई। १२ अप्रैल को सब दुकानें एक दम से बन्द हो गयीं और जनता का रुख, ११ ता० की अपेक्षा, १२ ता० को उग्रतर हो उठा। हंटर कमेटी के सामने एक गवाह ने यह कहा था कि कुछ लोग अमृतसर से आए थे। उन्होंने वहाँ का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया। उससे जनता के कुछ लोगों में उत्तेजना

फैल गयी। शहर के 'आलसी' और मध्यम श्रेणी के कुछ भद्र लोग शहर से स्टेशन की ओर रवाना हुए। इसी समय एक रेलगाड़ी आ गयी और सिगनल के पास खड़ी हो गयी। सोड़ा वाटर इत्यादि के डिब्बे पर भीड़ ने हमला किया और सब बोतलों को बाहर फेंक दिया। जब भीड़ ने यह देखा कि कुछ अंग्रेज गाड़ी पर सवार हैं तब भीड़ ने उनपर लज्जाजनक हमला किया। मौलवी गुलाम मोहिउद्दीन, जो वकील थे, और मौलवी अब्दुल क़ादिर तथा अन्य साथियों ने मिस्टर और श्रीमती शेरबोर्न और उनके बच्चों की रक्षा की और उन्हें सुरक्षित स्थान में भेज दिया। रेलगाड़ी सिगनल से स्टेशन पर आयी और वहाँ रुकी। रेलगाड़ी के पहुँचने पर दो अंग्रेज सैनिक गाड़ी से उतर पड़े और उन्होंने यह ख्याल किया कि भाग खड़े होने ही में उनकी खैरियत है। उन्होंने चिल्लाती हुई भीड़ पर गोलियाँ आत्मरक्षा में चलायीं। भीड़ पर उनकी गोलियों का कुछ भी असर न हुआ। इन दो अंग्रेज सैनिकों को भीड़ ने मार डाला। भीड़ की इस बदमाशी की जितनी निन्दा की जाय, वह थोड़ी है। फिर बलवाइयों ने माल के दफ्तरों को जलाया। पुलिस की गोलियों से भीड़ तितर-बितर हो गयी। यह उल्लेखनीय है कि जैसे कसूर या अमृतसर में वैसे ही दूसरे स्थानों पर भी भीड़ की उत्तेजना और रोष चन्द घंटों तक ही रहा। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि उन दुःखद घटनाओं के पीछे कोई षडयंत्र न था। बिना किसी दिक्कत के, शासक वर्ग गिरफ्तारियों के करने में सफल हुआ।

देशी सब डिवीजनल अफ़सर के स्थान में श्री मार्सडेन की नियुक्ति की गयी और १६ अप्रैल से यहाँ पर मार्शल ला लागू कर दिया गया। बाबा धनपतराय की जो वहाँ के प्रसिद्ध वकील थे, गिरफ्तारी हुई। उस समय उनकी आयु ६५ वर्ष की थी, लाहौर सेन्ट्रल जेल में कई दिनों तक वह बन्द रहे। उन्हें यह भी नहीं बताया गया कि क्यों वह गिरफ्तार किये गये। पहली जून को वह छोड़ दिये गये।

१६ अप्रैल को २१ आदमियों की गिरफ्तारी हुई, १७ अप्रैल को ३ और पकड़े गये, और १८ अप्रैल को ४ आदमियों की गिरफ्तारी हुई। कुल मिलाकर १७२ आदमी कसूर में गिरफ्तार हुए। इनमें से ९७ आदमी जेल से छोड़ दिये गए। किसी अदालत के सामने उन पर कोई मुकदमा नहीं चलाया गया जिन ७५ आदमियों पर मुकदमा चलाया गया, उनमें से ५१ आदमियों को सजा मिली।

जिन आदमियों को कसूर में सजा हुई, उनमें से कुल ४० आदमियों को बेंत लगने की सजा हुई। बेंत लगने की सजा से स्कूली छात्र भी बरी नहीं रहे। एक स्कूल के प्रधानाध्यापक ने लिखा कि उसके छात्र उसके अनुशासन को नहीं मानते। इसलिए उसे सैनिक सहायता दी जाए। फ़ौज के अधिकारी ने यह तय किया कि कुछ लड़कों को बेंत लगाये जाएँ; इस स्कूल तथा अन्य स्कूल के लड़के जमा किये जाएँ; मिस्टर मार्सडन से कहा गया कि वे छात्रों में से कुछ छात्रों को चुन लें और उनके बेंत लगाये जाएं। बेंत की सजा स्टेशन पर दी जाती थी।

उन स्थानों में से एक ही स्थान कसूर है, जहाँ मनमाने ढंग से सजाएँ दी जाती थीं।

ग्यारहवाँ अध्याय

अमृतसर और कसूर के अतिरिक्त अन्य स्थान

अमृतसर और कसूर में तो अंग्रेजों की हत्याएँ हुईं। शेष १९ स्थानों में सार्वजनिक धन की बरबादी तो हुई, लेकिन कोई अंग्रेज न मारा गया, न घायल हुआ। इस ग़ैर-सरकारी प्रतिवेदन में तरन-तारन है।

(१) तरनतारन—यह अमृतसर जिले ही में है। वहाँ के पुलिस सब-इंस्पेक्टर ने जनता के विरुद्ध यह आरोप लगाया था कि उसने सरकारी ख़जाने को लूटने की चेष्टा की। इस प्रतिवेदन का कहना है कि उनके पास जो शहादत थी, उससे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि पुलिस सब-इंस्पेक्टर का यह आरोप बनावटी है। लेकिन इसी के कारण 'समरी कोर्टों' ने बहुत से आदमियों को सजाएँ दीं।

(२) लाहौर—यह पंजाब की राजधानी है। यहीं पर पंजाब की सरकार रहती है। यहाँ पर उस समय छात्रों के लिए १० कालेज और छात्राओं के लिए २ कालेज थे। इसके अतिरिक्त, छात्र और छात्राओं के लिए माध्यमिक स्कूल भी बहुत-से थे। यहीं पर पंजाब विश्वविद्यालय था। अंग्रेजी के दो दैनिक पत्र—(१) सिविल और मिलटरी गज़ट और (२) ट्रिब्यून—यहीं से प्रकाशित होते थे। इन दो अख़बारों के अतिरिक्त, देशी भाषाओं के दैनिक और साप्ताहिक कई अख़बार यहीं से प्रकाशित होते थे।

६ अप्रैल को यहाँ पर एक सार्वजनिक सभा हुई, यद्यपि ५ अप्रैल को नेताओं ने लाहौर के डिप्टी कमिश्नर से यहाँ तक कह दिया था कि यदि सरकार चाहे तो नेतागण सभा न करेंगे। लेकिन कुछ शर्तों पर सभा करने की आज्ञा दे दी गयी। प्रतिबन्ध केवल यह था कि सभा में उत्तेजनाजनक कोई भाषण न हो।

६ अप्रैल को लाहौर में वैसी हड़ताल हुई, जैसी कभी देखी न गयी थी। हज़ारों आदमियों ने रावी नदी में स्नान किया और नदी-तट से लौटने पर एक जलूस में शामिल हो गये। जलूस बहुत शान्तिपूर्ण था। जलूस जब माल रोड की तरफ़ बढ़ा तब पुलिस ने उसे, पोस्ट आफ़िस के पास, आगे जाने से रोक दिया। लाला दुनीचन्द बैरिस्टर और डा० गोकुलचन्द नारंग जलूस को वापस लाने में सफल हुए। उसी शाम को बैंडला हाल में एक सभा हुई। हज़ारों की तादाद में जनता उस सभा में एकत्रित हो गयी। ऐसी सभा लाहौर में कभी नहीं देखी गयी। सभा में जो भाषण हुए, उनमें से किसी में भी राजद्रोह की बू नहीं पायी।

७, ८ और ९ अप्रैल को कुछ नहीं हुआ। १० अप्रैल को लाहौर में शान्ति थी, लेकिन २ बजे शाम को सारा बाज़ार बन्द हो गया और जलूस निकाला गया। वह अनारकली से मालरोड की ओर बढ़ा। भीड़ के अधिकांश लोग तो फ़ोरमैन क्रिश्चियन कालेज के समीप ही रुक गये लेकिन ४००-५०० व्यक्तियों का एक जलूस, जिनमें विद्यार्थी भी शामिल

थे, आगे बढ़ गया। उसका उद्देश्य था सरकार से महात्मा गांधी की गिरफ्तारी से रहाई की फ़रियाद करना। एकाएक पुलिस ओ डायर सोलजर्स क्लब के पास आयी, और आज्ञा पाते ही उसने गोली चला दी। दो-तीन भारतीय मरे और अनेक घायल हुए। भीड़ लौट पड़ी। हताहतों को पुलिस ने अपने कब्ज़े में ले लिया। अधिकारियों ने उन डाक्टरों से सहायता न ली, जो उधर से गुज़र रहे थे। लाहोर दरवाज़े पर, अनारकली से होते हुए, भीड़ पीछे हट आयी। इसी स्थान पर पुलिस ने भीड़ को तितर-बितर करना तय किया था। लाहौर के डिप्टी कमिश्नर, मिस्टर फाइसन, ने श्री रामभजदत्त को भीड़ को हटाने के लिए दो मिनट का समय देने के बाद, पुलिस को गोली चलाने की आज्ञा दे दी। इस दूसरी बार गोली चलाने से हताहतों की संख्या उतनी ही हुई जितनी पहली बार के गोली चलाने से। इस प्रतिवेदन की निश्चित राय है कि दोनों ही बार गोली चलाना अनुपयुक्त था। भीड़ निहत्थी थी। बहुत-सी सार्वजनिक इमारतों – जैसे क्रिश्चियन कालेज, वाई० म० सी० ए०, एलायन्स बैंक, बंगाल बैंक, डाकख़ाना, तार-घर, उच्च न्यायालय और लाहौर का बड़ा गिर्जाघर के पास से यह भीड़ गुज़र गयी थी। भीड़ को हटाने में कोई कठिनाई न हुई। यदि श्री रामभजदत्त को दो मिनट से अधिक का समय दिया जाता तो वह निश्चय ही भीड़ को वापस करने में सफल होते।

११ अप्रैल को भी हड़ताल जारी रही, क्योंकि स्थानिक अधिकारियों ने हताहतों को उनके रिश्तेदारों को लौटाने से इन्कार किया। कई बार नेताओं ने चेष्टा की कि इस बात को अधिकारी मान लें लेकिन हताहतों को न लौटाने की बात उन्होंने स्वीकार न किया। इसके बावजूद कि स्थानिक अधिकारी हताहतों को न वापिस करने की बात पर अड़े रहे, स्थानिक नेताओं ने हड़ताल समाप्त कराने की चेष्टा की, लेकिन उन्हें इस प्रयत्न में सफलता न मिली। बादशाही मसजिद में एक बड़ी सभा हुई। उसमें खूब जोश था। श्री रामभजदत्त चौधरी ही को लोगों ने सुना क्योंकि उनकी आवाज़ बुलन्द थी। सभा में कोई फ़ैसला न हुआ। वह विसर्जित हो गयी। जैसे ही लोग अपने घरों को लौट रहे थे कि पुलिस ने गोली चलायी, जिसके कारण लोगों का रोष और भी बढ़ गया। अधिकारी एक ही बात कहते थे कि हड़ताल ख़त्म कर दी जाए। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे स्थानिक अधिकारियों का रुख़ कड़ा होता गया। कुछ नेताओं के अलावा वे दूसरे नेताओं से नहीं मिलते थे। हड़ताल जारी थी। भूख और उसके परिणाम लूटमार आशंका थी। अतएव जनता ने अपने चन्दे से मुफ़्ती लंगरखाने जगह-जगह पर खोल दिये। इस तरह १५ अप्रैल भी बीत गया। १६ अप्रैल को लाला हरकिशनदास, लाला दुन्नीचन्द और श्री रामभजदत्त को लाहौर के डिप्टी कमिश्नर ने बुलाया तो मिलने के लिए, परन्तु कर लिया उन्हें गिरफ्तार। नज़रबन्दी के लिए वे किसी स्थान में ले जाए गये। इसके बाद ही लाहौर में मार्शल-ला लागू कर दिया गया। स्थानिक डिप्टी कमिश्नर ने इन नेताओं को मार्शल-ला के लगाने का जो कारण दिया था, वह यह था कि उसके द्वारा हड़ताल ख़त्म की जाए। कर्नल जानसन ने हन्टर कमेटी के सामने यह साफ़-साफ़ कहा कि यदि लोग अपनी दुकानें नहीं खोलते हैं तो मैं उन दुकानों को सैनिकों के जिम्मे कर देता। लाहौर के मानी सौदागरों को, सैनिक दबाव के कारण, अपनी दुकानें खोलनी पड़ीं।

लार्ड हन्टर के सामने गवाही देते हुए, कर्नल जानसन ने अपना यह मत रखा कि लाहौर में मार्शल-ला लगना आवश्यक था ताकि लाहौर से पंजाब के दूसरे भागों में बग़ावत फैलने न पाये। इसके विपरीत, इस ग़ैर-सरकारी कमेटी की राय में लाहौर में मार्शल-ला का लगना ही अनावश्यक था। इस पक्ष में उसने कई तरह के कारण बताए हैं।

कर्नल जानसन ५ अप्रैल से २९ मई, १९१९ तक लाहौर क्षेत्र के अधिपति रहे। उनका शासन इतना व्यापक था कि उसका अनुभव सब वर्ग के लोगों को विद्यार्थियों को भी इनमें शामिल करना चाहिए—हुआ। लम्बे से लम्बे आदमी को भी उनके लौह शासन के सामने झुकना पड़ता था। उन्होंने ८०० तांगों को अपने पास रख लिया, जिनकी संख्या अन्त में २०० तक घट गयी थी। ये तांगे मार्शल-ला की अवधि तक सरकारी आदमियों को लाने और ले जाने के काम में लगे रहे। भारतीयों की सभी मोटरों को भी उन्होंने अपने कब्ज़े में ले लिया। रेलों पर यात्रा करने का प्रतिबन्ध लगा दिया गया, ताकि 'उन सज्जनों के कार्यों पर रोक लगा दी जा सके, जो अन्य ज़िलों में जाकर उपद्रव कराना चाहते हैं।' तमाम मुफ्ती लङ्गरखानों को उसने बन्द करा दिया। उसने बहुत-से लाइसेन्स-होल्डरों की भी बन्दूकें ज़ब्त कर लीं। उसने लाहौर के डिप्टी कमिश्नर की पूर्वाज्ञा को बहाल रखा कि तब तक बादशाही मसजिद न खोली जाए जब तक उसके ट्रस्टी यह शर्त न मान लें कि उस मसजिद में कोई भी हिन्दू कदापि न जाने पाएगा। ट्रस्टियों ने यह वायदा किया कि उस मसजिद में कोई भी हिन्दू कदापि न जाने पाएगा। तब मसजिद खोली गयी। उसने खुद 'समरी कोर्ट्स' बनाए। खुद ही मुकद्दमों की सुनवायी उसने की। इस तरह २७७ आदमियों की उसने सुनवाई की, जिनमें से २०१ को सज़ा हुई। अधिक से अधिक सज़ा जो किसी को मिल सकती थी, वह थी दो वर्ष क़ैद, तीस बेंत और १,०००) तक जुर्माना। ६६ आदमियों को ८०० बेंतों की सज़ाएँ दी गयीं। बेंतों की अधिकतम सज़ा ३० बेंत तक की थी और न्यूनतम संख्या पाँच थी। बेंतों की सज़ा सार्वजनिक रूप से दी जाती थी। ऊपर की आज्ञा से वह बन्द कर दी गयी। जिन आदमियों को बेंतों की सज़ा मिलती थी, उनकी बेंतों के लगने के पहले, मेडिकल 'परीक्षा' नाम-मात्र ही की होती थी।

जब मार्शल-ला लाहौर में लग गया तब हर प्रकार से लोगों का जीवन असह्य हो उठा। इस कमेटी के प्रतिवेदन और संलग्न शहादत से इस बात का कुछ-कुछ आभास होता है कि मार्शल-ला के लगने पर किस तरह लोगों का जीवन असह्य हो गया था।

उदाहरण के लिए, कर्नल जान्सन की दो आज्ञाओं को लीजिए। एक सनातन धर्म कालेज विषयक आज्ञा को लीजिए और दूसरी उनकी उस आज्ञा को लीजिए जो उन्होंने डी० ए० वी० कालेज, दयाल सिंह कालेज और मेडिकल कालेज के छात्रों के सम्बन्ध में दी थी—सज़ा के तौर पर नहीं, बल्कि छात्रों को बुराई से बचने की नीयत से।

पहले हम सनातनधर्म कालेज विषयक आज्ञा को लेते हैं। इस कालेज की बाहरी दीवाल पर मार्शल-ला का एक नोटिस चिपकाया गया था। उसे किसी ने फाड़ डाला। उस कालेज के हास्टलों में रहने वाले ५०० छात्रों को गिरफ्तार किया गया। उनके साथ

अध्यापक भी गिरफ्तार हुए। जो व्यक्ति गिरफ्तार हुए थे, वे 'फ़ोर्ट' में तीन मील पैदल चला कर बन्द कर दिये गये। यदि वे चाहें तो वे अपने बिस्तर भी अपने साथ ले जा सकते थे। दो दिन तक शाही किला, लाहौर में वे बन्द रहे। जब कालेज के प्रिंसिपल ने आवश्यक आश्वासन दे दिया तब कालेज के छात्र और अध्यापक अपने-अपने आवासों में वापिस आ गये।

तीन कालेजों के छात्रों पर जो बीती, उसकी कथा सुन लीजिए। डी० ए० वी० कालेज, दयालसिंह कालेज और मेडिकल कालेज के छात्रों को कर्नल जानसन ने यह आज्ञा दी कि चार बार सब छात्रों की हाजिरी ली जाए—दो बार प्रातःकाल ७ से ११ तक और दो बार दोपहर के बाद ३ से ७॥ बजे तक। इस हाजिरी के लिए मेडिकल कालेज के छात्रों को १६ मील चलना पड़ता था। धूप में १६ मील प्रतिदिन चलना कर्नल जानसन की राय में कुछ भी नहीं था। 'यह कोई आपत्तिजनक बात न थी। 'कर्नल जानसन ने हंटर कमेटी के सामने यह भी कहा कि 'मैं उन्हें (छात्रों को) राजभक्त बनाने नहीं जा रहा था। मेरी मंशा तो यह थी कि उन्हें शरारत से दूर रखा जाए और वे पड़ोसी जिलों में न जा सकें।'

ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जिनमें मार्शल-ला के अन्तर्गत कर्नल जानसन ने मनमाने हुक्म चलाए। सिर्फ़ एक उदाहरण श्री मनोहरलाल जी का यहाँ दिया जाता है। वह गिरफ्तार किये गये, केवल इसलिए कि वह 'ट्रिब्यून' पत्र के ट्रस्ट के एक ट्रस्टी थे। 'ट्रिब्यून' के संपादक, श्री कालीनाथ राय, पर राजद्रोह का आरोप लगा कर उनपर मुकदमा चलाया गया और उन्हें सजा भी हुई। स्वतंत्र पत्रकारिता के लिए उन दिनों पंजाब में कोई स्थान न था। 'ट्रिब्यून', 'पंजाबी' और 'प्रताप' ने मार्शल-ला के दिनों में अपने प्रकाशन बन्द कर दिये।

(३) कसूर—से कुछ आगे चलकर पट्टी और खेमकरन के छोटे स्टेशन पड़ते हैं। खेमकरन में स्टेशन का धन लूटा गया था और तार काटे गये थे। मिस्टर मार्सडन के अनुसार, यह एक छोटी बात थी। पट्टी में मिस्टर मार्सडन के अनुसार, प्रमुख निवासियों ने स्थानिक अधिकारियों और पुलिस को हर तरह की मदद दी। वहाँ पूर्ण शान्ति रही; तथापि इन दोनों गाँवों में मार्शल-ला लागू किया गया और उसका प्रभाव इन दोनों गाँवों पर पूर्ण रूप से पड़ा।

(४) गुजरानवाला—लाहौर के पश्चिम की ओर ४२ मील दूर गुजरानवाला का जिला है। जिले का जहाँ सदर मुकाम है, वह भी गुजरानवाला कहलाता है। यहाँ महाराजा खगजीतसिंह पैदा हुए थे। इस प्रतिवेदन में जिन स्थानों का जिक्र है, उनमें इसी जिले के अन्तर्गत जो स्थान आते हैं, उनके नाम हैं—(१) वज़ीराबाद (२) निज़ामाबाद (३) अकालगढ़ (४) रामनगर (५) हाफ़िज़ाबाद (६) सांगलाहिल (७) मोमन (८) धवनसिंघ (९) मानियांवाला (१०) नवांपिन्ड (११) चुहरकाना और (१२) शेखूपुरा।

इस प्रतिवेदन में समूचे जिले का वर्णन है, यद्यपि जिले के दो भाग नवम्बर, १९१९ में अलग कर दिये गये थे—(१) शेखूपुरा का जिला और (२) गुजरान वाला का जिला।

दोनों तरफ़ के गवाह इस बात को मानते हैं कि १३ अप्रैल तक अशान्ति का कोई लक्षण वहाँ नहीं दिखायी दिया। १४ अप्रैल की शाम को यहाँ इसके लक्षण दिखायी पड़े। १३ अप्रैल को बैसाखी का पर्व था। उस रोज गुजरानवाला में बहुत-से यात्री आये हुए थे जिन्होंने शराब पी थी। १४ अप्रैल को उन्हीं शराब पिये हुए यात्रियों की भीड़ ने स्टेशन पर शाम को हमला किया। बात यह हुई कि एक मरा हुआ बछड़ा या बछिया रेल के एक पुल पर लटकी हुई पायी गयी। कुछ लोगों का कहना है कि पुलिस का इसमें हाथ था, यद्यपि अधिकारियों को इस घृणित काम करनेवालों का पता न चला। मसजिदों में भी सुअर का गोश्त पाया गया। इन दोनों अफ़वाहों के फैलने के बाद, भीड़ स्टेशन के रेलवे पुल की तरफ़ चली। उसी समय वज़ीराबाद जाने वाली गाड़ी आ गयी। उस पर सफ़र करते हुए एक खानसामा के द्वारा लोगों को १३ अप्रैल के हत्याकाण्ड का पता चला। रेल गाड़ी में खचाखच यात्री भरे थे वे यात्री, जो गुजरानवाला से वज़ीराबाद की तरफ़ जा रहे थे। भीड़ के कुछ लोगों ने यह चाहा कि रेलगाड़ी आगे न बढ़े, वहीं पर रुकी रहे। उन्होंने रेलगाड़ी पर कंकड़-पत्थर फेंके। इसके बाद उसने गुरुकुल का पुल जला दिया। पुल जलाने का काम भीड़ ने बे-मन किया। गुरुकुल के गवर्नर या अध्यक्ष, लाला रलियाराम, बैरिस्टर श्री लाभ सिंह, श्री दीन मुहम्मद, वकील, ने गुरुकुल के पुल की आग बुझायी। इस गैर-सरकारी कमेटी को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि गुजरानवाला के पुलिस सुपरिन्टेंडेन्ट के कथनानुसार, 'पुलिस का काम आग बुझाना नहीं है। उनका कर्तव्य तो सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करना है'।

भीड़ इसके बाद, कच्चे पुल पर गयी। यहां भीड़ को तितर-बितर करने की नीयत से पुलिस-सुपरिन्टेंडेन्ट ने गोली चलायी और इस तरह बहुत-से लोग मरे या घायल हुए। जिले के नेताओं की यह कोशिश थी कि भीड़ शहर को वापस चली जाए। इसलिए उन्होंने शहर में सार्वजनिक सभा का एलान किया। अपने इस उद्देश्य में वह सफल हो जाते, यदि सभा में उन घायलों का प्रदर्शन न किया जाता जो उसी दिन पुलिस-सुपरिन्टेंडेन्ट की गोली से घायल हुए थे। सभा बीच ही में भंग हो गयी, और बदला लेने की भावना से उत्तेजित भीड़ स्टेशन की तरफ़ रवाना हुई। बहुमूल्य सार्वजनिक संपत्ति एक के बाद एक नष्ट हुई। इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(१) गिर्जाघर, (२) डाकखाना, (३) तहसील, (४) अदालतघर और (५) रेलवे स्टेशन।

इस गैर-सरकारी प्रतिवेदन का कहना है कि पुलिस महज़ दर्शक के रूप में मालूम होती थी। उसने इन इमारतों को जलाने से बचाने के लिए रोक-थाम की कोई चेष्टा नहीं की।

कर्नल ओबरायन गुजरानवाला फिर वापस आ गये। ता० १६ अप्रैल से वहाँ मार्शल-ला लग गया। इस प्रतिवेदन का कहना है कि हवाई जहाज से बम वर्षा खालसा बोर्डिंग हाउस में नहीं होनी चाहिए थी और न मशीनगनों से भागते हुए आदमियों पर गोलियों की वर्षा होनी चाहिए थी। इस सबका उद्देश्य केवल एक था। लोगों के ऊपर 'नैतिक प्रभाव' का जमाना।

यदि १४ अप्रैल को हवाई जहाज से बमबाजी करना अनुचित था, तो १५ अप्रैल को हवाई जहाज की मशीनगनों से गोली चलाना और भी अनुचित था।

सुनी-सुनायी बातों के आधार पर वकीलों का जलील करना, लोगों की अंधाधुन्ध गिरफ्तारियां आदि मार्शल-ला के लगने के पहले हुई।

हड़ताल को तुड़वाने का मार्शल-ला के अन्तर्गत जो नोटिस निकला, वह कुछ अजीबो-ग़रीब-सा लगता है। उसमें कहा गया था कि 'गुजरानवाला की म्युनिसिपल सीमा के अन्दर कुछ दुकानदार अपनी दुकानों को बन्द कर देते हैं, जब फ़ौज या पुलिस के लोग दाम देकर उनसे सौदा ख़रीदने जाते हैं। इस आज्ञा के प्रचारित होने के बाद यदि कोई दुकानदार ऐसी हरकत करेगा तो वह गिरफ्तार कर लिया जाएगा। उसे अदालत से बेंतों की सजा भी मिल सकती है"।

मार्शल-ला के अन्तर्गत सातवां नोटिस भी दृष्टव्य है। उसमें कहा गया था कि गुजरानवाला जिले के निवासी सैनिक या असैनिक अंग्रेज अफ़सरों का उचित सम्मान नहीं करते। इसलिए हमारी आज्ञा है कि गुजरानवाला जिले के निवासी उसी तरह उनका सम्मान करें जिस तरह किसी बड़े और धनी भारतीय का ये सम्मान करते हैं। घोड़े या गाड़ी पर यदि कोई सवार हो तो उसे उतर पड़ना चाहिए। यदि किसी के पास छाता हो तो उसे नीचे कर लेना चाहिए और दाहिने हाथ से सलाम करके अंग्रेज अफ़सर के सामने सम्मान का प्रदर्शन करना चाहिए।

लोगों को यहां भी अमृतसर के सामने 'मार्शल-ला ट्राइब्यूनल' या 'समरी अदालतों' के सामने दुर्गति हुई। इस गैर-सरकारी कमेटी का कहना है कि 'जो शहादत हमारे पास है, उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि अदालतों के सामने जो शहादतें हुई वे बनावटी थीं'। प्रायः सभी सार्वजनिक नेता गिरफ्तार किये गये। दीवान मंगलसेन और उनके परिवार के साथ जो व्यवहार किया गया, वह अनुचित था। लोगों की गिरफ्तारी और जेल में उनका रखना अन्याय पूर्ण था, क्योंकि इनमें से अधिकांश जेल से छोड़ दिये गये। उनके ऊपर कभी मुकदमा नहीं चला।

(५) वज़ीराबाद वज़ीराबाद गुजरानवाला के पश्चिम में है। यह बहुत बड़ा जंक्शन है, यद्यपि उसकी आबादी १० हजार व्यक्तियों की उस समय थी। यहां ३० मार्च या ६ अप्रैल को न तो कोई सभा हुई, न कोई हड़ताल ही हुई। १४ अप्रैल को मसजिद में एक सभा की गयी, जिसमें विचारणीय विषय था हड़ताल। १५ अप्रैल को वहां हड़ताल हुई लेकिन इससे उपद्रवी लोगों को संतोष न हुआ। अतएव उन्होंने तार काटे और रेलवे लाइन को उखाड़ फेंका। उपद्रवी लोगों की भीड़ में दूसरे लोग भी शामिल हो गये और दोनों ने मिलकर पादरी, श्री बेली, के मकान को जला डाला। उसने श्री बेली के बहुमूल्य साहित्यिक भण्डार को भस्मसात् कर दिया। कोई नेता इस जघन्य काम में शरीक नहीं था। पुलिस केवल दर्शक मात्र थी। सौभाग्य से किसी अंग्रेज की जान नहीं गयी। १६ अप्रैल को वज़ीराबाद में मार्शल-ला लगाया गया और १७ अप्रैल को बहुत से लोग गिरफ़्तार किये गये। दिन भर अदालतों के सामने मुकदमा चला या जेल में रहने के कुछ दिन बाद वे छोड़ दिये गये। गुजरानवाला की तरह यहां भी करफ्यू आर्डर लगा।

इस प्रतिवेदन में कहा गया है कि अदालतों के सामने जिन लोगों पर मुकदमे चलाए गये उन पर और लोगों की अपेक्षा अधिक काल्पनिक आरोप थे।

(६) निज़ामाबाद—वज़ीराबाद के पास ही एक मील की दूरी पर यह छोटा-सा गाँव है। प्रतिवेदन का कहना है कि निस्सन्देह इस गाँव के कुछ लोग श्री बेली का मकान जलाने में सम्मिलित थे। लेकिन ग़रीब ग्रामनिवासियों को जो सजाएँ दी गयी थीं वे कुछ आदमियों के अपराधों की अपेक्षा बहुत अधिक थीं। उदाहरण के लिए, मुहम्मद रमज़ान नामक उस लड़के के लिए जो अपनी बकरियों को चराते हुए अनजान में अंग्रेज फ़ौजी सिपाहियों के घेरे को तोड़ कर निकल रहा था। वह फ़ौरन गोली से उड़ा दिया गया। कई गवाहों ने इस गैर-सरकारी कमेटी के सामने शहादत दी कि पुलिस ने धमकियों और सजाओं से झूठी शहादतें सबूत-पक्ष की ओर से दिलवायी।

(७) अकालगढ़ ६ अप्रैल को अकालगढ़ में एक सार्वजनिक सभा और हड़ताल भी हुई। १४ अप्रैल को दूसरी हड़ताल हुई। अकालगढ़ या रेलवे स्टेशन से एक मील की दूरी पर १५ अप्रैल को तार काटे गये यद्यपि उस दिन यहाँ कोई हड़ताल नहीं हुई। भीड़ ने इसमें कोई भाग नहीं लिया।

२२ अप्रैल को गुजरानवाला के डिप्टी कमिश्नर यहाँ आए और डाक-बंगले में ठहरे। उन्होंने यह हुक्म जारी किया कि डाक बंगले तक पक्की सड़क बनायी जाए ताकि उनकी मोटर आसानी से आ सके। यहाँ भी मार्शला-ला लगा। अकालगढ़ के प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारियाँ भी की गयीं। तीस आदमियों पर मुकदमे चलाए गये, जिनमें से बीस बरी कर दिये गये। १५ वर्ष के दो बालकों को एक दिन की साधारण क़ैद की सजा हुई ६ आदमियों को सजाएँ दी गयीं और दो ख़िलाफ़ मुकदमा उठा लिया गया। घूस का बाज़ार खूब गर्म रहा। ऐसा इस प्रतिवेदन में कहा गया है।

(८) रामनगर—चिनाब नदी के तट पर बसा हुआ रामनगर अकालगढ़ से ५ मील दूर है, और उसी के समान रामनगर भी है।

६ अप्रैल को यहाँ पर हड़ताल हुई। १५ अप्रैल को आन्शिक हड़ताल हुई। १५ अप्रैल ही को कहा जाता है कि भारत के सम्राट किंग जार्ज का पुतला जलाया गया।

इसके विरुद्ध इस गैर-सरकारी प्रतिवेदन में जो कहा गया है, वही ठीक मालूम होता है। इस बात का जिक्र कम से कम पुलिस डायरी में होना चाहिए था। लेकिन पुलिस डायरी इस मामले में ख़ामोश है। १७ अप्रैल को पुलिस इन्स्पेक्टर ने रामनगर को मंझा डाला उसकी रिपोर्ट में इस घटना का कोई जिक्र नहीं है। इस जलाने का जो कथित नेता था, उसकी गिरफ्तारी ९ मई को हुई, यद्यपि वह पहले भी पकड़ा जा सकता था।

रामनगर की जनता की अन्य स्थानों की तरह गिरफ्तारियाँ हुई और अदालतों में झूठी शहादत पर उन्हें सजाएँ मिलीं।

(९) हाफ़िज़ाबाद—हाफ़िज़ाबाद अकालगढ़ से १५ मील दूर है। वह एक बड़ी मंडी है और उस समय उसकी आबादी अनुमानतः ५ हजार थी। अधिकारियों ने जो

कुछ अमृतसर और लाहौर में १० अप्रैल को किया, उसकी ख़बर हाफ़िजाबाद को लगी। ता० १४ अप्रैल को वहाँ पूरी हड़ताल हुई। कुछ शराबियों ने उसी रात स्टेशन पर धावा बोल दिया और कहा जाता है कि इस भीड़ ने स्टेशन से २०० गज के फासले पर रेलगाड़ी रोक दी और लेफ्टिनेन्ट टाटम पर हमला किया। उनके साथ एक बच्चा भी था। उन्होंने गाड़ी के कुछ शीशे तोड़ डाले और भीड़ में जो लोग थे उनमें से एक अंश ने हमला करने वालों को भला-बुरा कहा। श्री टाटम को उसने उतार कर वज़ीराबाद पहुँचाया। ता० १५ अप्रैल को एक शराबी ने जिसके साथ लगभग १०० आदमी थे, रेल के तार काटे और एक प्वाइंटमैन की कुटिया जला दी। वह तुरन्त गिरफ्तार कर लिया गया। भीड़ उसके साथ तहसील तक गई, जहाँ उन्होंने तहसील की कुछ खिड़कियों को नुकसान पहुँचाया।

२२ अप्रैल को कर्नल ओ० ब्रायन हाफ़िजाबाद पहुँचे। जो अकालगढ़ की बाबत कहा गया है, उन्होंने उसी की पुनरावृत्ति यहाँ भी की। उनका उद्देश्य था सारी जनता को आतंकित करना। इस प्रतिवेदन में संलग्न कई बयानों को इस कमेटी ने उद्धृत करते हुए अपनी यह राय प्रकट की है कि कर्नल ओ० ब्रायन रामनगर की सारी जनता को आतंकित करना चाहते थे।

(१०) सांगलाहिल—सांगलाहिल, अनुपात से, आधुनिक स्थान मालूम होता है। लाहौर से यह ६२ मील दूर है। यहाँ पर रेल का स्टेशन भी है। उस समय इसकी आबादी ४ हजार व्यक्तियों की थी। महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी और नज़रबन्दी की सूचना १२ अप्रैल को यहाँ पहुँची थी। इसी पर रोष प्रकट करने के लिए १२ अप्रैल को यहाँ हड़ताल मनायी गयी। १५ अप्रैल को तार काटे गये। १६ अप्रैल को एक सिक्ख ने बहुत आदमियों के साथ आदमी को मिलटरी गिरफ्तारी से छुड़ा लिया। यह घटना सांगला स्टेशन की कही जाती है। उसी दिन शाम को श्री वेत्स नामक एक टेलीग्राफ़ इन्सपेक्टर पर कुछ आदमियों ने घातक हमला किया।

यह प्रतिवेदन इन घटनाओं को भ्रमपूर्ण बताता है।

१९ अप्रैल को यहाँ भी मार्शल-ला लागू कर दिया गया। ११ नेता गिरफ्तार किये गये और कुछ घंटे बाद वे छोड़ दिये गये। २६ मई को लोगों की पकड़-धकड़ शुरू हुई। लेकिन गिरफ्तार आदमी २९ मई को छोड़ दिये गये। १२ मई को सैनिकों का एक दस्ता आया जिसने सांगला में प्रदर्शन किया, और कुछ गोलियाँ भी चलायीं। उसी दिन १३ नेता फिर से गिरफ्तार हुए। १३ मई को ६४ और आदमी गिरफ्तार हुए। १८ मई को--यह बात बाद में हंटर कमेटी के सामने प्रकारान्तर से मानी गई—५० हजार रुपये देने की बात हुई। हंटर कमेटी के सामने के० ओब्रान ने स्वीकार किया कि सांगला पर ५० हज़ार के जुर्माने की बात हुई, लेकिन उन्होंने इन्कार किया कि ५० हजार रूपये का जुर्माना देने से गिरफ्तारशुदा व्यक्ति छोड़ दिये जायेंगे। जो आदमी नहीं छोड़े गये, उन आदमियों पर अदालतों में मुकदमे चलाये गये और उन्हें ६, ६ महीने की सजायें मिलीं और प्रत्येक पर १००) का जुर्माना किया गया।

इस प्रतिवेदन में कहा गया है कि सड़ी-सी बातों पर लोगों को बेंत लगाए जाते थे,

यद्यपि डाक्टरी पूर्व परीक्षा किसी की नहीं होती थी। इस प्रतिवेदन में बहुत-से आदमियों के बयान हैं जिनका हम उल्लेख नहीं करना चाहते।

(११) सोमन—सांगला से ६ मील दूर सोमन नाम का एक गाँव है। यहाँ पर एक रेलवे स्टेशन भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं—इस प्रतिवेदन के अनुसार—कि अड़ोस-पड़ोस के गाँवों के आदमियों ने स्टेशन को जला दिया और उसे लूट भी लिया। यह कहना असम्भव है कि अड़ोस-पड़ोस के गाँव वालों ने या बाहरी आदमियों ने यह कृत्य किया। इस प्रतिवेदन का कहना है कि जो कुछ भी बदला लेने की नीयत से अधिकारियों ने वहाँ किया, वह अनुचित था।

(१२) मानियांवाला और उसके पड़ोसी स्थान – मानियांवाला एक छोटा-सा गाँव है जिसकी उस समय आबादी ५०० व्यक्तियों की थी। यह गाँव धब्बनसिंह नामक रेलवे स्टेशन के पास है। वहाँ के या अड़ोस-पड़ोस के आदमियों ने अमृतसर की अतिशयोक्तिपूर्ण कहानी सुनी, जिससे जनता उत्तेजित हो गयी और स्टेशन को न केवल जला डाला बल्कि लूटा भी। इस प्रतिवेदन में कहा गया है कि लोगों का यह कृत्य यद्यपि सोचनीय है तथापि अधिकारियों ने जो बदला लिया वह तो हृदयहीन है।

(१३) नवांपिंड—यह गाँव भी छोटा है और धब्बनसिंह रेलवे स्टेशन के पास है। इसकी भी वही दुर्गति हुई, जो मानियांवाला गाँव की हुई।

(१४) चुहलखाना यह महत्वपूर्ण मंडी है। चुहलखाना का गाँव मंडी से डेढ़ मील दूर है। रेलवे स्टेशन मंडी के पास बना है। १२ अप्रैल को यहाँ हड़ताल हुई। ११ अप्रैल को एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें सभी ने भाग लिया। १४ अप्रैल तक और कुछ घटना नहीं हुई। कुछ लोग मंडी से और कुछ लोग पड़ोस के गाँव से जो उस दिन मंडी में थे, स्टेशन की ओर बढ़े और दिन-दहाड़े रेल की पटरी को उखाड़ लिया। जिस समय रेल की पटरी उखाड़ी गयी, उस समय वहाँ पर एक रेल-गाड़ी गुजरी, पर उसका कुछ भी नुकसान न हुआ और न किसी की हत्या हुई। स्टेशन भी जला दी गयी। इसकी भी बड़ी दुर्गति हुई, जो और स्थानों की हुई।

(१५) शेखपुरा—लाहौर से २५ मील दूर किन्तु गुजरानवाला के अन्त पर स्थित है। इसका नाम सम्राट जहाँगीर के घरेलू नाम पर पड़ा है। उस समय इसकी आबादी २५०० व्यक्तियों की थी।

६ अप्रैल को शेखपुरा में हड़ताल मनायी गयी। इसी शाम को एक सार्वजनिक सभा हुई। १३ अप्रैल तक यहाँ शान्ति थी। १४ अप्रैल को फिर हड़ताल तो हुई किन्तु कोई दुर्घटना नहीं हुई। कहा जाता है कि एक नाई की दुकान जबरदस्ती बन्द करायी गयी और एक रोटी पकाने वाले पर हमला किया गया। रात्रि के समय तार घर के तार और स्टेशन के तार काट डाले गये। किन अज्ञात व्यक्तियों ने यह कृत्य किया—यह नहीं मालूम। शायद शेखपुरा के कुछ व्यक्तियों ने किया हो।

जो कुछ भी हो, मार्शल-ला वहाँ १९ अप्रैल से लागू कर दिया गया और उसके अन्तर्गत दूसरे स्थानों की जो दुर्गति हुई, उसके शिकार शेखपुरा वाले भी हुए।

(१६) लायलपुर लायलपुर जिले का सदर मुकाम लायलपुर है। उस समय इसकी आबादी १५ हजार थी।

६ अप्रैल को यहाँ पर हड़ताल हुई। १२ अप्रैल तक और कुछ नहीं हुआ। महात्मा गाँधी, डा० किचूल और डा० सत्यपाल की गिरफ्तारी की ख़बरें उस अरसे में यहाँ पहुँच गयी थीं। अमृतसर और लाहौर में जो गोलीकांड हुआ था, उसकी भी सूचना यहाँ पर पहुँच गयी थी। इस कारण दूसरे दिन फिर हड़ताल हुई, यद्यपि नेता लोग इस हड़ताल के विरुद्ध थे, लेकिन वह नियंत्रण न रख सके और हड़ताल हो गयी। १५ अप्रैल को नेताओं की सूझ-बूझ से हड़ताल समाप्त हो गयी थी। रात्रि में तार काटे गये और स्टेशन के पास भूसे के बंडल जला दिये गये। किसने इन्हें जलाया, यह नहीं मालूम। सरकार की ओर से इस भूसे को जलाने के लिए हर्जाने का दावा किया गया। इसकी जाँच हुई और मजिस्ट्रेट ने मुआवजा देने से इंकार कर दिया क्योंकि जाँच से यह मालूम हुआ कि शेखपुरा के आदमियों का इसमें कोई हाथ न था और न किसी षडयंत्रकारी का यह काम था। लायलपुर के निरपराध आदमियों की वही दुर्दशा हुई, जो अन्य स्थानों के निवासियों की हुई थी।

(१७) गुजरात—यह ऐतिहासिक स्थान है क्योंकि सिक्खों के ख़िलाफ़ युद्ध यहीं पर हुआ था। यह वजीराबाद से ९ मील दूर है। यहाँ पर स्टेशन भी है।

६ अप्रैल को यहाँ हड़ताल मनाने की चेष्टा की गयी, लेकिन श्री रामचन्द्र टंडन जी की कृपा से वह विफल हो गयी। १३ अप्रैल की रात को वजीराबाद से एक मंडली आयी। उन्होंने एक जुलूस निकाला और 'रौलट एक्ट' के ख़िलाफ़ 'हाय-हाय' करते हुए वे निकल गये। १४ अप्रैल को प्रातःकाल उन्होंने (भीड़ ने) लाहौर आदि की कहानी सुनायी और हड़ताल कराने में सफल हुए। १५ अप्रैल को कुछ विद्यार्थी अन्य लोगों के साथ मिशन स्कूल गये और हेड मास्टर से स्कूल बन्द करने की प्रार्थना की। उसने इसे मानने से इंकार कर दिया। उसने कुछ लड़कों के बेंत भी लगाये। इस पर भीड़ ने खिड़कियों पर ढेले फेंके, जिनके कारण शीशे टूट गये। इसी तरह का ख़ुराफ़ात स्टेशन पर भी उन्होंने किया। उन्होंने स्टेशन के कुछ कागज़ जला दिये और कुछ खिड़कियों के शीशे तोड़ डाले। इसके पूर्व कि वे स्टेशन को अधिक नुकसान पहुँचाएँ, सरकारी आदमियों ने गोली चला दी। भीड़ तितर-बितर हो गयी।

१९ अप्रैल को मार्शल-ला गुजरात में भी लागू हो गया, यद्यपि तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर को इसका पता न था।

गुजरात में दो दल थे। एक के साथ—कहा जाता है—कि सरकारी अफ़सरों की साठ-गाँठ थी। दूसरे दल के नेता सेठ चिरागदीन थे। उनकी मैजिस्ट्रेटी भी छिन गयी और म्युनिसिपल कमिश्नरी भी। इस नगर की भी वही दुर्गति हुई जो अन्य स्थानों की हुई।

(१८) जलालपुर जत्तन—१५ अप्रैल को यहाँ पर हड़ताल हुई। १५ या १६ की रात को किसी अज्ञात आदमी ने तार काटे। उस आदमी का आज तक पता नहीं चला।

इस अपराध के लिए बाकायदा मार्शल-ला वहाँ चालू कर दिया गया। १७ आदमियों की गिरफ्तारी हुई जिनमें से एक को जेल ही से छोड़ दिया गया। उसे किसी अदालत के सामने नहीं उपस्थित किया गया। जिन १६ को अदालत के सामने पेश किया गया, उनमें से १० बरी हो गये और ६ को विभिन्न सजाएँ दी गयीं। छात्रों को तीन बार दिन में थाने में जाना पड़ता था। १२ हजार रुपए का जुर्माना गाँव पर लगाया गया, जिसमें से २ हजार रुपए इस प्रतिवेदन के प्रकाशित होने तक वसूल भी हो गये थे।

(१९) मलकवाल—यहाँ पर एक रेलवे स्टेशन है जहाँ १७ अप्रैल को कुछ मजदूरों ने रेल की पटरियों को तोड़ दिया। यहाँ पर भी मार्शल-ला लागू हुआ। मार्शल-ला के अन्तर्गत यहाँ के लोगों की भी वही दुर्गति हुई थी, जो अन्य स्थानों के निवासियों को भोगनी पड़ी थी।

— —

बारहवाँ अध्याय

इस खण्ड के पाँचवें अध्याय के दूसरे भाग के अन्त में इस ग़ैर-सरकारी कमेटी का मार्शल-ला के विषय में और उसके पूर्व की घटनाओं के सम्बन्ध में जो बातें कही गयी हैं, उनका निचोड़ कमेटी ने दिया है। उसी फ़ैसले को—उसी निचोड़ को हम इस अध्याय में देना चाहते हैं; लेकिन उसके पूर्व यह हम बता देना चाहते हैं कि इन १९ स्थानों में किसी अंग्रेज की हत्या नहीं हुई और न वह घायल हुआ, यद्यपि उन स्थानों में सार्वजनिक सम्पत्ति की बरबादी अवश्य हुई। अमृतसर में पाँच अंगरेजों की जानें गयीं और २ अंग्रेजी सैनिकों की हत्या कसूर के उपद्रवियों ने कर डाली। इन दोनों के लिए यह ग़ैर-सरकारी कमेटी बार-बार शोक प्रकट करती है; और उसका कहना है कि इन हत्याओं का कारण जो भी रहा हो, वे हर प्रकार से निन्दनीय हैं। इसी तरह सार्वजनिक सम्पत्ति की बरबादी को भी यह ग़ैर-सरकारी कमेटी अक्षन्तव्य मानती है।

इस सम्बन्ध में यह कह देना जरूरी है कि मार्शल-ला के लगाने के मुख्य कारणों का जहाँ तक ताल्लुक है और वे भी सरकारी अधिकारियों द्वारा हन्टर कमेटी के सामने जो कारण उन्होंने बताये—उनका उल्लेख-मात्र मैंने किया है। ग़ैर-सरकारी प्रतिवेदन में जिन गवाहों के बयान लिये गये हैं, उन्हें मैंने जान-बूझ कर नहीं प्रकाशित किया। इस प्रतिवेदन को जनता को अवश्य पढ़ना चाहिए, ताकि उनको कुछ-कुछ आभास मार्शल-ला के दिनों में सरकारी अधिकारियों द्वारा किये गये अत्याचारों का पता लग जाए। इस प्रतिवेदन में पाठक उन बयानों को पढ़ेंगे।

पंजाब के पाँच जिलों में मार्शल-ला लागू हुआ। उनके नाम हैं (१) अमृतसर (२) लाहौर (३) गुजरानवाला (४) गुजरात और (५) लायलपुर। ये इक्कीस स्थान इन्हीं पाँच जिलों में हैं जहाँ पर मार्शल-ला लगाया गया और लोग हर तरह से सताये गये। कमेटी यह मानती है कि यद्यपि उसकी मन्शा यह थी कि पंजाब के इस दुखान्त नाटक का सही-सही चित्र खींचा जाय ताकि लोगों को मालूम हो जाए कि मार्शल-ला के अन्तर्गत किस तरह के अत्याचार हुए, लेकिन अपनी मन्शा को यह कमेटी पूरा न कर सकी क्योंकि उसके पास जो मसाला था उसका पूर्ण रूप से उपयोग वह न कर पायी और चित्र अधूरा ही रहा।

उपद्रवों का लक्षण क्या था और वे कैसे पैदा हुए? इस प्रतिवेदन में कहा गया है कि कुछ स्थानों पर आग लगायी गयी; दो स्थानो में निरीह अंगरेजों की हत्या हुई; एक या दो जगह छोटी पुलियाँ जलायी गयीं और दो स्थानों में रेलें पटरी से उतरीं। यह सभी मानते हैं कि सैनिक तबका के लोग इन उपद्रवों में शरीक नहीं थे। अधिकांश किसानों ने भी इन उपद्रवों में भाग नहीं लिया। पंजाब की आबादी उस समय २ करोड़ थी। इन उपद्रवों में जिन लोगों ने भाग लिया, उनकी संख्या ढाई लाख से कुछ कम है। ऐसी दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि सारा पंजाब इन उपद्रवों में शरीक था।

फिर क्या कारण है कि शान्तिप्रिय जनता एकदम से बिगड़ उठी? इस ग़ैर-सरकारी कमेटी का कहना है कि सर माइकेल ओडायर ने जनता की शान्तिप्रियता पर अधिक से अधिक तनाव डाला और इसी कारण शान्तिप्रिय जनता रोष के कारण उठ खड़ी हुई। शिक्षित लोगों को उन्होंने नाराज कर दिया। अपने भाषणों में शिक्षितों को वह गाली भी देते थे। उन्होंने रंगरूटों की फ़ौज में भरती की और उनसे धन लिया, 'वार-फन्डों' में उन्होंने सार्वजनिक समाचार-पत्रों का दमन किया। उससे सारा पंजाब अप्रसन्न था। आबादी का कोई वर्ग भी उनसे सन्तुष्ट न था। पंजाब के नीचे उन्होंने बारूद फैला दी थी। महात्मा गाँधी, डा० किचलू और डा० सत्यपाल की गिरफ्तारी की खबरों ने उस बारूद में पलीता लगा दिया और इन पाँच जिलों की जनता उत्तेजित हो गयी।

रौलट एक्ट के विरुद्ध वह समझते थे कि पंजाब में कोई आन्दोलन न होगा। पर पंजाब ने यह दिखा दिया कि वहाँ के लोग हड़ताल करने में देश के अन्य लोगों से पीछे नहीं हैं। वे चाहते थे कि सहानुभूति ढंग से अपने रोष को प्रकट करना। सर माइकेल ओ डायर को इस नीति से जनता भड़क उठी और उसके कुछ अंशों ने इन तमाम उपद्रवों को रच डाला।

जिस समय रौलट अधिनियम के खिलाफ़ पंजाब में प्रदर्शन हो रहे थे, उस समय सर माइकेल ओ डायर ने इस बात की चेष्टा की कि जनता को दबाने में वह समर्थ हों। इसका परिणाम दूसरा ही हुआ। कुछ समय के लिए तो जनता दब गयी, लेकिन उसके बाद अन्य प्रदेशों के नेताओं के पहुँचने के बाद पंजाब की जनता को ढाढस बँधा और उनमें फिर से जान आ गयी।

इस प्रतिवेदन में यह कहा गया है कि कर्नल ओ ब्रान तक ने इस बात को स्वीकार किया है कि पंजाब में जो कुछ भी उपद्रव हुए, उनकी जिम्मेदारी पंजाब ही के आदमियों की थी, उन्हें किसी बाहरी संस्था या नेता ने संगठित रूप से प्रदर्शन करने की उत्तेजना नहीं दी थी। 'पंजाब में जो कुछ हुआ, वह न' बग़ावत थी और न बाहरी नेताओं ही का उसमें कोई हाथ था'। सुनी-सुनाई बातों के आधार पर उन्होंने लोगों को असह्य कष्ट पहुँचाया। सर माइकेल ओ डायर की यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई कि पंजाब में किसी तरह की बग़ावत है उसके पीछे कोई षड्यन्त्र है।

अन्त में प्रतिवेदन कहता है कि मार्शल-ला का पंजाब में लगाना अनावश्यक था। उसका इतने दिनों तक रहना और भी अनावश्यक था। जो शहादत इस प्रतिवेदन के साथ संलग्न है या जो शहादत हन्टर कमेटी के सामने हुई—इन दोनों प्रकार की शहादतों का यही निचोड़ है कि स्थानिक अधिकारियों ने तथ्य और घटना के मूल्यांकन में भारी भूल की।

———

तेरहवाँ अध्याय

इस प्रतिवेदन के तीसरे अध्याय में रौलट बिलों का जिक्र है। अतएव उसकी व्याख्या करना आवश्यक है। अमृतसर या अन्य स्थानों में जो उपद्रव हुए, वे उसी के कारण हुए। एक बात को दोहरा देना अनुचित न होगा। उपद्रवियों का जोश चन्द घण्टों ही में शान्त हो गया था और उसके बाद स्थानिक अधिकारियों को कथित उपद्रवियों की गिरफ्तारी में कोई कठिनाई न हुई। इस प्रतिवेदन का कहना है कि जिस काम को स्थानिक असैनिक अधिकारी कर सकते थे, उसके लिए मार्शल-ला का लगाना अनुचित था। उससे भी अधिक अनुचित उसका दो महीने तक क़ायम रहना था।

रौलट बिल्स क्या थे? लोगों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि केन्द्रीय सरकार दो रौलट बिलों को बनाने जा रही है। इन बिलों को संसद् में प्रस्तुत करते हुए वाइसराय ने जो भाषण दिया, उससे लोगों में असंतोष की मात्रा बढ़ गयी, क्योंकि लोगों ने समझा कि इन बिलों द्वारा भावी सुधारों से उत्पन्न हुई सिविल सर्विस के अँग्रेज मुलाजिमों की आशंकाओं का समाधान हो जाएगा।

रौलट बिल संख्या एक के विषय में हमें कुछ नहीं कहना है, क्योंकि सरकार ने, मालूम होता है, उसे त्याग दिया था।

रौलट बिल नम्बर दो की व्याख्या की जाएगी। न्यायाधीश रौलट के सभापतित्व में दिसम्बर, १९१७ में एक जांच समिति नियुक्त हुई। कमेटी की कार्यवाही गुप्त थी। उसने अपना प्रतिवेदन १५ अप्रैल, १९१८ को दिया। उसकी चार बैठकें लाहौर में हुई और बाकी बैठकें कलकत्ते में हुई। जनता को आज तक नहीं मालूम कि उसके सामने जो शहादत हुई, वह किस तरह की हुई या शहादत देनेवाले कौन थे। जनता की ओर से किसी वकील ने जिरह नहीं की।

उसी कमेटी की सिफारिशों के आधार पर इन बिलों का मसौदा तैयार किया गया था। 'हमने रिपोर्ट को' इस गैर-सरकारी कमेटी का कहना है—"और उसकी सिफ़ारिशों को ध्यान पूर्वक पढ़ा है। चूंकि रौलट कमेटी उस अवस्था का वर्णन करती है जो उस समय उपस्थित नहीं थी, इसलिए यह समझना असंभव है कि उसने ये सिफ़ारिशें क्यों की'। हमें यह मालूम है—यह गैर-सरकारी कमेटी कहती है—डिफ़ेन्स आफ़ इन्डिया एक्ट या उसी तरह का दूसरा एक्ट देश में यदि न रहा तो उपद्रवियों के दबाने का कोई साधन न रहेगा। यह दलील दो मान्यताओं पर आधारित है कि क्रान्तिकारी उपद्रवों को दबाने के लिए न सिर्फ़ ऐसे क़ानून का बनाया जाना आवश्यक है बल्कि वे तभी तक दबाए जा सकते हैं, जब तक ऐसे क़ानूनों का देश में प्रचलन हो। उसकी दूसरी मान्यता भी ग़लत है कि देश में अब तक ऐसे आदमी हैं, जिनकी बाबत यह सन्देह किया जाता है या हो सकता था कि वे क्रान्तिकारी हैं। इस दबाने वाले क़ानून के पक्ष में जनता नहीं थी और बार-बार जनता के प्रतिनिधियों ने केन्द्र की सरकार से अपील की कि वह ऐसा क़ानून न बनाए और जनता द्वारा चुने गये

भारतीय प्रतिनिधियों के विरोध के बावजूद भी सरकार ने इस बिल को केन्द्रीय कौंसिल में रक्खा और उसे पारित किया।

इस बिल पर एक बहस ६ फरवरी १९१९ को हुई। ३५ व्यक्ति इसके पक्ष में थे और २२ भारतीयों ने–२१ भारतीयों ने और वर्मा के १ प्रतिनिधि ने विरोध में अपना मत दिया। १८ मार्च, १९१९, को यह बिल केन्द्र की सभा में पारित हुआ। जो अगले चुनाव होनेवाले थे, उनमें तीन व्यक्ति नहीं खड़े हुए। उनके नाम हैं—(१) पंडित मदन मोहन मालवीय, (२) श्री मज़रुलहक़ और (३) जनाब एम० ए० जिन्ना।

इस बिल को स्थायी रूप से अधिनियम बनाकर सदा के लिए लगाने का सरकारी विचार था किन्तु इम्पीरियल कौन्सिल ने इस बात को मंजूर कर लिया कि यह क़ानून तीन ही वर्ष तक लागू रहेगा। इस क़ानून में ५३ धाराएँ हैं और पाँच भागों में यह विभक्त है। सारे ब्रिटिश भारत में यह क़ानून लागू हुआ। पहले भाग में यह कहा गया है कि यदि गवर्नर-जनरल इन कौन्सिल इस बात से सन्तुष्ट है कि ब्रिटिश इन्डिया के किसी भाग में अराजक या क्रान्तिकारी आन्दोलन के करने को प्रोत्साहन मिल रहा है तो जनरक्षा के हित में सरकार यह उचित समझती है कि ऐसे जुर्मों की जल्द से जल्द सुनवायी की जाए। पहला भाग तुरन्त लागू हो जाएगा, सूचना प्रसारित होते ही।

अदालतों के सामने किन अपराधों की सुनवायी हो सकेगी? राजद्रोह का मामला, जो बहुत जटिल है, घातक हथियारों द्वारा उपद्रव करना; विभिन्न जातियों में दुश्मनी पैदा करना; किसी घातक हथियार या हथियारों से किसी व्यक्ति पर हमला करना; किसी को चोट पहुँचाना; उसकी जायदाद को हड़प करना या किसी को गैर क़ानूनी कार्य के लिए विवश करना; या किसी को मारने का भय दिखाना ताकि वह दूसरों से रुपया वसूल कर या डकैती डाले। इस तरह हिन्दू-मुसलमानों के धार्मिक मामलों पर झगड़ा करना या निजी उद्देश्य से किसी से रुपया हड़प करना या पेशेवर डाकुओं के द्वारा डकैती डालना – सभी इस अधिनियम के अन्तर्गत आ जाते हैं, यदि एक बार भी सरकार को यह आशंका हुयी कि इस प्रकार का आन्दोलन ब्रिटिश इन्डिया के किसी भाग में किया जा रहा है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत तुरन्त सुनवायी का अर्थ क्या है? बिला इलज़ाम लगाए अदालत को अधिकार होगा कि मुकदमे की सुनवायी वह शुरू कर दे। अदालत के फ़ैसले के ख़िलाफ़ कोई अपील नहीं हो सकेगी। अपराधों की सुनवायी गोपनीय होगी। जहाँ चाहे, वहाँ अदालत अपराधों की सुनवायी कर सकती है व अराजकता के विषय में मुलाज़िम की ओर कोई बात ही उठायी जा सकेगी।

इस अधिनियम के सेक्शन ७ के अनुसार क्रिमीनल प्रोसीड्योर कोड उन मामलों में लागू न समझा जाएगा, जहाँ तक इस अधिनियम के पहले भाग के अनुसार इनकी संगत नहीं बैठती। इन अपराधों के करनेवालों को मृत्यु दण्ड देने तक की सज़ा है। मुलज़िम को सिर्फ़ एक बार स्थगन का अधिकार दिया गया है। जो स्थगन होगा, उसकी अवधि १४ दिन से ज्यादा नहीं होगी। इन्डियन एविडेन्स ऐक्ट की धारा ३२ और धारा ३३ इन मुक़दमों पर लागू नहीं होती। अधिनियम के इस सेक्शन के द्वारा न्याय का उपहास किया गया।

रौलट अधिनियम के प्रथम भाग के विषय में इतना ही कहना काफी है। इस अधिनियम का दूसरा भाग इससे भी ख़तरनाक है। जिस प्रान्त में यह अधिनियम लागू कर दिया जाएगा, उसमें प्रान्तिक सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि सूचना के प्रकाशित होते ही फलां क्षेत्र में अधिनियम का भाग दो लागू कर दिया जाए। यदि स्थानिक सरकार संतुष्ट है। अधिनियम के भाग २ के अन्तर्गत वह किसी से मुचलका ले सकते हैं और उसे आज्ञा दे सकते हैं कि अधिक से अधिक एक साल तक वह शान्ति भंग न करेगा। प्रान्तिक सरकार को सूचना दिये बिना वह अपने निवास-स्थान को नहीं बदलेगा। इस भाग के अन्तर्गत प्रांतिक सरकारों को यह भी अधिकार होगा कि किसी व्यक्ति को किसी एक स्थान पर नज़रबन्द कर दें। इस भाग में इन अपराधों को रोकने के लिए प्रान्तिक सरकारों को पूर्ण अधिकार दिये गये थे।

दूसरा भाग यदि पहले भाग से बदतर है तो तीसरा भाग दूसरे भाग से भी अधिक-दमनकारी है। केन्द्र के तात्कालिक गृह मंत्री ने कहा था कि तीसरा भाग उसी समय लागू होगा जब गवर्नर-जरनल-इन-कौन्सिल को संतोष हो जायगा कि उस क्षेत्र में निर्धारित अपराधों की संख्या इतनी बढ़ गयी है कि तीसरे भाग के बिना सार्वजनिक रक्षा नहीं हो सकती।

चौथा भाग उन व्यक्तियों पर लागू है, जिनके ख़िलाफ़ डिफेन्स आफ़इंडिया के अनुकूल कार्यवाही की गयी या उन लोगों के ख़िलाफ़ यह भाग लागू होगा जो जेल में हैं और भाग तीन के अन्तर्गत आते हैं।

पाँचवें भाग में यह कहा गया है कि जो कार्यवाही इस अधिनियम के अनुकूल होगी वह रद्द न समझी जाएगी, यद्यपि उसके रद्द करने का हुक्म दे दिया गया हो। तीसरे भाग में गिनाये गये व्यक्ति यदि ब्रिटिश भारतवर्ष के बाहर हैं तो उनपर यह अधिनियम लागू न होगा। यदि वह ब्रिटिश भारतवर्ष में पकड़ लिए गए तो उनपर उसी तरह मुकदमा चलाया जाएगा, जिसका वर्णन भाग तीन में है।

इस अधिनियम के विरुद्ध विरोध का वह तूफ़ान उठा, जैसा भारत में कभी नहीं उठा था। सरकार की ओर से यह कहा गया था कि जो तूफ़ान उठा, उसका यह कारण था कि अधिनियम की धाराओं को लोगों को उल्टा-सीधा समझाया गया था और उसके सम्बन्ध में बहुत-सी अत्युक्तिपूर्ण बातें कही गयी थीं। अत्युक्ति-पूर्ण बातों का नमूना यह था: 'न अपील, न दलील, न वकील'। यदि जनता में इतना ही प्रचार हुआ तो अधिनियम की बुराइयों को बढ़ाकर नहीं बताया गया। हमारी राय में कोई भी आत्मसम्मानी व्यक्ति इस बात को सहन नहीं कर सकता कि समाज पर इस तरह का अत्याचार हो। सरकार का अपराध तो उसी समय पूरा हो गया था जिस समय जनता के प्रतिनिधियों की आवाज को उसने नहीं सुना। 'इस सम्बन्ध में हमें'—यह कमेटी कहती है 'एक बात की याद दिलाना आवश्यक है। भारतवर्ष के वाइसराय को अधिकार है कि आकस्मिक घटनाओं के होने पर वह अध्यादेश निकाल सकता है।'

इस कमेटी के चार नाम हमने दिये हैं। आदि में पं० मोतीलाल नेहरू भी इस कमेटी के एक सदस्य थे। उनके सामने शहादत ले ली गयी थी। उसके बाद ही वह

कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हो गये। अतएव इस कमेटी से उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया। कमेटी ने उनका इस्तीफ़ा मंजूर कर लिया, लेकिन उनके स्थान पर किसी और को कमेटी ने नियुक्त नहीं किया।

श्री मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस के सभापति के पद से एक बड़ा सहाहनीय काम किया। कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से उन्होंने भारत-मंत्री के नाम एक तार भजा, जिसमें उनसे कहा गया था कि जिन आदमियों को फ़ासी की सजा हुई है, उनकी फ़ासी की सजा मुलतवी कर दी जाए। इस तार के पाते ही भारत-मंत्री (श्री मांटेग्यू) ने वाइसराय को तार दिया कि उन लोगों को फांसी न दी जाए। भारत-मंत्री की आज्ञा पाकर, भारत के वाइसराय इसके लिए विवश हो गये कि वह पंजाब की प्रान्तिक सरकार को तार देकर उन लोगों की फांसी की सजा रुकवा दें। इस तरह पं० मोतीलाल नेहरू ने पंजाब की विधवाओं को पुत्रों के वियोग से और न जाने कितनी पत्नियों के सुहाग को बचा लिया। इस बात का उल्लेख करना आवश्यक था। पं० मोतीलाल नेहरू के तार ने कितने ही आदमियों को फांसी के तख्ते पर झूलने से बचा लिया। जहाँ उन्होंने अनेक अनुकरणीय काम किये, वहाँ इनके इस तार का ज़िक्र करना एक छोटी-सी बात दिखायी देती है, पर यह छोटी-सी बात नहीं है। उन्हीं के तार के कारण भारतमंत्री ने वाइसराय को तार दिया। उनके और कामों की अपेक्षा, उनका तार देना अनुपम माना जाएगा। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी है।

पहले इस कमेटी में श्रीमान फ़जलुल हक़ का नाम रखा गया था, लेकिन कार्यवश उन्हें कलकत्ते जाना पड़ा। अतएव कमेटी ने उनकी जगह पर श्रीयुत एम० आर० जयकर को अपना सदस्य बना लिया।

———

चौदहवाँ अध्याय

केन्द्र की असेम्बली में महामना जी

मालूम होता है कि मालवीय जी की केन्द्रीय कौंसिल की सदस्यता का अन्त बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी और पंजाब पर भाषणों के बाद हुआ। सन् १९२७ की केन्द्रीय असेम्बली में वह ज़रूर गये लेकिन सन् १९३० की असेम्बली में वह न जा सके क्योंकि उनका नाम प्रयाग के मत-दाताओं की फ़ेहरिश्त में किसी कारण से नहीं था, यद्यपि विजेता ने यह आश्वासन मत-दाताओं को दिया था कि जब मालवीय जी का नाम मत-दाताओं की फ़ेहरिश्त में फिर से आ जाएगा, उस समय वह कांग्रेस की पार्लामेन्टरी बोर्ड से प्रार्थना करेंगे कि उनकी जगह पर मालवीय जी का चुनाव हो, लेकिन उनकी प्रार्थना पर बोर्ड ने ऐसा करना उचित नहीं समझा।

श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टंडन ने, कहते हैं, मालवीय जी के चुनाव के सम्बन्ध में प्रयत्न किया, लेकिन उनका प्रयास कुछ कारणों से विफल हुआ।

सन् १९२७ की केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव के लिए बनारस-गोरखपुर क्षेत्र से श्री घनश्यामदास बिड़ला को मालवीय जी ने अपने दल की ओर से खड़ा किया था। श्री मोतीलाल नेहरू से, जो स्वराज्य-पार्टी के सर्वेसर्वा थे, मालवीय जी ने यह अनुरोध किया कि श्री घनश्यामदास बिड़ला का विरोध स्वराज्य पार्टी न करे और उन्हें निर्विरोध चुन जाने दे, पर मोतीलाल जी नेहरू ने निर्विरोध श्री घनश्यामदास बिड़ला को केन्द्रीय असेम्बली में न जाने दिया। उन्होंने कांग्रेस की ओर से एक सज्जन को खड़ा किया और घमासान युद्ध दोनों में हुआ। बिड़ला जी जीत तो गये, पर वह इसके बाद फिर कभी खड़े नहीं हुए।

मालवीय जी रुपए के भाव पर—रुपए का भाव एक शिलिंग चार पेंच हो या एक शिलिंग छः पेंस हो कई बार बोले लेकिन उनके वे भाषण पंडित मोतीलाल नेहरू के भाषण के सामने कुछ फीके रहे, इसलिए उनके इस भाषण के विषय में हम चुप हैं, क्योंकि स्वराज्य पार्टी के अध्यक्ष श्री मोतीलाल जी थे और मालवीय जी उस दल के सभापति थे, जिसने यह प्रण किया था कि काम्यूनल अवार्ड से जनित प्रश्नों के अतिरिक्त वह दल स्वराज्य पार्टी का साथ देगा।

सन् १९३० में मत-दाताओं की फ़ेहरिश्त में नाम न होने के कारण मालवीय जी के स्थान पर श्री श्रीप्रकाश चुने गये। इसका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। इस तरह केन्द्र की असेम्बली से मालवीय जी का सम्बन्ध टूट गया।

अतएव हमने दूसरे खण्ड में मालवीय जी के उन भाषणों का ज़िक्र किया है जो सन् १९१९ तक उन्होंने भाषण किये थे। इस प्रकार से उनका जन्म ही इसलिए हुआ था कि काशी विश्वविद्यालय विधेयक और पंजाब सम्बन्धी भाषण वह दें। उनका मत-दाताओं की सूची में नाम न होना कुछ समझ में नहीं आता। तरह-तरह की अटकलें लोग लगाते

हैं, लेकिन निश्चयपूर्वक कोई इस बात को कहने के लिए तैयार नहीं है कि मत-दाताओं की फ़ेहरिश्त में उनका नाम क्यों न आया ?

मालवीय जी का केन्द्र की असेम्बली की सदस्यता का अन्त इस तरह हुआ। यह दुःख की बात है कि देश का एक महापुरुष इस तरह अपनी सदस्यता से वंचित रहे। स्वराज्य पार्टी के किसी सदस्य का हाथ इसमें रहा हो तो लज्जा की बात है। उस समय, कहा जाता है, कि एक मुस्लिम डिप्टी कलेक्टर के अधीन मत-दाताओं की फ़ेहरिश्त को बनाने का काम सौंपा गया था। वही प्रयाग के मत-दाताओं की फ़ेहरिश्त तैयार करते थे। क्या मालवीय जी का नाम उस फ़ेहरिश्ते में न रखने में उनका हाथ था ? ये सिर्फ़ अटकलें हैं। जैसा हमने कहा है कि निश्चयपूर्वक इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही जा सकती।

मालवीय जी की जीवनी

तीसरा खण्ड

पहला अध्याय

श्री मालवीय जी पर स्वामी श्रद्धानन्द और श्री जवाहरलाल नेहरू के लेख

स्वामी श्रद्धानन्द और भारत के प्रधान मन्त्री, श्री जवाहरलाल नेहरू, के लेखों का उद्धरण

स्वामी श्रद्धानन्द मालवीय जी के विषय में अपनी सम्मति इन शब्दों में प्रकट करते हैं कि मालवीय जी की निःस्वार्थ-प्रियता, सदाशयता, उच्चता, निरभिमानता तथा प्रजा-तन्त्रीय भावना उनके विशेष गुण थे। इससे अधिक क्या कहा जा सकता है? जिन दो घटनाओं का स्वामी जी ने वर्णन किया है, उन घटनाओं से मालवीय जी के ये सब गुण प्रकट होते हैं। स्वामी जी ने कहा था "दलबन्दी का नेता बनने की इच्छा से वह कोसों दूर थे। वह जो कुछ करते, उसमें देशभक्ति तथा सेवा-भाव सर्वोपरि रहता था। इसी अमृतसर (१९१९) कांग्रेस की बात है। प्रतिनिधियों से भरी हुई स्पेशल रेलगाड़ियाँ देश से आ-आकर खाली हो रही थीं। स्वागत-समिति ने प्रतिनिधियों के ठहरने के लिए कमरों का प्रबन्ध किया था पर देवराज इन्द्र ने उस दिन ऐसा पानी बरसाना शुरू किया जैसा कहा जाता है कि पिछले बीस-पच्चीस सालों में पंजाब में कभी नहीं बरसा था। पंजाब और उत्तरप्रदेश के प्रतिनिधि पहले से पहुँच गये थे। सारे तम्बुओं में पानी भर गया। उनमें ठहरे हुए प्रतिनिधियों को तीन बड़ी पक्की इमारतों में ठहरा दिया गया, पर रेलवे स्टेशन आते हुए प्रतिनिधियों से खचाखच भर गया। अन्त में अमृतसर के नागरिकों ने प्रतिनिधियों को अपना मेहमान बनाकर रखने का प्रस्ताव किया। इसका नतीजा यह हुआ कि दो बजे दिन तक एक भी प्रतिनिधि ऐसा नहीं रह गया जिसका प्रबन्ध न हो गया हो। रेलवे पर हमारे विनम्र और सीधे-सादे नेता पं० मदन मोहन मालवीय बराबर बने रहे। भूख-प्यास की चिन्ता न कर उस समय तक (वह) काम करते रहे जब तक अन्तिम मेहमान भी अपने नियत स्थान के लिए रवाना नहीं हो गया।

"पंजाब में मालवीय जी के सम्पर्क के साथ मेरा प्रेम भी उन-पर उत्तरोत्तर बढ़ता गया और मैं उनकी उदारता तथा अनुशासन की महान् भावना का प्रशंसक बनता गया। यहाँ मैं इस बात का एक और उदाहरण दे दूँ। हण्टर-कमेटी—पंजाब हत्याकाण्ड की जाँच करने वाली सरकारी कमेटी लाहौर में थी। पंजाब-सरकार ने जाँच होने के समय तक क़ैद किये हुए नेताओं को छोड़ना अस्वीकार कर दिया था। महात्मा गांधी का कहना था, चूंकि सरकार ने हम लोगों के साथ तय की हुई जाँच कमीशन के सामने सबूत पेश करने की एक शर्त को तोड़ दिया है, लिहाज़ा हमें कमेटी के सामने सबूत पेश करने से इन्कार कर देना चाहिए। पर जेल के बाहर जितने पंजाबी नेता थे, वे सब और उनकी हमदर्दी में बाहर से आये हुए प्रतिनिधि भी पं० मदनमोहन मालवीय जी के नेतृत्व में सबूत पेश करने के पक्ष में थे। इस पक्ष का अपने विरुद्ध निर्णय हो जाने पर महात्मा गांधी ने दो पत्र लिखवाये—एक पंजाब सरकार के लिए और दूसरा समाचार-पत्रों के लिए; जिसमें

उन्होंने साफ़-साफ़ लिखा था चूंकि वह सबूत पेश करने के विरुद्ध थे, अतः, उनका अब पंजाब में रहना बेकार था और तुरन्त ही छोड़ने जा रहे हैं। ये दोनों मसौदे भाई ऐन्ड्रूज के हाथ में थे और वह उन्हें लेकर मालवीय जी के पास जा रहे थे जो लाला हरकिशन दास के स्थान पर ठहरे हुए थे। उसी समय अमृतसर से मैं वहाँ पहुँच गया। ऐन्ड्रूज ने मुझे वे दोनों मसौदे दिये और उन्हें पढ़कर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। गांधी जी के साथ इस तरह खुला मतभेद होने के कारण कमेटी की वक़त पाई बराबर न रह जाती। मैं अन्दर गया और देखा कि अमृतसर के लाला गिरधारीलाल को फ़ोन किया जा रहा था कि हन्टर-कमेटी जब जलियाँवाला बाग़ और झगड़े के अन्य स्थानों का निरीक्षण करने जाय, तब वह वहाँ उपस्थित रहें। मैंने जीवनलाल (लाला हरकिशनलाल के पुत्र) को फ़ौरन रोका और उनसे लाला गिरधारीलाल से फ़ोन पर यह कहने के लिए कहा कि वह पहली गाड़ी से लाहौर पहुँच जायें। उधर मैंने मालवीय जी से प्रतिवाद किया और उन्हें उसी दिन दोपहर में हन्टर-कमेटी के सामने गवाही देने के निर्णय पर पुनः विचार करने के लिए एक सभा बुलाने के लिए राजी कर लिया।

"गांधी जी के ठहरने के स्थान पर कमेटी की बैठक हुई; पर बैठक के पहले ही मैंने पं० मोतीलाल नेहरू और श्री सी० आर० दास को सन्तुष्ट कर लिया कि गवाही देना हम लोगों के हित में न होगा। यहाँ पर उन बातों का देना व्यर्थ है, जो मैंने उन नेताओं के सामने रखी थीं। इतना ही कहना काफी है कि वे मुझसे सहमत हो गये, पर दो बड़े महान् पंजाबी नेता अपनी बात पर दृढ़ बने रहे और मालवीय जी ने उन्हें अपने समर्थन का वचन दे रखा था। चार घन्टे की निरन्तर बहस के बाद कमेटी में बिलकुल रुकावट पैदा हो गयी थी, तब मैं मालवीय जी को अलग लिवा ले गया और उनसे इस स्थिरता का कारण पूछा। वह एक ओर तो बहुमत के निर्णय के विरुद्ध जाने को तैयार नहीं थे, दूसरी ओर उनका निजी मत अल्प मत वाले उन दोनों नेताओं के पक्ष में था। मैंने उन्हें सुझाया कि वह वोट ले लें और अपना मत अल्प मत वालों के साथ दें। इनके कन्धों से जैसे बहुत बड़ा बोझ-सा उतर गया। वह आये और अल्प-मत के साथ वोट दिया और जब गवाही देने के विरुद्ध बहुमत से निर्णय हो गया तो पं० मदनमोहन मालवीय ने पंजाब सरकार के नाम भेजे जाने वाले बहुसंख्यक पक्ष का मसौदा स्वयं ही लिखा और उसकी सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ ली। निस्वार्थपन और प्रजातन्त्रीय भावना का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण था। यह उन अनेकों अवसरों में केवल एक है जब मालवीय जी ने राजनीतिक नेताओं के सामने शान्त किन्तु शानदार उदाहरण पेश किया था। अपने समय के महान् नेता महात्मा गांधी तथा मालवीय जी को समझने में यह घटना हमारी काफ़ी मदद करती है। अपनी बात न मानी जाने पर गांधी जी सरकार को पत्र लिखकर पंजाब छोड़कर जाने के लिए तैयार थे पर मालवीय जी! उन्हें बहुमत के सामने सिर झुकाने में कोई कठिनाई नहीं हुई।"

इसके बाद मालवीय जी के गुणों की जो व्याख्या स्वामी जी ने की वह ऊपर दे दी गयी है।

महामना की जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रयाग में भारत के प्रधान मन्त्री, श्री-जवाहर लाल नेहरू, ने मालवीय जी को यह श्रद्धांजलि अर्पित की—

'मालवीय जी का जन्म-दिवस हमारे देश के लिए एक शुभ दिन है। हम लोगों के लिए विशेष कर जो प्रयाग नगर के निवासी हैं। आज एक पिछला गुज़रा हुआ ज़माना मेरी आँखों के सामने आता है, ख़ास कर वह ज़माना जब मैं थोड़ी-बहुत पढ़ाई करके इलाहाबाद वापिस आया था। यों तो बहुत बचपन से, अब तो ठीक याद भी नहीं कि कब से, मालवीय जी को दूर से मैं देखता रहा हूँ, वैसे ही जैसे बच्चे देखते हैं बड़ों को। वह मुझसे प्रेम करते थे और मैं उनका आदर करता था। फिर एक ज़माना गुज़रा और मैं बाहर रहा। भारत वापिस आया तो बहुत बातों में लग गया। राजनीतिक बातों में भी लगा। उस समय जवानी का जोर था, जोश था। मुझे याद है कि उन दिनों मैं यहाँ भारतीय भवन में अक्सर उनके पास जाता था। मेरे मन में शङ्काएँ थीं, परेशानी थी कि क्यों कुछ नहीं होता, लोग ढीले क्यों पड़ जाते हैं। मैं उनसे पूछता था, और वह मुझे समझाते थे, कुछ समझ में भी आता था, फिर भी दिमाग़ परेशान रहता था। यह परेशानी आम तौर से थी। हिन्दुस्तान की हालत कुछ ठीक नहीं मालूम होती थी। ठीक थी भी नहीं। विशेषकर मुझे वे दिन याद हैं जब मैं शुरू-शुरू में उनके पास जाता था—कभी अकेला, कभी किसी और के साथ। उनसे यहाँ का कुछ राजनीतिक हाल जानने की कोशिश करता था। फिर मैं स्वयं इन बातों में पड़ा और उनसे मिलने के अनेक अवसर मिले। फिर दुनिया की पहली बड़ी लड़ाई का ज़माना आया। हमारे यहाँ का राजनीतिक काम और ठंडा हो गया; क्योंकि दुनिया की लड़ाई चल रही थी। कुछ ध्यान उधर जाता था कि दुनिया का अब क्या होगा। इस लड़ाई के दौरान में फिर कुछ नयी-नयी बातें हुईं और फिर से हल्के-हल्के हिन्दुस्तान उठा और हवा बदलने लगी। शायद बाज़ लोगों को याद हो वह ज़माना, जब लोकमान्य तिलक ने एक होमरूल लीग शुरू की थी और एक श्रीमती एनी बेसेन्ट ने। हमारी संस्था कांग्रेस भी, जिसके सबसे पुराने और बड़े नेता मालवीय जी थे, कुछ जागने लगी थी।

लड़ाई ख़त्म हुई और दूसरी बातें सामने आयीं। थोड़े ही दिनों बाद पंजाब का हत्याकाण्ड हुआ। मार्शल-ला वग़ैरा का ज़माना। और उसमें मालवीय जी का एक बहुत बड़ा हिस्सा रहा—यानी उसकी तहक़ीकात में, जाँच-पड़ताल में और उनकी सहायता करने में। उस समय उनके साथ मुझे बहुत काम करने का मौक़ा मिला। लाहौर में, पंजाब में, अमृतसर में और कुछ शिमला में भी; जहाँ उस समय पुरानी इम्पीरियल कौन्सिल की मीटिङ्ग होती थी। मालवीय जी को तो दूर से बहुत दिनों से जानता था। यहाँ पास से बहुत कुछ जानने का मौक़ा मिला। उन्होंने हमेशा बहुत मुहब्बत और प्रेम से मुझे बातें बतलायीं, समझायीं। कभी-कभी मैंने उनसे बहस करने की भी जुर्रत की, उसको भी उन्होंने प्रेम से समझाने की कोशिश की। कभी-कभी मैं उनसे पूरी तरह से सहमत नहीं हो पाता था, लेकिन उनका समझाने का तरीक़ा मीठा था। उनका तरीका ही मीठा था और प्रेम करने का। उसका एक ज़बरदस्त असर होता था, चाहे कोई उनकी किसी बात से सहमत हो या न हो। उसके बाद असहयोग आन्दोलन शुरु हुआ और तरह-तरह

की बातें भी। गान्धी जी मैदान में आये। लेकिन इस सारे ज़माने में भी मालवीय जी का असर महज़ इलाहाबाद पर ही नहीं, सारे भारत की राजनीति पर बहुत ज़बरदस्त रहा।

कभी-कभी हम, उस समय के नौजवान, बावजूद उनके प्रति अपनी मुहब्बत के, उनसे कुछ शिकायत करते थे शिकायत यही कि हमारी राय में उस वक्त वह धीमे चलते थे। यह तो हमारी, क्या कहूँ, अपनी जवानी का एक जोश था कि हम समझते थे कि जो हमारी बात को पूरी तरह से मंजूर न करे, वह धीमा है। ख़ैर, कांग्रेस जब से शुरू हुई, वह हमारी राजनीतिक आन्दोलन की एक ख़ास निशानी रहे हैं। उसे शुरू करने में, बनाने और बढ़ाने में मालवीय जी का एक बहुत बड़ा हिस्सा रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि समय की हवा देख कर भारतीय राजनीति में मालवीय जी अगुआ भी रहे और एक कड़ी भी रहे जोड़ने की —उनलोगों को, जो कांग्रेस में आगे-पीछे गिने जाते थे, यानी गरम और नरम दल वालों को। उनका स्वभाव ही बहुत विरोध करने का नहीं था। यह तो एक बहुत ऊँचे दर्जे की बात है कि वह अपनी राय पक्की रखते हुए भी मिलकर रहते थे और दूसरों को मिलाने की कोशिश करते थे।

फ़िर वह जमाना आया जब उनसे अक्सर ही मेरा मिलना-जुलना होता रहा। इस तरह की सब तस्वीरें आज हमारे सामने आती हैं और मैं देखता हूँ कि इन सब वर्षों में उनका कितना बड़ा हाथ रहा अपनी राजनीति को ढालने में। यह तो हुई हमारी राजनीति की बात, जो अपने में खुद ही बड़ी बात है। दूसरी बड़ी बात थी उनका हमारी पुरानी संस्कृति के प्रति ख़ास झुकाव। उसको बढ़ाने की यह हर वक्त कोशिश करते थे और उसकी निशानियाँ तो आपको हर जगह मिलेंगी। उस समय की हालत कुछ ऐसी थी। वह जो बातें कहते थे, वे मेरी राय में बहुत सही थीं। लेकिन, उनपर बहसें हुई और वह बहस अब तक जारी है कभी भाषा के मामले में कभी कुछ और मामलों में। लेकिन मालवीय जी किसी भाषा के विरोधी नहीं थे। वह चाहते थे कि हिन्दी और संस्कृत की यहाँ तरक्की हो भारत में, और यह एक बहुत ठीक बात थी। वह जो बात करने की कोशिश करते थे, बिना किसी का विरोध किए हुए। विरोध करने का सवाल ही नहीं है। विद्या और इल्म का विरोध नहीं होता; बल्कि वह तो एक धन-दौलत है जो हमको ऊँचा करती है और जितनी ही वह अधिक हो उतना ही अच्छा। अपने देश की तो अवश्य और दूसरे देशों की भी वह हो तो और भी अच्छा। इससे हम बढ़ते हैं।

उस समय के हमारे जो राजनैतिक नेता थे वे तरह-तरह के थे। यह जमाना ऐसा था कि हमारे देश में काफी बड़े आदमी हुए। एक ख़ास जमाना था जब बहुत बड़े आदमी हुए सारे देश के हिस्सों में। उनमें से अधिकतर कांग्रेस की ओर खिंचे। कुछ बाहर भी रहे। हर तरह के लोग थे और वे एक-से नहीं थे। अलग-अलग उनकी बातें थीं, अलग-अलग मजमून थे। लेकिन उस समय के उन बड़े नेताओं में प्राचीन संस्कृति की ओर सबसे अधिक ध्यान मालवीय जी का रहा। यह एक अच्छी बात थी। यों भी अच्छी होती, लेकिन उस समय की स्थिति-विशेष में तो वह बहुत ही अच्छी थी; क्योंकि देश कुछ भटक रहा था। भटक गया था। पहली बात तो यह कि हमारे लोगों में, बड़े-छोटे सभी में, अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की एक नयी जाति-सी कायम हो गयी थी। क़ायम तो नहीं हुई

थी, हो रही थी। हालाँकि राजनैतिक जीवन में हम अंग्रेजी हुकूमत का मुकाबला करते थे, वह रोज-बरोज शख्त होता जाता था। लेकिन अंग्रेजी संस्कृति का, संस्कृति क्या अंग्रेजियत का उस जमाने के हमारे नेताओं पर ज्यादा असर था। यह आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसा तो होना ही था। और देशों में भी ऐसा ही हुआ। खास अंग्रेजी ही नहीं, सारे योरप में एक नया ढंग निकला था और उसके पीछे था नया ज़माना इण्डस्ट्रीज़ का, कारखाने का, विज्ञान का। और इसके जो नतीजे हुए, वे तो एक अच्छी चीज़ हुई थी और उसे अपनाने की हम कोशिश करते थे। लेकिन इसके अलावा भी ऊपरी चीजें हैं। थोड़े बड़े आदमी बड़ी बातों को देखते थे। और लोग तो छोटी बातों को ही देखते थे। मैं अंग्रेजियत की बात कह रहा हूँ। तो मालवीय जी ने कोई विरोध इन बातों का भी नहीं किया था; हाँ, अपना सारा वजन उन्होंने हिन्दुस्तानियत पर, भारतीयता पर डाला और तराजू के पलड़े को कुछ बराबर करने पर। उस समय भी बहुत सारे लोग थे, बड़े विद्वान् लोग थे, संस्कृति के बड़े पंडित लोग भी थे; पर जहाँ तक मेरा विचार है, राजनैतिक नेताओं में, बड़े नेताओं में मालवीय जी ही शायद इस मामले में सबसे आगे थे। वे रोकते थे अंग्रेजियत की बाढ़ को, पर विरोध करके नहीं बल्कि अपने काम से, अपने विचारों से और कोशिश करते थे अपनी संस्कृति को बढ़ाने की।

इस सिलसिले में उनका सबसे बड़ा काम हुआ हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना। यह बड़ी भारी बात थी। विश्वविद्यालय के सामने उद्देश्य था, लक्ष्य था, आजकल के ज़माने के विज्ञान और विज्ञान की औलाद यानी टेक्नालाजी, इण्डस्ट्री वगैरह को पुरानी भारतीय संस्कृति के साथ जोड़ना। एक मानी में यह सबसे बड़ा काम था भारत के लिए। अब भी है, क्योंकि यह एक-दो रोज का काम तो नहीं है। एक तरफ पुरानी भारतीय संस्कृति है जिसको हमें अच्छी तरह समझना चाहिए। आखिर हम लोग उसी में ढले हैं और भारत इन सैकड़ों-हजारों बरसों से उसके साये में पला है। उसका असर हमारे रगोरेशे में है। उसमें कुछ खराबियां पैदा हुईं। पुरानी संस्कृति में नहीं, उसके बदलते हुए ढंग में। सब पुराने लोगों में, सभी पुरानी क़ौमों में ये बातें आ जाती हैं। उसमें भी खराबियाँ आयीं, लेकिन जो चीज असली उसमें थी, वह खरा सोना था। यह तो बेश-कीमती था, और भारत के लिए उसे भूल जाना एक तरह से अपने को भूल जाना है। क्योंकि उसी मिट्टी में हम पैदा हुए और उसी से बने। उसे भूल जाय तो हमारी कोई जड़ ही नहीं रहती, जो बहुत आवश्यक बात है। लेकिन उसी के साथ उतनी ही आवश्यक बात यह है कि हम आजकल की दुनिया को समझें। आजकल की दुनिया विज्ञान की है, अगर हम उसको नहीं समझते तो हम पिछड़ जाते हैं। उसको न समझने से हमारी आज़ादी चली गयी। आज हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि हम उसको समझ कर अपने देश की आर्थिक स्थिति को बढ़ायें, और उसे और अच्छा करें। तो, यदि आप इन दोनों पहलुओं को देखें, तो हमें दोनों की ही आवश्यकता महसूस होगी। हमारे देश के लिए दोनों ही आवश्यक हैं। एक उसमें खाली हो और दूसरा न हो तो हम नहीं चल सकते, बढ़ नहीं सकते। अगर पहली बात न हो। यानी हम अपना पुराना जमाना भूल जाँय, तो जैसा मैंने आपसे कहा, हम बेजड़ के हो जाते हैं, हम एक नक़लो लोग रह जाते

हैं। नक़ल करके कोई कौम बहुत बढ़ती नहीं, और बातों को हर क़ौम को सीखना है, ज़रूर समझना है, ज़ोरों से सीखना है। क़ौमों के दरख्त क़लम करके बहुत नहीं बढ़ते, साथ ही अगर हम खाली इसी बात पर विचार करें और आजकल की दुनिया, आजकल के विज्ञान वगैरह को न समझें, तो हम आज की दुनिया में खप नहीं सकते, दुबंल रहते हैं, कमज़ोर हो जाते हैं, अपनी आजादी को कायम नहीं रख सकते, अपने को खुशहाल नहीं बना सकते और हमारी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती। क्योंकि दुनिया है विज्ञान की, और विज्ञान सारे ज्ञान का एक हिस्सा है। विज्ञान ने आदमी को बड़ी-बड़ी शक्तियाँ दी हैं—दीं क्या हैं, ये शक्तियाँ तो प्रकृति की हैं, लेकिन विज्ञान प्रकृति को अपनाता है और इससे उसकी ताकत बढ़ जाती है। इसलिए दोनों ही पहलू भारत को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं। अगर इनमें से एक भी निकल जाता है तो यह एक पहिये की गाड़ी—जैसा हो जाता है।

मालवीय जी के सामने दोनों बातें थीं। बनारस विश्वविद्यालय के सामने उन्होंने दोनों लक्ष्य रखे, वही सवाल हम सब के सामने आज भी है। इन दोनों पहियों पर हिन्दुस्तान की गाड़ी तेज़ी से आगे चली। आज के नौजवान शिकायत करते हैं धीमी चाल की, जैसे हम नौजवान शिकायत करते थे कि ये पुराने लोग ढीले-ढाले हैं। उनमें उतना जोश नहीं है, उतनी हिम्मत नहीं है जितनी हम में है। हर ज़माने में अपनी जवानी में लोग ऐसा ही समझते हैं। अगर आप उन लोगों के व्याख्यान पढ़ें जिन्होंने कांग्रेस शुरू की थी—चाहे दादा भाई नौरोजी के या और जो बड़े आदमी हुए या मालवीय जी के, तो कुछ आश्चर्य होता है कि कैसी धीमी आवाज़ से भाषण दिया करते थे ये लोग! पर लोग भूल जाते हैं कि वह समय क्या था, आबोहवा क्या थी, जिसको बदलने की कोशिश हो रही थी। एक समय जो क्रान्ति हो, क्रान्ति के पीछे आवाज़ हो, कुछ दिनों बाद वह क्रान्ति मामूली बात हो जाती है और आवाज़ धीमी लगने लगती है। उसकी जाँच करने के लिए हमें देखना होता है कि उस समय की हालत क्या थी--तभी हम सही अन्दाज़ा कर सकते हैं। आजकल के समय का अन्दाज़ा करें दस-बीस-पचास बरस पुरानी बात से, इसके कोई मानी नहीं हैं, बात हमारी समझ में नहीं आयेगी। इस नक्शे को देखें फिर आप महसूस करें कि मालवीय जी ने कैसा नेतृत्व किया देश का, उनकी लीडरशिप कैसी थी, कैसे वे अगुवा थे हमारे राजनैतिक आन्दोलन के। उस वक्त हम शिकायत करते थे कि वे ढीले पड़ जाते थे; अब लोग मेरी निस्बत शिकायत करते हैं कि मैं ढीला पड़ जाता हूँ। अब तो मुझे खुद अनुभव हुआ है इस बात का, और अब मेरा अनुभव सही है। हो सकता है मेरे बारे में शिकायत सही हो। अपने को अन्दाज़ करना मुश्किल है; लेकिन मेरा मतलब यह है कि अगर मुमकिन हो तो आप ज़रा समझें उस ज़माने की हवा को, अपने सामने उस ज़माने के भारत का एक चित्र लायें और फिर समझें कि उसमें क्या हो सकता था, और क्या हुआ। तब आप हमारे पुराने जो नेता थे, जिन्होंने इस देश की राजनीति को ढाला, कांग्रेस को बनाया, जैसा कुछ वह बाद में बनी, इसका अन्दाज़ कर सकते हैं और उनका आदर कर सकते हैं। मेरा विचार है कि कांग्रेस के पुराने नेताओं को, जिनमें बहुत ही बड़ों में पूज्य मालवीय जी थे, दुनिया के किसी गज से भी आप नापें, बहुत बड़ा पायेंगे।

वे बहुत बड़े आदमी थे जिन्होंने हिन्दुस्तान को ऐसे मौक़े से निकाला; वे बहुत बड़े थे लियाक़त में, विचारों में, अपने बलिदान की शक्ति में। अलावा, इन सब बातों के इस बात में भी कि उन्होंने दूरन्देशी से देखा, उन्होंने बनाया भी, बिगाड़ा ही नहीं। बहुत सारे क्रान्तिकारी लोग बिगाड़ने की तरफ़ ज्यादा ध्यान देते हैं। उनके सामने अटकाव आते हैं जिनको हटाने, बिगाड़ने की ओर उनका ध्यान इतना हो जाता है कि बनाने की ओर उनका ध्यान कम हो जाता है—और हम मिसाल इसकी देख सकते हैं। और देशों में भी, चाहे एशिया में या अफ्रीका में, हम देख रहे हैं कि बनाना ज्यादा कठिन काम होता है। बिगाड़ना भी कठिन काम होता है, फिर भी आसान होता है। हमारे जो बड़े नेता थे, उनका ध्यान हमेशा बनाने की तरफ़ भी जाता था, खाली बिगाड़ने की तरफ़ नहीं। उनकी कोशिश यह होती थी कि जहाँ तक हो सके, सहूलियत से काम लिया जाय, यानी बहुत तोड़-फोड़ न हो, एक ज़माने से दूसरे ज़माने में। तो इसकी तो मालवीय जी एक ख़ास मिसाल थे; वे बढ़ते थे, बदलने की कोशिश करते थे। वे एक महान् क्रान्तिकारी थे, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन उनके सामने हमेशा बनाने की बात रहती थी, बनाने के सिलसिले में चीजें टूट भी जाती थीं और वे हटा दी जाती थीं। वे इससे घबराते नहीं थे—किसी चीज के टूटने में या झाड़ू देकर साफ़ कर देने में; लेकिन उनका खास ध्यान हमेशा बनाने की ओर रहा। खाली वही नहीं कि संस्थाएँ बनायी हों, बहुत सारी बनायीं उन्होंने, बल्कि उन्होंने भारत के लोगों को बनाया। वे चाहते थे कि भारत के लोगों में हिम्मत पैदा हो, उनका सिर ऊँचा हो, उनमें अपने ऊपर भरोसा हो।

गांधी जी ने कहा था कि चरखा चलाओ। अब बड़े-बड़े युनिवर्सिटी के पण्डित उसका विरोध करें, कहें कि वैज्ञानिक ज़माने में चर्खा चलाना क्या बात है, उनका अर्थशास्त्र से क्या ताल्लुक है—लेकिन आर्थिक नतीजा उसका चाहे जो भी हो, उसका नतीजा था और है! वह एक चीज थी आदमी बनाने की! आदमियों को काम दे दिया, जिसमें वो भी समझें कि हम भी इस महान् कार्य में भारत की आज़ादी के आन्दोलन में, भाग ले रहे हैं। और इससे भी लाभ होता था। समय को देखकर भी आप कह सकते हैं कि क्या चीज आगे ले जाती है। ऐसी कोई चीज जो आगे ले जाये, मगर जिसका सम्बन्ध टूट जाये आजकल के ज़माने से, तो वह एक अलग चीज हो जाती है। उसका कोई ताल्लुक नहीं रहता आज के ज़माने से। और अगर सम्बन्ध ऐसा हो कि आपका आगे बढ़ना रुक जाता है, तो उसका कोई नतीजा नहीं। आप कहाँ ले जा रहे हैं जनता को, यह ख़ास बात है। इसलिए लीडर को आगे भी बढ़ना है और अपना सम्बन्ध भी कायम रखना है। और लोगों को अपने साथ ले जाना है क़दम-ब-क़दम, क़दम मिलाकर। लीडर अगर बहुत आगे बढ़ जाये तो और लोग पीछे रह जायेंगे। उससे कोई लाभ क़ौम का, जनता का, नहीं होगा। इस तरह से आप जज कर सकते हैं ज़माने को, उसके लीडर को। तो, अगर हम इस गज से नापें और देखें कि कैसा सम्बन्ध रहा पूज्य मालवीय जी का अपने ज़माने से और पुराने ज़माने से, तब आप अन्दाज़ा लगा सकेंगे कि वे कितने महान् थे, कितने बड़े थे। और मालवीय जी तो आगे भी देखते थे, और लोगों को आगे ले जाते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वे बहुत ही बड़े महापुरुष थे हमारे देश के। सारे देश को उनका गर्व है, लेकिन जो इलाहाबाद के रहनेवाले हैं

उनको तो खास गर्व होना चाहिए इस बात का कि ऐसा बड़ा आदमी पैदा हुआ, हमारे इस शहर में। और उनकी याद में श्रद्धांजलि पेश करनी चाहिए। सबसे बड़ी याद तो उनकी बनारस का विश्वविद्यालय है। इससे बड़ी याद किसी की क्या हो सकती है! यह तो खास उन्हीं की चीज है। लेकिन पिछले सारे सत्तर बरस से ऊपर के हमारे राजनैतिक इतिहास में, भारत के इतिहास में, उनका नाम एक-एक चमकते हुए सितारे की तरह रोशन है। शुरू से ही कांग्रेस के और कितने भी और मैदानों में उन्होंने रोशन हिस्सा लिया और उसको चमकाया, आगे बढ़ाया।

एक हमारे आजकल के नौजवान हैं जो एक दूसरी दुनिया में हैं; जिनकी शायद समझ में ही नहीं आता यह पूरी तौर से कि हमारी आजादी की लड़ाई में क्या हुआ, क्या नहीं हुआ। हाँ, कुछ कहानी सुनते हैं, किताबों में से कुछ थोड़ा-सा पढ़ भी लेते हैं लेकिन पूरी तरह से अनुभव नहीं कर पाते, वैसा जैसा वह जिसने आँख से देखा और जिन्होंने उस तजुरबे को हासिल किया। अच्छा हो अगर वे लोग कुछ ऐसे महापुरुषों को, जो हमारे बुजुर्ग हुए और जिनके बाद हम आये हैं, कुछ समझने की कोशिश करें कि वे क्या थे, क्या-क्या उन्होंने किया अपने जमाने में, कैसे उन्होंने हिन्दुस्तान को और यहाँ की जनता को, जो एक बड़े गढ़े में पड़ गयी थी, उसमें से निकाला। हम बड़े-बड़े आर्थिक सवालों पर विचार करते हैं, पञ्चवर्षीय योजनाएँ बनाते हैं और क्या-क्या करते हैं; लेकिन आखिर में एक देश बढ़ता है—इतना रुपये-पैसे से नहीं, रुपया-पैसा भी काम आता है और उसकी जरूरत होती है—जितना इन्सानों से, कैसे किस क़िस्म के लोग हैं वहाँ, किस क्वालिटी के लोग हैं, इससे बढ़ता है। और आप देखेंगे कि जो बहुत बड़े आदमी हमारे यहाँ हुए हैं, उनके सामने यह प्रश्न रहा है कि लोगों को कैसे उठाना। एक मानी में लोग उठते हैं। उनके उठने का एक बड़ा तरीक़ा है शिक्षा का—शिक्षा स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी वग़ैरह की। वह तो है; लेकिन एक तरह की शिक्षा और होती है, स्कूल-कालेज के अलावा। जो शिक्षा हम लोगों ने पायी, मेरे जमाने में लोगों ने पायी। हमने राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़ी ज़बर्दस्त शिक्षा पायी, क्योंकि वह चीज सीखने की थी। उसका पहला लक्ष्य यही नहीं था कि अँग्रेजों को, अँग्रेजी हुकूमत को हटायें यहाँ से। यह उसका नतीजा था, और यह नतीजा मन में था, छिपा नहीं था; लेकिन असल चीज यह थी कि कैसे हिन्दुस्तान के रहने वालों को, विशेषकर दबे हुए लोगों को ऊपर उठाया जाय। मालवीय जी और गाँधीजी का ध्यान जाता था, हमेशा जाता था किसानों की तरफ़, और उनकी तरफ़ जो सबसे नीचे के तबक़े के लोग हैं। कैसे इन लोगों का सिर ऊँचा हो, अपने पर भरोसा हो, मिलकर सहयोग से काम करें, सब लोगों का इस ओर ध्यान विशेषकर जाता था। क्योंकि, जैसा ये लोग कहते थे कि अगर हिन्दुस्तान में स्वराज्य आ गया और लोग तैयार न हुए तो वह निकल भी जायगा, रहेगा नहीं; लोग तैयार हैं तो स्वराज्य आ ही जायगा और क़ायम भी रहेगा।

तो इन सब लोगों के काम, गाँधी जी के या मालवीय जी के, भविष्य को देखते हुए थे। सब लोगों को बढ़ाना, ऊँचा करना, मज़बूत करना. उनको आपस में मिलकर काम करना सिखाना, इस तरह से एक ईंट, एक पत्थर लेकर इन महापुरुषों ने हमारे भारत के भविष्य को उज्ज्वल बनाने की कोशिश की, और बहुत-कुछ बनाया। उन्होंने बनाया था

हम लोगों को जो दूसरी पीढ़ी के थे कि हम कुछ ज्यादा जोर दिखा सकें, लेकिन असल में तो काम उनका था। हमको मौक़ा दिया कि हम कुछ कर सकें अपने जमाने में, जैसे कि अब के जो नौजवान हैं उनका आता है, वक्त आ गया है। और वे भी बहुत-कुछ करेंगे; उनके पीछे ये सब इमारतें बनी हुई हैं जिसे कि वे और आगे बढ़ायेंगे, ख़ाली साफ़ मैदान में तो किसी जाति को काम करने को मिलता नहीं। हमारे पीछे जो हजारों बरस हैं, वो तो हैं; लेकिन हजारों बरस में अच्छा भी है, बुरा भी है। लेकिन इस वक्त तो ४०-४५ बरस का काम हमारे पीछे है, जिसने जो कुछ भारत इस वक्त है, उसे बनाया है। नये-नये सवाल उठते जाते हैं, तो उस तजुर्बे से लाभ उठा सकते हैं आज के लोग। और फिर अपनी अक्ल से और आजकल के जमाने को देखकर, उसको बढ़ा सकते हैं। यह कहानी तो कभी किसी देश की ख़त्म नहीं होती। उसका कोई अन्त नहीं है। वह तो बढ़ता ही जाता है; रोज-रोज, हमेशा के लिए।

ऐसे मौक़े पर जब हम याद करते हैं एक महापुरुष को, तो उसकी जीवनी से हम लाभ उठायें, सीखें। बहुत-कुछ हम सीख सकते हैं एक मानी में। दुनिया का इतिहास क्या है? बहुत बातें हैं दुनिया के इतिहास में, पर एक मानी में कहा जाय तो दुनिया का इतिहास दुनिया के जो बहुत ऊँचे तबके के लोग हैं उनकी जीवनियाँ हैं, वही इतिहास है। एक मानी में यह सही बात है। और बातें भी हैं, लेकिन असल में शायद सबसे जरूरी बात यही है।

हमारे सामने तो कई ऐसी मिसालें हैं जिनसे हम सीख सकते हैं—आजकल के लोग, आजकल के नौजवान बहुत-कुछ सीख सकते हैं मालवीय जी के जीवन से। उनके सामने जो लक्ष्य था, जैसे उन्होंने काम किया और सफलता पायी इन सबसे। हम मूर्तियाँ खड़ी करें, संस्थाएँ बनायें, यह तो ठीक है; लेकिन आखिर में सबक़ सीखें उनकी जिन्दगी से, उनके काम से और सीखकर उसी रास्ते पर चलें, आजकल के जमाने में उसको लगाकर चलें और आगे बढ़ें, तो यही उनका सबसे बड़ा स्मारक हो सकता है। यह अच्छा है कि समय आया उनकी शताब्दी मनाने का, तो पुराने और नये लोग सब फिर सोचें, विचार करें और सीखें कि वे क्या-क्या बातें थीं, जिनसे मालवीय जी इतने ऊँचे महापुरुष हुए; कैसे उन्होंने भारत की आज़ादी के रास्ते में, अपनी संस्कृति का आदर करने के रास्ते में सबको बढ़ाया और यह कि उनके बतलाये रास्ते पर चलकर भारत की सेवा हम किस तरह करें और आगे बढ़ें।

जयहिन्द।

दूसरा अध्याय

न मोक्षस्याकांक्षा भव-विभव-वाञ्छापि च न मे

मालवीय जी के स्वर्गवास के कुछ ही दिनों पहले की बात है। मैं उनके दर्शनों को गया हुआ था। चलते समय उन्होंने मुझसे कहा--देखो, एक बात मेरी याद रखना तुम। यदि मुझे होश न रहे और लोग अन्तिम समय में यहाँ (विश्वविद्यालय के) से मुझे काशी-क्षेत्र में ले जाना चाहें, तो तुम मत ले जाने देना। मना कर देना। काशी-क्षेत्र में मरने से मोक्ष हो जाता है। मुझे अभी फिर यहीं जन्म लेकर बहुत-से अपने अधूरे कामों को पूरा करना है। विश्वनाथ जी का मन्दिर तो अभी बना ही नहीं है।

—ज्योतिभूषण गुप्त

तीसरा अध्याय

ऋषिकल्प की कल्पना : हिन्दू विश्वविद्यालय

सन् १९१० के दिसम्बर मास में बड़ी भीड़-भाड़ हो रही थी। एक ओर श्री विलियम वेडरबर्न की अध्यक्षता में कांग्रेस की बैठक हो रही थी और दूसरी ओर उसी के साथ सरकारी सहयोग में बृहत् प्रदर्शनी हो रही थी। प्रान्तीय सरकार का लक्ष्य था कि सन् १९०४ की बम्बई की और सन् १९०६ की कलकत्ता की प्रदर्शनियों को नीचा दिखाया जाए, पर वास्तव में कुछ लक्ष्य दूसरा ही था। एक मास के लगभग प्रयाग में रहकर भी मैंने अपने उस समय के विचार के अनुसार इस प्रदर्शनी को नहीं देखा। इस कारण इस पर कुछ लिखना अनधिकार चेष्टा होगी।

इसी वर्ष मैं पढ़ना छोड़कर, बी० ए० में होता हुआ भी, परीक्षा में मैं नहीं बैठा। घर में मेरे सुपुर्द कोई काम नहीं था। समय, उत्साह और स्वास्थ्य की कमी न थी। पूज्यवर मालवीय जी महाराज से घनिष्टता हो गयी थी। मैंने उन्हें 'बाबू' कह पुकारना आरम्भ कर दिया था और उन्होंने भी पिता के सदृश प्रेम और शिक्षा आरम्भ कर दी थी। किन्तु, इतना होते हुए भी बाबू के उदार राजनीतिक विचारों से हम बालक सहमत न थे और उनसे इस सम्बन्ध में प्रायः वाद-विवाद हो जाया करता था। वे बड़े प्रेम से समझाने का यत्न करते थे, पर मेरी उस समय गदहपचीसी थी—बात क्यों समझ में आती! अस्तु।

यह वह समय था, जब हिन्दू-कालेज के ट्रस्टियों में कृष्णमूर्ति की बात लेकर आपस में वैमनस्य की नींव पड़ चुकी थी। हिन्दू-विश्वविद्यालय की चर्चा सन् १९०४-५ में उठकर एक बार शान्त हो चुकी थी, और सन् १९०९ में अलीगढ़ में मुस्लिम-युनिवर्सिटी का विचार आरम्भ होकर स्वरूप भी पा चुका था। 'गुरु गुड़ ही रहे, चेला चीनी हो गए', की कहावत इस सम्बन्ध में चरितार्थ हो चुकी थी। इसी समय हिन्दू-विश्वविद्यालय की चर्चा फिर उठ खड़ी हुई।

सिद्धान्तों को लेकर प्रस्ताव फिर उपस्थित हुआ। श्रीमती ऐनी बेसेंट चाहती थी कि बादशाह के चार्टर को आधार बनाकर एक सार्वभौम भारतीय विश्वविद्यालय काशी में खोला जाएँ, जिसके अन्तर्गत क्षेत्र के प्रान्तों के कालेज रह सकें और सब जगह यहाँ की परीक्षा का केन्द्र बन सके। पर इस विचार का अन्त भी एक प्रकार से हो चुका था और उन्हें इस प्रयत्न में सफलता की आशा मिट चुकी थी। इसी अवसर पर मालवीय जी महाराज ने हिन्दू विश्वविद्यालय का नया विचार नये रूप में फिर से उपस्थित किया। प्रयाग में स्यात् इसकी प्रथय बैठक हुई। स्वनामधन्य परलोकवासी श्री पंडित सुन्दरलाल जी से इस संघटित संस्था के मंत्रित्व के लिए विनती की गयी। उनके पैरों पर सच्चे ब्राह्मण मालवीय जी की पगड़ी तक डाली गयी; पर उन्होंने हर प्रकार की सहायता का वचन देते हुए भी, और हर तरह से सहायता देते हुए भी, जब तक सरकार का रुख स्पष्ट ज्ञात न हो

जाए, तब तक खुलकर स्पष्ट रूप में मंत्रित्व ग्रहण करने से उन्होंने इनकार ही कर दिया। कुछ उपाय न देख पूज्य बाबू ने अपने पैरों पर खड़ा होना ही विचारा और कलकत्ते के लिए प्रस्थान कर दिया। मैं भी उल्लू के चूल्हे की तरह बेकार होने के कारण उनके साथ हो लिया। कलकत्ता पहुँच कर बाबू तो हैरीसन रोड पर श्री पं० सुन्दरलाल सारस्वत के गृह पर उतरे और मैं अपनी कोठी श्री शीतलप्रसाद खड्गप्रसाद, ३० बरतल्ला स्ट्रीट पर जा उतरा। पूज्य मालवीय जी ने प्रचार आरम्भ कर दिया। मेरे अत्यन्त प्रियवर, वयस में छोटे परलोकवासी चचा श्री मंगला प्रसाद एम० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, वा स्यात् परीक्षा दे चुके थे। उनके तथा श्री गोकुलचन्द के, जो उनसे और मुझसे भी थोड़े बड़े थे, प्रयत्न और उत्साह से मेरी कोठी ने इस कार्य में सहायता देना स्वीकार कर लिया। कलकत्ता नगर के बड़े-बड़े महाजनों, साहूकारों और जनता ने भी दिल खोलकर इस कार्य में धन और मन से सहयोग दिया। तत्कालीन स्वनामधन्य बीकानेर-नरेश ने भी इस सम्बन्ध में बड़ी सहायता का वचन दिया और गाड़ी चल निकली। इसी अवसर पर श्री हरकोर्ट बटलर, जो उस समय बड़े लाट के शिक्षामंत्री थे, मालवीय जी महाराज से मिले और इनसे बहुत-सी बातें कीं। आपने पहले ही कह दिया कि यदि प्रस्तावित संस्था में मातृभाषा द्वारा पढ़ाने की व्यवस्था रही, तो उसमें सरकारी सहायता और सहानुभूति की आशा रखना व्यर्थ है। उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि जब तक आप अंग्रेजी भाषा में लिखते-बोलते और पढ़ते हैं, तब तक तो हमें शान्ति रहती है—क्योंकि उस समय तक हम आपकी सब बातों और चालों को भली-भाँति समझ सकते हैं और संभाल सकते हैं, पर जिस समय आप भाषा में कार्य करना आरम्भ कर देते हैं, तब उसका समझना हमारे लिए कठिन हो जाता है। इस कारण मातृभाषा द्वारा उक्त शिक्षा देने की अनुमति सरकार से किसी अवस्था में नहीं मिल सकती। न जाने क्या विचार करके कुछ मित्रों का विरोध रहते हुए भी बाबू ने श्री बटलर का इशारा समझकर इस बात को स्वीकार कर लिया और मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने का विचार एक प्रकार से छोड़ दिया, या कहिये, कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया।

इसी समय श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के भी तीन व्याख्यान भारतीय विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में कलकत्ते में हुए। इसके उपरान्त एक सार्वजनिक सभा में विश्वविद्यालय की घोषणा की गयी। कलकत्ते में आर्थिक सहायता का जो वचन मिला था, वह प्रकट किया गया और प्रायः ५ लाख का वचन मिला और कुछ नकद भी मिला। हमारी गाड़ी आगे खिसकी। गौरीपुर के ज़मींदार श्री ब्रजेन्द्रराय किशोर चौधरी के मैनेजर श्री मनमोहन घोष बाबू, तथा श्री राधाकुमुद मुकर्जी और श्री विनय कुमार सरकार की, जो नेशनल कौंसिल आफ़ एजूकेशन के सदस्य थे और अन्तिम दो सज्जन यहाँ के अध्यापक भी थे, सहायता से विश्वविद्यालय के विचार का प्रचार बंगाली सज्जनों में खूब हुआ और कुछ धन भी मिला। परलोकवासी श्री लंगटसिंह की सहायता और उत्साह से परलोकवासी श्री महाराजाधिराज दरभंगा से भी इस सम्बन्ध में चर्चा और सहायता की आशा हुई। बाबू के लंगोटियाँ यार और प्रान्त के वयोवृद्ध नेता एवं कार्यकर्ता परलोकवासी श्री बाबू गंगाप्रसाद जी वर्मा भी बाबू के साथ हो लिए और कलकत्ता आ गए। श्री ईश्वरसरन जी ने भी साथ

दिया। परलोकवासी श्री पंडित गोकरननाथ जी मिश्र ने भी पूरा सहयोग का हाथ बढ़ाया और गाड़ी चल खड़ी हुई। प्रिय मंगलाप्रसाद और मैंने बाबू के सफर का प्रबन्ध, धन के खजाँची का काम और इसी प्रकार के फुटकर कार्यों का कार्यभार अपने ऊपर ले लिया।

इतने समय के बाद, ठीक क्रम में तो चूक हो सकती है, पर जहाँ तक स्मरण है, विश्वविद्यालय के लिए बंगाल में मालदह और फ़रीदपुर में दौरा हुआ; बिहार में पटना, मुजफ्फरनगर, भागलपुर और दरभंगा में हुआ। संयुक्तप्रान्त में जौनपुर, काशी, प्रयाग, कानपुर, इटावा, पंजाब में अमृतसर और लाहौर में। इतने ही में प्रायः बीस लाख रुपयों की सहायता का वचन मिल चुका था। एक प्रकार से सारे भारत में विश्वविद्यालय के आगमन की दुन्दुभी बज चुकी थी। जनता के उत्साह का ठिकाना न था, मनुष्यों के हृदय में एक नया भाव, एक नयी भावना और एक नवीन आशा की बाढ़-सी उमड़ पड़ी थी। कार्यकर्तागण फूले न समाते थे। भिन्न-भिन्न नगरों की सभाओं में दानियों की प्रतिस्पर्धा देखने योग्य होती थी।

मुजफ्फरपुर में एक भिक्षा माँगने वाली भंगन ने अपने दिन-भर की कमाई, एक पैसा या एक अधेला, जो उसे मिला था, इस यज्ञ में समर्पण कर दिया और दर्शकों को 'शुक्लसत्र' की याद दिलाकर चली गयी। इसी प्रकार एक व्यक्ति ने एक फटी कमीज, जो उसके बदन पर पड़ी थी, उतार कर प्रदान कर दी थी। इन चीजों को नीलाम करने पर सैकड़ों रुपये मिले थे और ये वस्तुएँ भी विश्वविद्यालय को वापस कर दी गयी थीं कि ये उसके संग्रहालय में विवरण के साथ सुरक्षित रखी जावें। यहीं मुजफ्फरपुर में एक बंगाली महोदय ने स्यात् पाँच हजार रुपया दान दिया था और पुनः उनके गृह पहुँचने पर उनकी पत्नी ने अपना बहुमूल्य स्वर्ण कंकण बाबू को भेंट दिया, जिसे उनके पति ने उसका दूने से अधिक मूल्य देकर ले लिया और पत्नी को फिर वापस दे दिया, और जिसे उनकी पत्नी ने संग्रहालय में रखने के लिए पुनः दान कर दिया। इसी मुजफ़्फ़रपुर की एक घटना और भी उल्लेखनीय है। रात्रि हो चली थी, सभा में धन एकत्रित हो चुका था, एक ओर उसकी गिनती हो रही थी, दूसरी ओर छोटी-छोटी चीजें नीलाम हो रही थीं, रोशनी ज़रा कम थी कि एक उचक्का हज़ार-हज़ार की दो थैलियाँ उठाकर चल दिया। पीछे दौड़ हुई, पर वह नाले और झोपड़ियों में होकर ग़ायब ही हो गया।

सभी जगह कुछ न कुछ ऐसी घटनाएँ हुई हैं कि जिनका उल्लेख पाठकों के लिए शिक्षाप्रद और कौतूहलप्रद हो सकता है, पर उस ओर न जाकर मैं दूसरी ओर झुकता हूँ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि विश्वविद्यालय की दुन्दुभी बजाते हुए बाबू और उनके साथी कलकत्ता से लाहौर पहुँच गए थे। २०-२५ लाख का वचन मिल चुका था। हिन्दू-विश्वविद्यालय का आन्दोलन ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के सदृश समुद्र की ओर वेग से बह रहा था। उसके आगे का पथ रोकना असम्भव हो चुका था। जब शिमला-शिखर से बाबू के लिए बुलावा आया, बाबू और उनके साथ मैं भी शिमला पहुँचा। परलोकवासी राजा हरनाम सिंह जी की कोठी में हम लोग ठहराये गए। बाबू उस समय के वाइसराय लार्ड हार्डिंग से मिलने गये और वहाँ से बड़े प्रसन्न आये और मुझे बुलाकर कहा कि वाइसराय ने विश्व-विद्यालय को अपनाने का वचन दे दिया है। मुझे काटो तो बदन में खून नहीं। मैं तो

सन्न रह गया और मुख से हठात् निकल पड़ा, 'This is the death-knell of the Hindu University' अर्थात् यह तो हिन्दू-विश्वविद्यालय की मृत्यु-घोषणा है। अस्तु, हम लोग ऊपर से उतर कर फिर लाहौर वापस आये।' लाहौर की बृहती सभा में स्वनाम-धन्य परलोकवासी लाला लाजपराय जी ने कहा—Charter or no charter, Hindu University must exist 'जिसके उत्तर में बाबू ने कहा कि' Chart and charter, Hindn University must exist. इन वाक्यों से दोनों महान् व्यक्तियों की मनोवृत्ति का भली भाँति पता चल सकता है। अस्तु अब क्या था! अब तो चारों ओर से लोगों की सहानुभूति आने लगी। राजा-महाराजा, उपाधिकारी और देश में अपने को सर्वस्व समझनेवाले लोग झुक पड़े और जहाँ गरीब व साधारण लोगों की जेबों में से गाढ़ी कमाई का पैसा दो-दो की संख्या में भी आता था, वहाँ अब बड़े-बड़े लोगों का बड़ा-बड़ा दान लाखों की संख्या में आने लगा। विश्वविद्यालय जनता और गरीबों का न रहकर सरकारी छत्रछाया के नीचे मुट्ठी-भर राजा-महाराजाओं व बड़े आदमियों की संस्था बन गया। लाहौर से डेपुटेशन आगे बढ़ा। समारोह से सभा हुई, १२ घन्टों तक लम्बा जुलुस निकला, परलोकवासी महाराजा दरभंगा ने आकर शिरकत की और सभापति बनना स्वीकार किया, साथ ही ५ लाख का दान भी दिया। इसीके पहले पूज्य पंडित सुन्दरलाल जी ने भी श्री हरकोर्ट बटलर के कहने पर मन्त्रित्व स्वीकार कर लिया था। अब बहाव का रुख दूसरी ओर चला था और आगे क्या हुआ, सभी जानते हैं।

—शिव प्रसाद गुप्त।

चौथा अध्याय

आधुनिक भारत के निर्माता

पं० मदनमोहन मालवीय, जिन्हें लोग आमतौर पर केवल 'मालवीय जी' के नाम से अधिक जानते हैं, चोटी के राष्ट्रीय नेताओं में से एक थे। जितनी श्रद्धा और जितना आदर उनके लिए शिक्षित वर्ग में था, उतना ही साधारण जनता में भी था। देश की जनता में जितने लोकप्रिय मालवीय जी थे, उतना गान्धी जी और लोकमान्य के सिवा शायद ही कोई अन्य नेता रहा हो। मालवीय जी की विद्वता असामान्य स्तर की थी और वे अत्यन्त सुसंस्कृत व्यक्ति थे। फिर भी विनम्रता एवं शालीनता उनमें कूट-कूटकर भरी थी। अपने युग के वे सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे एवं हिन्दुस्तानी तथा अंग्रेजी दोनों में ही निष्णात थे।

उसके स्तर के किसी अन्य नेता के पास जन-साधारण की पहुँच इतनी सरल नहीं थी, जितनी मालवीय जी के पास। लोग उनके साथ इतने प्रेम से बात कर सकते थे मानो वे उनके पिता, बन्धु अथवा मित्र हों। निर्धनों एवं पीड़ितों की सेवा-सहायता करना उनके जीवन का आदर्श ही नहीं था, वरन् उनके जीवन की वास्तविकता भी थी। लोक-सेवा कार्य उनके लिए लोकप्रियता अथवा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का साधन नहीं था। गान्धी-युग से पहले राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में मालवीयजी का स्थान अद्वितीय था और गान्धी-युग में भी पहले की भाँति ही वे जनता के विश्वास-भाजन बने रहे। इतनी शक्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त होते हुए भी वे असाधारण रूप से विनम्र थे। अहंकार अथवा गर्व उनके मन में लेशमात्र भी नहीं था। जनता-जनार्दन को उनसे अधिक अपना देवता मानने वाला व्यक्ति अभी तक मेरी दृष्टि में नहीं आया।

मालवीय जी का शरीर भव्य एवं सुन्दर तथा उनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावोत्पादक था। किन्तु वे देश-भूषा में ही नहीं, अपितु खान-पान, रहन-सहन तथा व्यवहार में भी सादगी की मूर्ति थे।

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भाँति यद्यपि विदेशों में उनकी ख्याति अधिक नहीं फैली, फिर भी उन्होंने हिन्दू धर्म के सर्वोत्तम तत्वों को संसार के समक्ष रखने में महान् योगदान दिया। प्राचीन ऋषि-मुनियों की भाँति वे एक दृढ़ आस्तिक तथा धर्मपरायण व्यक्ति थे, किन्तु बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में उन्होंने शिक्षा की आधुनिक पद्धति तथा साधनों का पूरा उपयोग किया। वे उद्योग तथा व्यापार के क्षेत्र में भी आधुनिक तकनीक पद्धति अपनाने के पक्ष में थे। जीवन-पर्यन्त वे युवकों की उन्नति के लिए चिन्तित रहे। उनका जीवन युवकों के लिए एक महान् प्रेरणा-स्रोत था। पं जवाहरलाल नेहरू का यद्यपि कई राजनैतिक मामलों में मालवीय जी से मतभेद रहा, किन्तु उन्होंने मालवीय जी सम्बन्ध में लिखा है :

'जहाँ तक भारतीय राजनीति का सम्बन्ध है, मेरे बचपन की अत्यन्त प्रारम्भिक स्मृतियाँ पं० मदनमोहन मालवीय के साथ सम्बद्ध हैं।'

पं० जवाहरलाल नेहरू पुन: लिखते हैं :

'मालवीय जी एक महा-मानव थे। वे उन लोगों में से थे जिन्होंने आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता की नींव रक्खी।'

इसी प्रकार महात्मा गान्धी, जिनका बाद में मालवीय जी के साथ काफी राजनैतिक मतभेद रहा, उन्हें बराबर अपना बड़ा भाई मानते रहे। वे मालवीय जी को 'आधुनिक भारत का निर्माता' कहा करते थे।

अद्वितीय गुणागार

मुझे संसार के कई महान् व्यक्तियों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है — जैसे मिस्टर (बाद में लार्ड) एस्क्विथ, मिस्टर लायड जार्ज, मिस्टर मोण्टेग्यू, मिस्टर रेम्जे मैक्डानल्ड, मिस्टर ऐटली, मौन्शियर क्लीमैनशियो (फ्रान्स-केसरी), जार्ज बर्नार्ड शा, मिस्टर डी० वेलरा, फील्ड-मार्शल हिण्डनबर्ग, लोकमान्य तिलक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गान्धी, लाला लाजपतराय तथा अन्य अनेक छोटे-बड़े महापुरुष। किन्तु एक ही व्यक्ति में अनेक महान् गुणों का एक साथ समावेश जैसा मैंने मालवीय जी में देखा, वैसा अब तक किसी अन्य महापुरुष में देखने को नहीं मिला।

लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गान्धी की भाँति मालवीय जी सदा सत्य पर आरूढ़ रहे। किसी भी राजनैतिक अथवा सामाजिक सफलता के लिए उन्होंने असत्य का आश्रय नहीं लिया। बड़े से बड़े साध्य के लिए भी वे अनुचित साधनों का सहारा लेने के पक्ष में नहीं थे। उनकी दृढ़ धारणा थी कि झूठ, द्वेषपूर्ण प्रोपेगैंडा तथा कपटपूर्ण हथकण्डों के द्वारा बड़ी से बड़ी सफलता प्राप्त करने की अपेक्षा उच्च तथा उचित साधनों का प्रयोग अधिक महत्त्वपूर्ण है।

बम्बई के व्यापारियों से चन्दा

पहले-पहल मालवीय जी को अधिक निकटता से देखने का सुअवसर मुझे सन् १९१५ में मिला। उन दिनों वे अपने बनारस विश्वविद्यालय के लिए रुपया इकट्ठा करने के निमित्त बम्बई पधारे थे। उनके सम्मान में कई सभाओं का आयोजन किया गया था। एक सभा मूलजी जेठा मार्केट में भी आयोजित की गई, जो कपड़े का भारत-भर में सबसे बड़ा थोक मार्केट है। इस सभा के सभापति सर मनमोहनदास रामजी थे। वहाँ जिस तरह व्यापारी वर्ग के लोग मालवीय जी के चमत्कारी व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और जिस तरह उन्होंने दिल खोलकर मालवीय जी को रुपया दिया, मैं उसे कभी नहीं भूल सकता। मेरे पिताजी भी उनमें से एक थे।

वायसराय की कौंसिल में

दूसरी बार उन्हें अधिक देर तक देखने का अवसर मुझे मिला। यह बात सन् १९१७ की गर्मियों की है। उस साल मार्च में मैं बहुत बीमार हो गया था और पिता जी ने स्वास्थ्य लाभ के लिए मुझे शिमला भेज दिया था। मेरे पास पर्याप्त अवकाश था; मैं

अपना समय राजनैतिक तथा धार्मिक साहित्य के अध्ययन में व्यतीत करने लगा। इसी में मैं लगभग प्रतिदिन दोपहर के बाद इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में जाता था।

वायसराय महोदय इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल की बैठकों का सभा-पतित्व किया करते थे और चूंकि शिमला उन दिनों भारत सरकार की ग्रीष्मकालीन राजधानी होती थी, इसलिए कौंसिल की बैठकें गर्मियों में वहीं हुआ करती थीं। कौंसिल के अधिकांश सदस्य अंगरेज होते थे जो या तो नागरिक अथवा सैनिक विभागों के उच्च अधिकारी होते थे, या ब्रिटिश व्यापार एवं उद्योग के प्रतिनिधि। भारतीय सदस्यों की संख्या बहुत कम होती थी। और जो थोड़े से भारतीय सदस्य होते थे वे भी ब्रिटिश नौकरशाही के पिछलग्गू होते थे। केवल इने-गिने राष्ट्रीय नेता ही कौंसिल के सदस्य होते थे। मालवीय जी उनमें से एक थे।

जब कौंसिल का ग्रीष्मकालीन सत्र समाप्त होने वाला था तो उससे कुछ दिन पहले एक अजीब घटना घटी। वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड सहसा बीमार हो गए और उनके स्थान पर पंजाब के गवर्नर, सर माईकेल ओडायर, कौंसिल की बैठकों की अध्यक्षता करने लगे। एक दिन मालवीय जी किसी सरकारी वित्तीय माँग पर बोल रहे थे। अपने भाषण में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि वायसराय तथा उनकी सरकार को चाहिए कि वे ब्रिटिश मंत्रि-मंडल को प्रेरित करे कि वह भारत को पूर्ण सत्तायुक्त डुमीनियन बनाने के लिए एक निश्चित तिथि की घोषणा कर दे।

यहाँ यह बात समझ लेनी आवश्यक है कि प्रथम विश्वयुद्ध ने, जो अगस्त १९१४ में योरोपीय राष्ट्रों के मध्य शुरू हुआ था, सन् १९१६ की गर्मियों में ब्रिटेन तथा उसके मित्र-राष्ट्रों के विरुद्ध चिन्ताजनक मोड़ ले लिया था। महीनों तक मित्र-राष्ट्र निरन्तर पराजित होते रहे थे और उन्हें धन-जन की भारी हानि उठानी पड़ी थी। कई महत्वपूर्ण इलाके भी उनके हाथों से निकल गए थे। भारत के पास चूंकि विराट् जन-शक्ति थी, इसलिए ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों से युद्ध में सहायता देने की अपील की और उन्हें वचन दिया कि युद्ध की समाप्ति के बाद उन्हें अपने देश के शासन में प्रमुख भाग दे दिया जायेगा। युद्ध की स्थिति और ब्रिटिश सरकार के वचन का भारतीयों पर समुचित प्रभाव पड़ा। अनेक प्रमुख भारतीय बम्बई की एक सभा में एकत्रित हुए और उन्होंने ब्रिटिश सरकार के वचनों पर पूरा विश्वास करके यह पेशकश स्वीकार ली। फलस्वरूप भारत के प्रत्येक प्रान्त से लाखों की संख्या में भारतवासी सेना में भर्ती हो गए।

किन्तु सन् १९१७ की गर्मियों तक युद्ध का पासा पलट चुका था। अब मित्र-राष्ट्रों की जीत पर जीत हो रही थी। भारतीय सेनाओं ने टर्की से उसका समस्त मध्य-पूर्वी साम्राज्य छीन लिया था। इसके अतिरिक्त योरोपीय समरक्षेत्र में भारतीय सेनाओं ने न केवल शत्रु की बढ़ती हुई सेनाओं की प्रगति रोक दी थी, अपितु प्रत्येक मोर्चे पर शत्रु के हाथों से सैकड़ों मील का क्षेत्र भी वापस ले लिया था।

भारतीय सेना के वीरतापूर्ण कारनामों को ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल तथा अन्य अनेक ब्रिटिश राजनैतिक नेताओं ने तो स्वीकार किया ही था, साथ ही फ्रान्स तथा इटली की सरकारों ने भी भारतीय सैनिकों के त्याग और बलिदानों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी।

ब्रिटिश सिंह को खुली चुनौती

मालवीय जी अपने सुझाव के समर्थन में उपर्युक्त तथ्यों पर बल दे रहे थे, तो सर ओडायर अध्यक्ष-पद से मालवीय जी को यह कहकर निरन्तर टोकते रहे कि भारतीय सेना की ये सफलताएँ ब्रिटिश सैनिक पदाधिकारियों के प्रभाव के कारण थी, क्योंकि भारतीय सैनिक जातियाँ (जिनसे भारतीय सेना का मुख्यतः निर्माण हुआ था) अपने ब्रिटिश पदाधिकारियों का बहुत सम्मान करती हैं। भारतीय सेनाओं की सफलताओं में भारत के राष्ट्रीय नेताओं के प्रयास अथवा प्रभाव का कोई हाथ नहीं है। मालवीय जी ने, जो अपने भाषणों की मधुरता एवं नम्रता के लिए विख्यात थे, बार-बार अध्यक्ष से प्रार्थना की कि आप मुझे भाषण के बीच में न टोकें और भारतीयों की भावना का आदर करें। किन्तु मालवीय जी की प्रार्थना पर ध्यान देने के बजाय सर ओडायर ने उन्हें बैठ जाने की आज्ञा दे दी। सर ओडायर के इस दुर्व्यवहार पर मालवीय जी क्षुब्ध हो उठे और उन्होंने उसी समय सदन का त्याग कर दिया। जाते समय उन्होंने पंजाब के गवर्नर को तथा ब्रिटिश नौकरशाही को चुनौती दी—"मैं अब देशवासियों के समक्ष ही अपनी बात रखूंगा और एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर प्रत्येक भारतीय सैनिक—चाहे वह किसी भी मोर्चे पर लड़ रहा हो—योरोप के मोर्चे पर, मध्य-पूर्व में, या कहीं और, या वह भारत की सीमा की सुरक्षा पर ही लगा हो—अस्त्र-शस्त्र त्याग कर घर लौट आयेगा। ब्रिटिश पदाधिकारी तो क्या, ब्रिटिश सरकार भी उन्हें रोक सके, तो रोक कर देख ले"।

मिस्टर जिन्ना ने भी मालवीय जी के तुरन्त बाद सदन त्याग दिया। फिर कई अन्य नेता—जैसे, मिस्टर श्रीनिवास शास्त्री, सर दीनशा वाचा, मिस्टर बैपिस्टा—यहाँ तक कि कई राजा महाराजा तथा कई बड़ी देशी रियासतों के दीवान भी सदन से बाहर चले आए। सबसे विलक्षण बात यह हुई कि सर शंकरन् नायर भी, जो वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौन्सिल (प्रबन्धकारिणी समिति) के दो भारतीय सदस्यों में से एक थे, उठकर अपने 'चेम्बर' (निजीकक्ष) में चले गए।

जब मैं माल रोड पर पहुँचा तो मैंने देखा कि मालवीय जी के सदन-त्याग का समाचार जंगल की आग की भाँति क्षण-भर में ही सारे शहर में फैल गया था और हजारों आदमी, जिनमें अधिकांश संख्या नवयुवकों की थी, सड़क के दोनों ओर इकट्ठे हो गए थे। सब लोग मालवीय जी को स्टेशन पर जाते हुए देखने की प्रतीक्षा में खड़े थे।

उन दिनों शिमला-कालका के बीच मोटर-बसें या टैक्सियाँ नहीं चलती थी (जैसी कि आजकल महती संख्या में चलती हैं); केवल एक दो रेलगाड़ियाँ चलती थी। मालवीय जी ५.३० बजे की ऐक्सप्रेस से जा रहे थे। मैं जल्दी-जल्दी चलकर गाड़ी छुटने से पहले मालवीय जी के डब्बे के सामने पहुँच गया। स्टेशन जाने वाली सड़क पर हजारों आदमी खड़े थे और आकाश "मालवीय जी की जय!", "भारत-माता की जय!", "स्वराज्य हमारा पैदायशी हक़ है!" के नारों से गूंज रहा था।

मालवीय जी के स्टेशन पहुँचने के तुरन्त बाद ही सर विन्सेट स्मिथ, जो उन दिनों वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौन्सिल के होम-मेम्बर (गृह मन्त्री) थे, एक अन्य अंग्रेज मेम्बर के साथ वहाँ आ पहुँचे और लगभग १५ मिनट तक डिब्बे के सब द्वार बन्द करके अन्दर

मालवीय जी के साथ बातचीत करते रहे। इस बीच में लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी और लोग काबू से बाहर हो रहे थे। मालवीय जी ने डिब्बे से निकलकर लोगों से कहा कि वे शान्तिपूर्वक अपने घरों को लौट जायें और यदि वे (मालवीय जी) तथा अन्य राष्ट्रीय नेता गिरफ्तार हो जायें, तो लोग स्वयं शान्तिपूर्वक आन्दोलन चलाते रहें।

ओडायर की अकड़

मालवीय जी उन दिनों जनता पर कितना प्रभाव रखते थे और वे कितने लोकप्रिय थे—इसका अनुमान इस बात से अच्छी तरह लगाया जा सकता है कि उपर्युक्त चुनौती से न केवल भारत की गोराशाही सरकार, अपितु इंग्लैंड की सरकार भी दहल उठी। मालवीय जी के अगले दिन इलाहाबाद पहुँचने से पहले ही सर माइकेल ओडायर की घोषणा करनी पड़ी कि कौंसिल में उन्होंने जो कुछ कहा था, यदि उससे लोगों के मन में ब्रिटिस सरकार के प्रतिज्ञा-पालन के सम्बन्ध में कोई संदेह उत्पन्न हो गया है तो उन्हें इसके लिए खेद है। साथ ही ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि मिस्टर मौण्टेग्यू जो उन दिनों इंग्लैंड की सरकार में सैक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया (भारत-मंत्री) थे, कुछ ही सप्ताहों में भारत आयेंगे और यहाँ आकर भारतीयों को स्वशासन की दिशा में उत्तरदायित्व सौंपने के सम्बन्ध में विभिन्न राजनैतिक दलों तथा जातियों के नेताओं से परामर्श करेंगे। परिणामस्वरूप मिस्टर मौण्टेग्यू थोड़े दिनों के बाद भारत आये।

नवम्बर, सन् १९१८ में प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त हो गया। मित्र-राष्ट्रों की विजय हुई। चूंकि भारतीयों ने युद्ध जीतने में महान् योगदान दिया था, इसलिए उन्हें पेरिस में होने वाले 'शान्ति-सम्मेलन' में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रत किया गया। सम्मेलन में भाग लेने के लिए भारत की ब्रिटश नौकरशाही ने राष्ट्रीय नेताओं को आमंत्रित करने के स्थान पर अपने कुछ पिट्ठुओं को चुन लिया। इन 'प्रतिनिधियों' का जनता नाम तक न जानती थी। सरकार के इस कृत्य पर विरोध तथा रोष प्रकट करने के लिए देश-भर में अनेक सार्वजनिक सभाएँ हुईं। लोगों ने सर्वसम्मति से लोकमान्य तिलक को भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल का नेता चुना तथा मालवीय जी, मिस्टर जिन्ना तथा मिस्टर बपिस्टा के नाम मण्डल के अन्य सदस्यों के रूप में प्रस्तावित किए गए।

दिल्ली कांग्रेस

सन् १९१८ की क्रिस्मस में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिल्ली में बुलाया गया। उस अधिवेशन में मैं भी एक प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुआ था। लोकमान्य तिलक अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए थे, किन्तु वे इस पद को स्वीकार न कर सके। कारण यह था कि उन दिनों वे कांग्रेस के एक प्रतिनिधि मन्डल के नेता के रूप में इंग्लैन्ड गए हुए थे। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने एक ज्वाइन्ट सिलैक्ट कमेटी (सम्मिलित संसदीय समिति) निर्धारित की थी जो मिस्टर मौण्टेग्यू द्वारा प्रस्तुत स्वशासन-सम्बन्धी योजना पर विचार-विमर्श कर रही थी। उपर्युक्त प्रतिनिधि-मण्डल इस समिति के समक्ष देश का राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखने के लिए इंग्लैण्ड भेजा गया था। इसी योजना का बाद में 'मौण्टेग्यू-

चेम्सफोर्ड सुधार' नाम पड़ा। लोकमान्य की अनुपस्थिति में मालवीय जी को कांग्रेस के दिल्ली-अधिवेशन का सभापति मनोनीत किया गया।

मालवीय जी के साथ घनिष्ट सम्पर्क में आने का अवसर मुझे मार्शल-ला अधिशासन के समय तथा उसके बाद की अवधि में प्राप्त हुआ। मई, सन् १९१९ में दो उत्तरी प्रान्तों—पंजाब तथा सीमाप्रान्त—में मार्शल-ला घोषित कर दिया गया था। उन दिनों मुझे नौ महीने से अधिक समय तक मालवीय जी के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

रौलट ऐक्ट

युद्ध की समाप्ति के बाद भारत को मीनियन-स्तर के अधिकार प्रदान करने के स्थान पर जिसकी भारतीयों को पूरी आशा थी—भारत-स्थित ब्रिटिश सरकार ने 'रौलट ऐक्ट' नामक एक कानून पास कर दिया। इस कानून के द्वारा सरकार ने यह अधिकार प्राप्त कर लिया कि वह किसी भी व्यक्ति को कितनी ही अवधि के लिए बिना मुकदमा चलाये या बिना कारण बतलाये जेल में डाल सकती थी, देश से निष्कासित कर सकती थी अथवा उसकी गति-विधि को नियन्त्रित कर सकती थी तथा चाहे जिसकी जायदाद जब्त कर सकती थी।

चूंकि रौलट ऐक्ट इंग्लैण्ड के मन्त्रि-मण्डल की स्वीकृति से लागू किया गया था, इसलिए भारत के मौडरेट (नरमदलीय) दल के नेताओं के समक्ष भी, जो अब तक भारत की ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग करते आए थे, यह बात स्पष्ट हो गई कि ब्रिटिश सरकार ने युद्ध के पश्चात् भारतीयों को उत्तरदायित्वपूर्ण स्वशासन प्रदान करने का जो वचन दिया था, उसे पूरा करने का उसका कोई इरादा नहीं है।

इस अनुचित कृत्य पर भारतीय जनता में रोष फैल गया और सारे देश में गम्भीर प्रकार के प्रदर्शन हुए। जगह जगह हड़तालें हुई, व्यापार बन्द कर दिया गया, विद्यार्थियों ने स्कूल-कालेज छोड़ दिए, अदालतों का बायकाट (बहिष्कार) कर दिया गया, यहां तक कि लोगों ने यह धमकी दे दी कि वे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारी टैक्स अदा नहीं करेंगे। दो उत्तरी प्रान्तों (पंजाब तथा सीमाप्रान्त) में नागरिक शासन ठप्प हो गया और वहां मार्शल-ला (सैनिक अधिशासन) घोषित कर दिया। जनरल डायर को एक प्रकार का सैनिक गवर्नर बना दिया गया और सैनिक-अधिशासन की बागडोर उसके हाथ में दे दी गई।

जलियाँवाला

उन दिनों अमृतसर नगर उत्तरी भारत की समस्य राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र बना हुआ था। इसलिए जनरल डायर ने अपना हेडक्वार्टर अमृतसर में स्थापित कर दिया। जलियाँवाला बाग में एक दिन एक विराट् सार्वजनिक सभा आयोजित की गई; जिसमें मार्शल-ला के विरोध में लोग अपना मत प्रकट करना चाहते थे। लगभग एक लाख व्यक्ति उस सभा में भाग लेने के लिए एकत्रित हो गए। जनरल डायर ने स्वयं अपनी कमान में ब्रिटिश सैनिकों की एक बटालियन के साथ जलियाँवाला बाग़ को जा घेरा। ब्रिटिश सैनिक अस्त्र-शस्त्रों से पूरी तरह लैस थे, यहां तक कि उनके पास भारी मशीनगनें

भी थीं। घेरा डालने के तुरन्त बाद जनरल डायर ने लोगों को यह आज्ञा अथवा चेतावनी दिये बिना कि वे सभा भंग कर दें और सभा-स्थल से चले जायें, सैनिक दल को गोलाबारी करने की आज्ञा दे दी। परिणाम-स्वरूप कुछ ही क्षणों में लगभग ३६०० व्यक्ति मारे गए और दस हजार से अधिक व्यक्ति बुरीतरह घायल हुए। कई दिन तक अनेक नगरों में लोगों को उनके घरों से घसीट-घसीट कर बाहर निकाला गया और उनकी नंगी पीठ पर कोड़े लगाए गए। सैकड़ों लोगों को पेट के बल सड़कों पर रेंगने के लिए विवश किया गया। सरकार ने विरोधियों को नंगे सिर झुलसती धूप में बिना कुछ खिलाये और बिना पानी पिलाये घन्टों तक खड़ा रखा। नगरों में हर जगह—बाजारों में, मुहल्लों में, चौक के नुक्कड़ों पर सशस्त्र अंग्रेज सिपाही खड़े रहते थे और जिसे भी वह चाहते, केवल मनो-विनोद के लिए, बन्दूक़ का निशाना बना देते थे और मरते हुए आदमियों को ठोकरें मारते थे।

दो-तीन सप्ताहों तक इन प्रान्तों में लोगों पर इतने पाशविक और भयंकर अत्याचार किये गए कि उनका उदाहरण संसार-भर के इतिहास में कहीं नहीं मिल सकता। सारे देश की जनता तथा नौकरशाही को विश्वास हो गया कि भारत कम से कम आधी शताब्दी तक दोबारा नहीं उठ सकेगा।

ऐसे घोर अन्धकार तथा निराशा के समय मालवीय जी अपने प्राणों को हथेली पर रखकर आगे आये। उन्होंने इलाहाबाद में, जहां वे उन दिनों रहते थे, घोषणा कर दी कि वे स्थिति को निजी तौर पर जांच करने के लिए पंजाब तथा सीमाप्रान्त का दौरा करेंगे। उन्होंने अपने इस विचार की पूर्व सूचना वायसराय, पंजाब-सरकार तथा सीमाप्रान्त के चीफ कमिश्नर को भेज दी।

अलौकिक साहस

अमृतसर से २०० मील इधर अम्बाला रेलवे-स्टेशन पर उन्हें रात के समय जगाया गया और पंजाब-सरकार ने उन्हें आज्ञा दी कि वे पंजाब में प्रवेश न करें। उन्होंने साफ कह दिया कि "जब तक मुझे गिरफ्तार करके गाड़ी से न निकाला जायगा, मैं न तो गाड़ी से उतरूंगा और न वापस लौटूंगा।" और सरकार उन्हें गिरफ्तार करने का साहस नहीं कर सकी (यह उल्लेखनीय है कि गांधी जी भी इसी तरह अहमदाबाद से पंजाब आ रहे थे। उन्हें दिल्ली-स्टेशन पर ऐसा ही एक आर्डर मिला और वे साबरमती-आश्रम लौट गए।)

एक दिन, प्रातःकाल के समय, मैं अपने कुछ नवयुवक मित्रों के साथ सवेरे की सैर से वापस आ रहा था। रेलवे-स्टेशन के निकट एक मन्दिर था, जिसमें धर्मशाला भी थी। जब हम इस स्थान के समीप पहुँचे तो हमने देखा कि धर्मशाला के बाहर सड़क के किनारे मालवीय जी खड़े हैं। हम उन्हें उस अवस्था में वहां खड़ा देखकर बड़े चकित हुए। जब हम उनके पास पहुँचे तो पता चला कि स्टेशन से बाहर निकल कर उन्होंने किसी तांगे वाले से कहा कि वह किसी धर्मशाला तक पहुँचा दे। तांगे वाला उन्हें यहां छोड़ गया। लगभग

एक घण्टे बाद जब स्नान और पूजा-पाठ से निवृत्त होकर वे शहर में जाने के लिए धर्मशाला से बाहर निकलने लगे तो एक व्यक्ति आया, उसने अपने को उस स्थान का मालिक और मुख्य ट्रस्टी बतलाया, और मालवीय जी का ट्रंकबिस्तर बाहर रखकर उसने धर्मशाला के मुख्य द्वार पर ताला लगा दिया।

मालवीय जी ने हमसे पूछा—"क्या आप मुझे किसी अन्य धर्मशाला में पहुँचा सकते हैं?" किसी दूसरी जगह भी उनके साथ कहीं ऐसा ही दुर्व्यवहार न हो—यह सोचकर हमने उन्हें सुझाव दिया कि वे डाक्टर सत्यपाल के मकान पर चले जायें। डाक्टर सत्यपाल को सरकार ने मार्शल-ला के अन्तर्गत नजरबन्द कर लिया था, इसलिए हमने सोचा कि उनका मकान खाली होगा और इस समय मालवीय जी के ठहरने के लिए बहुत उपयुक्त रहेगा। मालवीय जी ने हमारा सुझाव स्वीकार कर लिया। हममें से तीन व्यक्ति उन्हें डा० सत्यपाल के मकान पर ले गए। डा० सत्यपाल की धर्मपत्नी उस समय अकेली थीं। हमने उन्हें मालवीय जी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में बतलाया और उनके अमृतसर पधारने का कारण भी समझाया। इस पर वह तुरन्त मालवीय जी को अपने घर पर ठहराने के लिए उद्यत हो गई।

हम लोगों में, जो उन दिनों सरकार से इतने भयभीत एवं आतंकित थे, मालवीय जी के अमृतसर पधारने के कुछ ही समय के अन्दर इतना साहस भर गया कि हम किसी भी संकटपूर्ण परिणाम का सामना करने के लिए तैयार हो गए। लगभग साठ वर्ष की आयु के इस दुबले-पतले, कमनीय, प्रौढ़ व्यक्ति की आत्मा में ऐसा प्रभाव था? उनमें नवयुवकों से भी अधिक भावना, साहस और प्राणों को उत्सर्ग करने का माद्दा था। भारत के युवक-वर्ग के लिए वे सदा एक आदर्श व्यक्ति और एक उदाहरण बने रहे।

मन्त्र की महिमा

मालवीय जी के अमृतसर पधारने के बाद कुछ ही दिनों में परिस्थिति बहुत बदल गई। मार्शल-ला वापस ले लिया गया। जो लोग कुछ ही सप्ताह पूर्व बुरी तरह भयभीत एवं आतंकित थे, उनमें साहस तथा नये जीवन का संचार हो उठा। लोगों में जितनी राष्ट्रीय चेतना इस समय उत्पन्न हुई, उतनी पहले कभी नहीं देखी गई थी। मालवीय जी के साथ मेरा उन संकटपूर्ण दिनों में घनिष्ठ सम्पर्क रहा। उन्होंने राष्ट्रीय जागरण एवं उत्थान के लिए जो महान् कार्य उन दिनों किया, उसके आधार पर मैं यह बात पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि उस कार्य के बिना स्वतन्त्रता न तो इतनी आसानी से प्राप्त हो सकती थी और न ही इतनी जल्दी, जितनी हमें प्राप्त हुई; और शायद आज भी हमारे देश में डुमीनियन प्रकार का कोई शासन-तंत्र होता, और शायद वह भी न होता। गाँधी और नेहरू तथा उनके सहयोगी समस्त नेता स्वतन्त्रता-आन्दोलन को इतनी सफलता और इस सीमा तक इतनी जल्दी कभी न बढ़ा पाते, यदि मालवीय जी ने वे काम न किये होते जो मार्शल-ला के बाद अपने प्राणों को हथेली पर रखकर उन्होंने पंजाब में सम्पन्न किये।

मालवीय जी ने अमृतसर में अपना मुख्य कार्य-केन्द्र डा० सत्यपाल के मकान को ही बनाया। कुछ दिनों के बाद वे श्री वेंकटेशनारायण तिवारी को, जो प्रयाग सेवा-समिति के

मन्त्री थे, ले आये। उसके कुछ सप्ताह बाद वे पंडित मोतीलाल नेहरू को भी अमृतसर ले आये। पंडित मोतीलाल जी को उस समय तक सार्वजनिक क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त नहीं हुई थी, इसलिए लोगों ने उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। मालवीय जी के प्रयत्नों के फलस्वरूप कांग्रेस का अगला वार्षिक अधिवेशन अमृतसर में होना निश्चित हुआ। इस बार भी अधिवेशन के सभापति के रूप में लोकमान्य तिलक का निर्वाचन लगभग निश्चित हो चुका था, किन्तु मालवीय जी ने उत्तर-पश्चिमी भारत तथा संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) का दौरा करके हर जगह कांग्रेस कमेटियों को प्रेरित किया कि अमृतसर अधिवेशन का सभापति मोतीलाल जी को निर्वाचित किया जाये। स्वागत-समिति में भी बहुमत लोकमान्य के पक्ष में था, किन्तु मालवीय जी ने अन्तिम क्षण पर प्रतिनिधियों से मोतीलाल जी के पक्ष में वोट देने की अपील की। अन्त में मोतीलाल जी ही अमृतसर कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये।

स्वयं तार देने गए

मार्शल-ला हटा लिए जाने के कुछ दिन बाद एक रात मालवीय जी ने कई पृष्ठों का एक बहुत लम्बा तार लिखा, जिसे वे ब्रिटिश सरकार के भारत मंत्री (सेक्रेटरी आफ़ स्टेट फार इंडिया) को तथा उसकी प्रतिलिपि वाइसराय को भेजना चाहते थे। रात बहुत बीत चुकी थी और मकान में सब आदमी गहरी नींद में सोये हुए थे। मालवीय जी ने किसी को जगाया नहीं और स्वयं तार देने के लिए तारघर तक पैदल गए। तारघर वहाँ से दो मील दूर था।

मालवीय जी किसी छोटे-से-छोटे व्यक्ति को—यहाँ तक कि किसी नौकर को भी—कष्ट नहीं देना चाहते थे। इस घटना के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रहे कि मालवीय जी उस समय ख्याति के चरम बिन्दु पर पहुँचे हुए थे। मैंने जितने दिन उनके साथ काम किया, मुझे ऐसा लगता रहा मानों मैं अपनी माता की छत्रछाया में काम कर रहा हूँ। वे प्रेम और दया की मूर्ति थे, और उस समय भी, जब उनकी प्रतिष्ठा, शक्ति और लोकप्रियता अपने शिखर पर थी, उन्होंने विनम्रता और शील को कभी हाथ से नहीं जाने दिया।

रेशमी कपड़े

मैं बाल्यकाल से ही पूजा-पाठ करता रहा हूँ। एक दिन गुजराँवाला नगर में जब मैं मन्दिर से लौटकर आया, तो मालवीय जी ने मुझे पूजा के समय रेशमी वस्त्र धारण करने का परामर्श दिया। मैंने निवेदन किया कि एक रेशमी धोती-कुर्ता बनाने के लिए कम-से-कम एक लाख जीवों (रेशम के कीड़ों) की हत्या होती है। इस पर उन्होंने मुझे गले से लगा लिया और मुझे आशीर्वाद दिया। साथ ही उसी दिन उन्होंने अपने लिए बाजार से खादी का एक कुर्ता और एक धोती मंगवा लिए। उस दिन के बाद मैंने उन्हें कभी रेशमी वस्त्र धारण करते नहीं देखा।

ये तो गोपाल कृष्ण हैं?

एक दिन कमरे में एक अत्यन्त आवश्यक बैठक हो रही थी और मालवीय जी कोई महत्वपूर्ण योजना तैयार करने में लगे हुए थे। कुछ बच्चे कमरे से बाहर खेल रहे थे और

बड़ा कोलाहल कर रहे थे। एक सज्जन उठकर बाहर जाने लगे ताकि बच्चों को वहाँ से हटा दें। किन्तु मालवीय जी ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया और कहने लगे –'बालकों के रूप में ही भगवान् के दर्शन हो सकते हैं, बालक तो गोपाल कृष्ण हैं। हमें इन सुन्दर बाल-गोपालों को रोकने के बजाय स्वयं अपने पर नियन्त्रण रखना चाहिए।'

ऐतिहासिक भाषण

सन् १९१९ में मार्शल-ला की समाप्ति के कुछ महीने बाद जिन्हें इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में मालवीय जी के भाषण सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे यह बात कभी नहीं भूल सकते कि किस तरह मालवीय जी ने अकेलेदम असीम सत्ताधारी ब्रिटिश सरकार का मुकाबला किया; क्योंकि उन दिनों कौंसिल के महत्वपूर्ण सदस्यों में से अधिकांश व्यक्ति ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की ज्वाइंट सिलैक्ट कमेटी के समक्ष भारतीय दृष्टिकोण रखने के लिए इंग्लैंड गए हुए थे (इस बात की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं)। जनरल डायर ने पंजाब की निरीह, निरपराध, निहत्थी जनता पर किस तरह भयंकर अत्याचार किये—इस विषय पर मालवीय जी कौंसिल में लगातार तीन दिन तक भाषण देते रहे। इस भाषण के सम्बन्ध में उन्होंने थोड़े-बहुत तथ्य कुछ कागजों पर मोटे तौर पर नोट कर रक्खे थे, शेष सारा भाषण उन्होंने बिना किसी तैयारी के पूरा किया। इतमें लम्बे भाषण में भी उन्होंने अपनी किसी बात अथवा युक्ति की पुनरावृत्ति नहीं की। मालवीय जी ने जनरल डायर के रोमांचकारी अत्याचारों पर इतना प्रबल एवं प्रभावशाली भाषण दिया कि भाषण के बीच में कई बार सरकारी सदस्य भी रो पड़े। उन दिनों में दर्शकों की गैलरी (दीर्घा) लोगों से खचाखच भरी रही। दर्शकों में बहुत-से सरकारी सदस्यों तथा अधिकारियों की पत्नियाँ भी थीं। मालवीय जी के भाषण को सुनकर कई महिलाएँ बेहोश हो गईं।

जब मालवीय जी के आरोपों का उत्तर देने की सरकार की बारी आयी तो सरकारी प्रवक्ता कोई ठोस एवं युक्ति-युक्त उत्तर नहीं दे सके, बल्कि वे अशिष्ट शब्दों पर उतर आए। पंजाब-सरकार के प्रवक्ताओं में सर माइकेल ओडायर भी थे। मालवीय जी के भाषण के बाद कौंसिल में जो वादविवाद छिड़ा, उसमें सर ओडायर के साथ मालवीय जी की कई बड़ी तेज झड़पें हुईं।

सरकारी पक्ष की युक्तियों और तथ्यों पर इंग्लैण्ड के समाचार-पत्र तथा भारत के अंग्रेजी समाचार-पत्र भी बहुत निराश हुए। उन दिनों केन्द्रीय सरकार के होम-मेम्बर (गृह-मन्त्री) सर विन्सेंट स्मिथ थे। उनकी धर्मपत्नी यह कहती हुई सुनी गईं कि 'मेरे पति पण्डित का मुकाबला नहीं कर सकते।' (ब्रिटिश अधिकारी वर्ग में मालवीय जी को 'पण्डित' नाम से पुकारा जाता था।) इंग्लैंड के समाचार पत्रों ने तो मालवीयजी की तुलना ग्लैडस्टन तथा डिजराइली तक से की, जो उस देश के महानतम प्रधान मन्त्री माने जाते हैं। उन्होंने इस बात आश्चर्य प्रकट किया है कि एक व्यक्ति, जो न तो अंगरेज है और नहीं जिसकी मातृ-भाषा अंग्रेजी है, किस तरह अंग्रेजी में ऐसी धारा-प्रवाह वक्तृता दे सकता है तथा बिना तैयारी के किसी विषय पर इतनी गहराई, इतनी बारीकी और इतने विस्तार के साथ, लगातार इतने लम्बे समय तक, भाषण दे सकता है।

असीम क्षमा शीलता

मैंने मालवीय जी को कभी किसी की भी – यहाँ तक कि अपने बड़े-से बड़े विरोधी एवं शत्रु की भी—निन्दा करते नहीं सुना। वे कभी किसी पर क्रोध नहीं करते थे, न ही कभी सहनशीलता को हाथ से जाने देते थे। छोटे-से-छोटे आदमी की बड़ी-से-बड़ी भूल एवं अपराध पर भी वे उसे क्षमा कर देते थे। उनकी दया एवं क्षमाशीलता असीम थी।

सन् १९२५ में मालवीय जी का मोतीलाल जी से राजनीतिक मतभेद हो गया था और दोनों ने अलग-अलग राजनीतिक दल बना लिए थे। उन दिनों की एक घटना, जो मालवीय जी के सहिष्णु एवं क्षमाशील स्वभाव पर प्रकाश डालती है, मुझे अब तक अच्छी तरह याद है।

उन दिनों केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव हो रहे थे। मोतीलाल जी अपने दल के उम्मीदवारों के पक्ष में पंजाब का दौरा कर रहे थे। उन्हें पता था कि पंजाब-वासियों पर मालवीय जी का बड़ा प्रभाव है। इस प्रभाव को काटने के लिए मोतीलाल जी अपने भाषणों में मालवीय जी पर व्यक्तिगत आक्षेप करते थे। अमृतसर की एक सभा में, जहाँ मालवीय जी को भाषण देना था, एक वक्ता ने मोतीलाल जी पर इसी प्रकार की कीचड़ उछालनी शुरू की। इस पर मालवीय जी ने उस वक्ता को तुरन्त ही रोक दिया और आध घण्टे से अधिक समय तक अपने भाषण में मोतीलाल जी की इतनी प्रशंसा की कि सुनने वाले दंग रह गये। यह है मालवीय जी की महानता का एक छोटा-सा उदाहरण! उनके व्यक्तित्व और चरित्र में उच्च से उच्च मानवीय गुण पुन्जीभूत थे।

मालवीय जी के महान् गुणों पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, क्योंकि उनके गुणों की न कोई थाह है, न सीमा। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में अनेक व्यक्ति मालवीय जी के सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिख रहे हैं। इन व्यक्तियों में देश के कई महान् नेता भी सम्मिलित हैं जो सौभाग्य से अभी तक हमारे बीच विद्यमान हैं। इसलिए मैं यहाँ अपने उपर्युक्त संस्मरण देकर ही सन्तोष कर रहा हूँ।

—मुन्नीलाल मेहरा

———

पांचवाँ अध्याय

मालवीय जी ने पंचम जार्ज की धमकी का उत्तर दिया

—शिवधनी सिंह

पंडित मदनमोहन मालवीय जी का जन्म ऐसे वातावरण में हुआ, जब भारत दासता के बन्धनों में जकड़ा हुआ था। भारतीय जनता अपनी संस्कृति को भूलती जा रही थी और भारत का नैतिक बल क्षीण होता जा रहा था।

मालवीयजी महाराज के हृदय में बाल्यावस्था ही से देश और धर्मरक्षा की भावना गूंज रही थी। आपने जनोपयोगी और देशोपयोगी अनेक संस्थाओं का निर्माण किया, पत्र-पत्रिकायें निकालीं। सात वर्ष की उम्र से प्रयाग में त्रिवेणी तटपर धर्मोपदेश देना शुरू किया। २५ वर्ष की उम्र में अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा—काँग्रेस के मंच से राजनीतिक मन्त्र फूंकना प्रारम्भ कर दिया और अपनी चमकती वकालत का परित्याग कर अपना सारा समय समाज और देशहित के कार्यों में लगा दिया। 'तेजस्विनः वयः समीक्षते'—तेजस्वियों की उम्र पर विचार नहीं किया जाता।

आप स्वभावतः परम सात्विक, हृदयवान, त्यागी, मानवीय दया के आगार, असाधारण रूप से अपने निर्णय में उदार, विनम्र और सच्चे अर्थ में कृपालु थे। आपमें दूसरे के निर्णयों और भावनाओं के लिए सहिष्णुता थी। आप प्राणिमात्र के निस्पृह और सच्चे सेवक थे। राजनीति, शिक्षा, धर्म और संस्कृति के क्षेत्रों में आपके कार्य बेजोड़ हैं। आपका व्यक्तित्व अति भव्य और आकर्षक था। वाणी में अद्भुत जादू था हृदय विशाल तथा मृदु था। नीतिधर्म के श्लोकों के ढांचे में ढला हुआ आप का उज्ज्वल चरित्र शत्रुओं से भी सहज ही प्रेम और सम्मान प्राप्त कर लेता था। अनीति, अधर्म और अत्याचार के दमन और प्राचीन संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन के लिए हिन्दू और आदर्श ब्राह्मण के स्वरूप में ब्रह्मर्षि का अवतार हुआ था।

शिक्षा से जगत पर विजय

मालवीय जी महाराज में दूरदर्शिता थी। आप भविष्य के ज्ञाता थे, ऋषि थे—'मन्त्र द्रष्टारो ऋषयः' आपको जनता की नाड़ी का सच्चा ज्ञान था। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि जब तक जनता अपने धर्म और संस्कृति का महत्व नहीं समझ लेती। तब तक हम स्वराज्य के अधिकारी नहीं होंगे। वह शिक्षा की सुदृढ़ नींव के बल पर—'एतद्देश प्रसूतस्य शकाशादग्र जन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ के अनुसार भारत को पुनः जगद्गुरु के रूप में देखना चाहते थे। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की।

मालवीय जी में कार्य करने का ढंग निराला था। वह बहुमत के प्रवाह में कभी बहने वाले नहीं थे। धार्मिक, सामाजिक एवं देशहित के कार्यों में चाहे कैसे भी प्रभावशाली

व्यक्तियों से समर्थित प्रस्ताव या योजनाओं को वह सहसा स्वीकार नहीं करते थे। गम्भीरतापूर्वक विचार करने और अन्तःप्रेरणा मिलने पर ही उसका समर्थन करते थे अन्यथा अकेले उसके विरोध में जुट जाते थे।

चौरीचौरा-काण्ड के बाद मालवीय जी के जोरदार अनुरोध पर महात्मा गाँधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित करने की घोषणा की थी।

बम्बई की कांग्रेस की बैठक में प्रिन्स आफ वेल्स के बहिष्कार का प्रस्ताव पास किया गया। मालवीय जी ने उसका जोरदार विरोध किया था और आपने हिन्दू विश्वविद्यालय में उनका स्वागत किया, उन्हें उपाधि प्रदान की थीं। आपने साइमन कमीशन का जोरदार विरोध किया।

संकट काल में देश को सदा आप से बल मिला। कानपुर, मुलतान, सहारनपुर, कोहाट, मालाबार, कलकत्ता आदि स्थानों के साम्प्रदायिक दंगों में, भूकम्प, बाढ़ क्षतिग्रस्त स्थान में, जलियाँवाला बाग हत्याकांड में सर्वत्र मालवीय जी महाराज ने अपनी सेवा से सबको लाभ पहुँचाया।

सन् १९२२ में महात्मा गाँधी के गिरफ्तार होने पर मालवीय जी ने पेशावर से आसाम तक दौरा कर जनता को प्रबुद्ध किया। सरकार ने धारा १४४ का प्रतिबन्ध लगाया। महाराज ने उसका पालन नहीं किया।

हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में जब मालवीय जी ने तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिग्ज से भेंट की तो उन्होंने कहा—'मेरे पास आपकी यह शिकायत पहुँची है कि आप सरकार के गुप्त विरोधी हैं।' महाराज ने उत्तर दिया—'ऐसा तो नहीं है, आप अपने निजी व्यक्ति से मेरे लेखों और व्याख्यानों की छानबीन करा लें, यदि उनमें कहीं इस प्रकार का भाव मिलेगा, जो अंग्रेजों के प्रति घृणा पैदा करनेवाला हो तो उसके लिए क्षमा मांग लूंगा।' इसके बाद लार्ड हार्डिग्ज ने बराबर महाराज से सहानुभूति का भाव रखा और उनका विश्वास किया।

मालवीय जी के प्रभावशाली भाषण पर ही लार्ड हार्डिग्ज ने सदियों से चली आ रही कुली प्रथा के हटाने की घोषणा सम्राट सरकार में की।

१९२९ में सारे भारत का दौरा कर मालवीय जी ने जनता को स्वराज्य का मर्म समझाया और बम्बई में लार्ड इरविन को विलायत जाते समय एक लम्बा पत्र दिया, जिसमें यह अनुरोध किया था कि शीघ्र ही गोलमेज कान्फ्रेन्स बुलवाकर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य की घोषणा करायें। महाराज के पत्र के परिणाम स्वरूप लन्दन में गोजमेज सभा बुलायी गयी।

धमकी का उत्तर

लन्दन में मालवीय जी ने पन्चम जार्ज से भेंट की। सम्राट ने पूछा, 'क्या आप भी गाँधी के अनुवर्ती हैं?' महाराज ने कहा—'नहीं, मैं उनका सहयोगी हूँ।' बादशाह ने कुछ रुखाई से कहा 'देखिये श्री मालवीय? भारत में यदि हमारे एक भी आदमी पर

वार होगा तो उसके लिए यहाँ से मैं एक लाख आदमी भेजूँगा।' महाराज ने कहा, 'आप यह क्या कह रहे हैं? आप हमारा एक हक स्वीकार करें और भारत में अपना दरबार कर औपनिवेशिक स्वराज्य की घोषणा करें। इससे भारत में आपको लोग धन्य-धन्य कहेंगे और एशिया में आपका कीर्तिगान होने लगेगा। आपके एक आदमी पर वार हो और उसका बदला लेने के लिए यहाँ से एक लाख आदमी भेजे जाँय, यह प्रश्न हल करने के लिए हम यहाँ नहीं आये हैं।' इस उत्तर पर बादशाह ने बातचीत का ढंग बदल दिया और प्रेम सद्भावना से बातें करते रहे।

ब्रिटिश संसद् के तत्कालीन सदस्य श्री अर्नाल्ड वार्ड ने महाराज के विषय में कहा था—'···अपनी पार्टी के नेता पण्डित मालवीय बहुत उच्च कोटि के आदमी हैं...वे एक कट्टर उच्च कोटि के ब्राह्मण हैं और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर हैं। हिन्दू जाति में इनका अधिक प्रभाव है और इनके प्रति हिन्दू जाति का प्रेम और श्रद्धा विशेष है।···विचार करते हुए आश्चर्य होता है कि एक आदमी बीस करोड़ मनुष्यों का नेता है···ये सरकार को बहुत कड़ी से कड़ी बातें कहते हैं और अंग्रेजी राजनीतिज्ञों को डांटते हैं। इनसे बढ़कर दूसरा कोई नेता स्वार्थ रहित नहीं है।'

ब्रिटिश संसद के एक दूसरे सदस्य कर्नल बेजवुड का मत इस प्रकार है—

'भारतीय शिक्षा पण्डित मालवीय जी की कितनी ऋणी है, इससे यूरोप परिचित है, किन्तु मैंने इसके पूर्व ऐसी विशाल संस्था नहीं देखी जो बहुत कुछ एक ही व्यक्ति की कृति हो। यदि पण्डित मालवीय कभी राजनीतिज्ञ न होते तो वे शिक्षा-जगत के सर्वोच्च नेता माने जाते और यदि हिन्दू विश्वविद्यालय उनका बच्चा न होता तो वे संसार के बहुत बड़े राजनीतिज्ञ माने जाते। भारत तथा पाश्चात्य देशों के इतिहास में यह मिलन अनोखा है।'

कायाकल्प

१९३९ में मालवीय जी महाराज का स्वास्थ्य अत्यन्त दुर्बल हो गया था। शरीर में रक्त का अभाव था। काया-कल्प के विशेषज्ञ तपसी विशनदास जी के अनुरोध पर महाराज ने काया-कल्प कराने की स्वीकृति दे दी। प्रयाग में फाफामऊ के पास 'शिवकोटि' नामक स्थान में लाला मनमोहनदास के बँगले को चतुर्दिक ईंटों से बन्द कर, त्रिगर्भा कुटी बनाकर हवा और प्रकाश को बिलकुल बन्द कर दिया गया। महाराज ने उसी तिमिराच्छन्न कुटी में १६ जनवरी १९३९ को प्रवेश किया। शीघ्रता के कारण काया-कल्प के प्रारम्भिक पंचकर्मादि नहीं कर सके थे। महाराज के काया-कल्प ने संसार में हलचल मचा दी। देश-विदेश के क्षेत्रों में बराबर इसकी चर्चा होने लगी थी।

प्रयाग के शंकरगढ़ राज्य में पलाश का जंगल था। पलाश वृक्ष के ऊपर का भाग काटकर जड़ वाले भाग में ओखली बनाकर उसमें आँवले भर दिये जाते थे और कपड़-मिट्टी से बन्द कर उसी जंगल से एकत्र झुण्डों से घेर कर आग लगा दी जाती थी। २४ घण्टे तक उसमें पकने दिया जाता था। उस पर किसी की छाया न लगने का विशेष ध्यान

रखा जाता था। उन्हीं सिद्ध आँवलों को गाय के घी और शहद में मिलाकर महाराज को दिया जाता था। ऊपर से जितना पी सकें, गाय का दूध दिया जाता था।

काया-कल्प कुटी में ४५ दिनों तक यही उनकी ओषध या भोजन था। उन्हें देश-काल, घर बाहर का कोई समाचार नहीं दिया था। केवल तीन व्यक्ति उनके पास कुटी में जा सकते थे। घर के लोग भी सप्ताह में एक दिन हाथ पैर धोकर कपड़े बदल कर कुटी में लगे कमरे में जाकर उनको देख लेते थे। निरन्तर अन्धकार में रहने के कारण महाराज को दिन रात का ज्ञान नहीं रहा। दिन में वे सोते थे रात को प्रायः जागरण करते थे।

मैं रात को प्रतिदिन ३–४ बार कुटी की परिक्रमा कर लिया करता था जब महाराज जागते होते, बाहर की आहट मिलने पर ताली बजा देते थे। मैं अन्दर पहुँच जाता था। उनके रात्रि में जागरण का रहस्य उस रात्रि को प्रकट हुआ जब उन्होंने पूछ दिया कि 'अभी तुम कहीं बाहर जा रहे थे क्या?' मैंने कहा —'जब नींद नहीं आती तो कुटी की परिक्रमा कर लिया करता हूँ।' उन्होंने पूछा—'इस समय रात्रि है क्या?' मैंने मोमबत्ती के प्रकाश में उनके सिरहाने की घड़ी देखकर बतलाया कि इस समय रात्रि के २॥ बजे हैं। इस प्रकार प्रतिदिन २–३ घण्टा रात्रि में उन्हें भी भागवत सुनाता, कभी महाभारत कभी महाराज बीती घटनाओं को बतलाते, कभी भविष्य के कार्यक्रम पर विचार करते। बात-चीत में कभी-कभी सूर्योदय भी हो जाता था। उनके जीवन में उन्हें इतना एकान्त और बाह्य जगत की अवस्था से सर्वथा अनभिज्ञ होने का कभी एक दिन भी अवसर नहीं मिला था, जिसने दिन को रात्रि में और रात्रि को दिन में परिवर्तित कर दिया हो। एक दिन प्रायः १। बजे रात को मुझे अपने कान के पास बुलाकर धीमे और गीले स्वर में कहा, 'देखो! इस बात को ध्यान रखना कि मेरा दाह-संस्कार त्रिवेणी तट पर, जहाँ भाई मोतीलाल जी का किया गया, वहाँ न किया जाय, यह मुझे प्रिय नहीं है। लोगों के स्नान-पूजन के स्थान से दूर हटकर करना चाहिये जिससे लोगों को कष्ट न होने पाये। यदि काशी जाते समय रास्ते में ही शरीर छूट जाय तब भी सब बात का ध्यान रखना और भैया (अपने ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय पण्डित रमाकान्त मालवीय) से कह देना, शायद वह २–३ दिनों में बम्बई जाने वाले हैं, अभी न जायें, प्रयाग में ही रहें।'

गंगा के तट पर निस्तब्ध रात्रि में महाराज के मर्मस्थल से निकली इस वाणी ने मुझे डाँवाडोल कर दिया। मैं कुछ बोल न सका। मेरे चुप रहने पर महाराज ने कहा, 'सुन रहे हो?' मैंने कहा, 'बाबू जी! आप यह सब क्या कह रहे हैं? अवश्य ही आपके हृदय में कुछ उथल-पुथल हो रही है आप अपनी स्वाभाविक अवस्था का त्याग कर इस प्रकार हृदय की दुर्बलता दिखला रहे हैं।' इससे मेरा चित्त उद्विग्न हो रहा है।' महाराज ने कहा, 'तुम नहीं समझे। मेरे मन में कोई ऐसी बात नहीं है। जो कुछ कहा है, प्रकृतिस्थ होकर बहुधा छोटी-छोटी बातें ध्यान में नहीं आतीं, मेरे मन में वह बात खटकती थी सो तुम्हें सावधान कर दिया।'

मैंने कहा, 'यह तो ठीक है, आपका आदेश मिलते रहना चाहिये, किन्तु बात इतनी-सी ही नहीं है बाबू जी! आपका चित्त चंचल है, स्वर कम्पित है, अवश्य ही कुछ गम्भीर

चिन्ता में आप निमग्न हैं, आपने भैया को बम्बई न जाने का आदेश दिया है इससे आपके हृदय की दुर्बलता झलक रही है।' वह मौन थे। कुछ क्षण बाद उन्होंने कहा, 'दुःखी न होओ। मैं समझ रहा हूँ, तुम्हारे दिल में यह बात बैठ गयी है कि 'बाबूजी अब जाने वाले हैं। ऐसी बात नहीं है। यद्यपि शरीर का कुछ ठिकाना नहीं है, कब रहे, कब न रहे। जिस क्षण भीतर की वह ज्योति निकलेगी, भैया, तुम या कोई भी उस ज्योति को पकड़ नहीं सकता। एक बात मन में आ गयी थी सो तुमको बतला दिया।' उस दिन और कुछ बातचीत न हो सकी। मैं उनकी चारपाई पकड़े बैठा रहा। जब नाक की आवाज होने लगी तो उनके सो जाने का संकेत पाकर ४॥ बजे चुपके से उठकर बाहर आ गया।

कायाकल्प से महाराज को अच्छा लाभ हुआ था, जो काया-कल्प के पूर्व और ४५ दिन बाद के लिये गये चित्रों से स्पष्ट है। तपसी जी ने यह समझा दिया था कि निकलने पर क्षुधा तीव्र होगी, उसका शमन अवश्य होना चाहिये। यदि ऐसा न होगा तो धीरे-धीरे शरीर क्षीण और कल्प का प्रयोग व्यर्थ हो जाएगा। यह देखा गया कि मालवीय जी भोजन से उठकर हाथ धोते समय कहते जा रहे हैं, भूख नहीं गयी, पर इस भय से पूरा भोजन नहीं करते थे कि शायद अपच हो जाय। जो भोजन काया-कल्प के पहले करते थे, उससे अधिक काया-कल्प के बाद कभी नहीं किया। इस प्रकार वे सदैव ही भूखे रहने लगे और अन्ततः उनका शरीर अशक्त हो गया।

छठवाँ अध्याय

प्रकृति-सिद्ध महामना

ये दीनेषु दयालवः स्पृशति यानल्पोपि न श्रीमदो
व्यग्रा ये च परोपकारकरणे तुष्यन्ति ये याचितः।
स्वस्थाः सन्त्यपि यौवनोदयमहाव्याधिप्रकोपोदये,
ते भूमण्डलमण्डलैकतिलकाः सन्तः कियन्तो जनाः॥

चि० पं० मदनमोहन मालवीय से मेरा प्रथम परिचय उस अवसर पर हुआ जब वे घोड़े पर सवार हो, दूल्हा बनकर मिर्जापुर-निवासी पं० नन्दराम जी के यहाँ पधारे थे। महादेव की इमली के नीचे वाला वह दृश्य मेरे हृदय-पटल पर आज भी अंकित है। मैं उन दिनों गवर्नमेन्ट हाई स्कूल, मिर्जापुर के संस्कृत-विभाग में संस्कृत-साहित्य के धुरन्धर विद्वान् स्व० पं० गदाधर प्रसाद मालवीय की अध्यक्षता में संस्कृत पढ़ता था। उक्त पंडित जी मालवीय जी के चाचा थे। मालवीय जी के बारात में शामिल होने का सौभाग्य मुझे इन्हीं के शिष्यवर्ग के साथ प्राप्त हुआ था।

मिर्जापुर में शिक्षा समाप्त करके मैं श्री १००८ स्वामी श्री दयानन्द जी सरस्वती महाराज के साथ आनन्दबाग, बनारस में रहने लगा।

मालवीय जी से मेरा दूसरा स्मरणीय सम्पर्क प्रयाग के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व० पं० सरयूप्रसाद मिश्र के यहाँ हुआ था। मैं स्वामीजी का काम छोड़कर प्रयाग चला आया था और चिकित्सा का कार्य करने लगा था। पं० सरयू प्रसाद मेरी चिकित्सा में थे और मालवीय जी उनके यहाँ आया-जाया करते थे। मालवीय जी भी रक्त-पित्त की बीमारी से ग्रस्त थे। पं० सरयू प्रसाद की सलाह से उन्होंने मेरी चिकित्सा आरम्भ कर दी। मुझे खूब स्मरण है कि इस बार मैंने बहुत दिनों तक मालवीय जी की दवा की थी, मगर किसी प्रकार उनका रोग दूर हो न होता था; फिर भी मदनमोहन का विश्वास मेरे ऊपर अटल था। घर वाले उनसे नाराज होते थे, कहते थे, 'शिवराम की दवा मत करो। वे तुम्हारा बहुत-सा रुपया खर्च कराते हैं और तुमको ठगते हैं।' उनको मदनमोहन का उत्तर विलक्षण था। वे लोगों से यही कहते थे कि 'मेरे ही कुपथ्य से मेरा रोग नहीं छूट रहा है। शिवराम जी की चिकित्सा में और उनकी आदमीयत में कोई कमी नहीं है।'

मगर घरवाले चिन्तित थे। उनकी चिन्ता भी अकारण न थी। वे मुझसे मिलते थे और सचिन्त होकर पूछते थे कि 'क्या कारण है कि मदनमोहन आप की दवा में इतने दिनों से हैं मगर अभी तक आरोग्य नहीं हुए? अवस्था में परिवर्तन का भी कोई चिह्न उनमें नहीं मिल रहा है।' मैं भी परेशान था। मेरी दवा में रोग दूर करने की शक्ति जरूर थी मगर पथ्यहीन को पथ्य से रहने के लिए विवश करने की ताक़त उसमें न थी। मैंने मालवीय जी के घरवालों से कहा कि इनकी बोलने की आदत बहुत चढ़ी-बढ़ी है। जब तक यह आदत न छूटेगी, तब तक मुंह से खून का जाना बन्द न होगा। मगर मदनमोहन को बोलने का नशा था। चेष्टा करने पर भी वे बोलना छोड़ न सकते थे।

मदनमोहन के बड़े भाई लक्ष्मीनारायण को मेरी सलाह जँच गई। फिर क्या था, वे छड़ी लेकर मदनमोहन के साथ रहने लगे। एक दिन ऐसा हुआ कि मदनमोहन से एक बड़े सम्मानित व्यक्ति मिले। उस अवसर पर मैं भी मदनमोहन के पास उपस्थित था। उस प्रतिष्ठित व्यक्ति और मदनमोहन में बातें होने लगीं। प्रहरी पं० लक्ष्मी नारायण भी छड़ी लिये मौजूद थे। जब उन्होंने देखा कि बातचीत का ताँता अब पथ्य से रहने की सीमा का उल्लंघन कर रहा है, तब उन्होंने इशारे से मदनमोहन का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। मदनमोहन तो लीन थे। उन्हें पथ्यापथ्य की कोई परवाह न थी। लाचार होकर लक्ष्मीनारायण को कहना पड़ा, 'बस भाई!' उस समय मदनमोहन को बहुत बुरा लगा। वे झुंझला गए। वे यह कहते हुए वहाँ से चल दिये, 'हमें ऐसी दवा की जरूरत नहीं।' मगर पं० लक्ष्मीनारायण पर उनकी इस झुंझलाहट का कुछ भी असर न पड़ा। उन्होंने छड़ी लेकर मदनमोहन के साथ रहना न छोड़ा।

'हिन्दुस्तान' की सम्पादकी

यमुना किनारे महाराजा बनारस की कोठी में मदनमोहन के उद्योग से मध्य हिन्दू-समाज का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिवेशन हुआ था। जलसा तीन दिन तक होता रहा और उसकी चहल-पहल कांग्रेस के अधिवेशन की चहल-पहल से कम न थी। उस समय अनेक पाश्चात्य देशों की सैर के बाद कालाकांकर-नरेश स्व० राजा रामपालसिंह प्रयाग पधारे थे। वे भी मध्य हिन्दू समाज के जलसे में शरीक हुए। इस अधिवेशन के अध्यक्ष बरावाधिपति वैष्णववर श्री महावीर प्रसाद जी निर्वाचित हुए थे। पं० लक्ष्मीनारायण व्यास वंद्य के प्रस्ताव से उन्होंने सभापति का आसन ग्रहण किया था। राजा रामपालसिंह सभापति के कार्य में अनेक व्यंग्यपूर्ण दखल इस रूप में दे रहे थे कि जो मदनमोहन को बुरा लग रहा था। राजा साहब कभी-कभी कह उठते, 'चूंकि हमारे प्रेसीडेन्ट साहब अच्छी तरह कम बोलते हैं इसलिए उनकी तरफ से कह कर मैं कमी-बेशी की पूर्ति किये देता हूँ।' इस भूमिका के उपरान्त वह एक भाषण करने लगे। इस प्रकार के अबाध दखल से मदनमोहन ही नहीं, और भी अनेक लोग असन्तुष्ट थे। पर राजा साहब का नाम बड़ा था और उनको रोकने की हिम्मत ही किसमें थी! पर अनुचित कार्यवाही को मदनमोहन कैसे बर्दाश्त कर लेते! ऐसी कार्यवाही के विषय में खड़े होकर राजा साहब के कान में कुछ कहते हुए मदनमोहन कई बार देखे गए थे। वे राजा साहब को रोकते थे, मगर राजा साहब जवाब में मुस्करा देते थे।

जलसा समाप्त होने पर राजा साहब ने अपने 'हिन्दुस्तान' नामक पत्र में मध्य हिन्दू समाज के इस अधिवेशन की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि अधिवेशन पूर्ण सफल रहा, मगर उनमें दो-एक लौंडे ढीठ थे कि वे बड़े-बड़े राजा-रईसों और बावदूकों (वक्ताओं) को व्याख्यान देते समय उनके कान में सलाह देने की धृष्टता करते थे।

इस लेख में मदनमोहन के प्रति राजा साहब की नाराजगी पूर्ण रूप से स्पष्ट थी। मगर यह अल्पकालिक ही थी। इस घटना के थोड़े ही दिनों बाद राजा साहब की गुण-ग्राहकता और उदारता ने उनको मदनमोहन से मिलने की कोशिश करने और उन्हें अपने

पत्र 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक बनाने के लिए विवश किया। मदनमोहन २५० रु० मासिक पर राजा साहब के यहाँ 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक नियुक्त हो गए।

राजा साहब पर मालवीय जी के सहवास का जबर्दस्त असर पड़ा। उनका नशा-पानी और अनेक आदतें बिलकुल छूट गई। एक दिन का जिक्र है कि हिन्दू समाज की बैठक थी और उनमें 'कान्सेंट बिल' पर विचार हो रहा था। इस बैठक में प्रयाग के प्रतिष्ठित वकील मुं० हनुमान प्रसाद जी भी उपस्थित थे। मुन्शी जी ने खानगी तौर पर मदनमोहन से कहा, 'महाराज, आप इन दिनों कालाकांकर के यहाँ पहुँच गए हैं। आपके सहवास से अवश्य ही राजा साहब का खान-पान और रहन-सहन बहुत पवित्र हो जायेगा।' इस अवसर पर बा० चारुचन्द्र मित्र और मुन्शी काशीप्रसाद भी समाज में उपस्थित थे। इन्हीं उपस्थित मित्रों में से कोई बोल उठा, 'इनके रहते पान तो राजा साहब ने बिलकुल ही बन्द कर दिया।'

सम्पादक बनने के बाद मदनमोहन का अधिकांश समय 'हिन्दुस्तान' के सम्पादन में ही लगता था, मगर उससे भी समय बचाकर वे वकालत का अध्ययन करते थे। उन दिनों रायबहादुर पं० बलदेवराम जी दूबे जान्सनगंज में रहते थे। उन्हीं के कोठे के बड़े कमरे में रौब जाकर मालवीयजी क़ानून का अध्ययन करते थे। बलदेवराम जी की मदद से उन्होंने वकालत पास कर ली, परन्तु बकालत पास करने के पहले ही से मदनमोहन के पास मुकदमे आने लगे थे। मदनमोहन इस समय तक काफ़ी प्रसिद्ध हो चुके थे।

अपने गुरु पं० बेनीराम जी कान्यकुब्ज के साथ काम सीखकर मदनमोहन ने स्वतन्त्र रूप से वकालत शुरू कर दी। वकालत से पहली आमदनी ९ रु० हुई थी। यह आमदनी, मुझे स्मरण है कि, मुझे भी शुरू-शुरू में ९ रु० ही की हुई थी।

जब से मदनमोहन ने 'हिन्दुस्तान का सम्पादन करना शुरू किया था, तब से राजा साहब उनको २५० रु० मासिक बराबर देते रहे। मदनमोहन की वकालत जब चलने लगी, तब बार-बार इनकार करने और मना करने पर भी राजा साहब हर मास २५० रु० मदनमोहन के पास भेज दिया करते थे। एक दिन मदनमोहन ने राजा साहब से कहा कि "महाराजा, अब तो मैं आपका कुछ काम नहीं करता। आपकी नौकरी में भी नहीं हूँ।" "नौकरी में इन शब्दों से राजा साहब रुष्ट होकर बोले, "मालवीय जी, क्या आपने कभी मेरे मन में या बर्ताव में अपने साथ या किसी के साथ नौकर का भाव पाया है? आपके पास विद्या है और आप गुणों की खान हैं। उसके द्वारा आप मेरी सहायता करते हैं और मैं भी थोड़े पैसों से आपकी सहायता करता हूँ। मुझ आप-जैसे बुद्धिमान् पुरुष के मुंह से ऐसी बात सुनकर बहुत दुःख हुआ। ऐसी बातें आपको शोभा नहीं देती हैं।"

इस तरह की फटकार राजा साहब के उपयुक्त ही थी। गुणवान् की परख करना राजा साहब का खास गुण था। दवा के सम्बन्ध में राजा साहब से मेरा सम्पर्क हुआ था। उनकी यह विशेषता थी कि एक बार जिस आदमी से उनकी पट जाती थी, उस आदमी से वह सदा के लिए एक सम्बन्ध कायम रखने की कोशिश करते थे।

कुत्ते की शुश्रूषा

एक बार मदनमोहन बिजली की तरह मेरे घर आ धमके। व बहुत जल्दी में थे। बोले, "एक कुत्ते के कान के पास कान से ही मिला हुआ एक बड़ा घाव है। घाव में कीड़े पड़ गए हैं। उसकी दवा बतलाइये।" मैंने एक अंगरेजी दवा बतायी और इस सम्बन्ध में सलाह के निमित्त डाक्टर अविनाश के यहाँ गया। उनसे सारा हाल कहा। अविनाश हँस पड़े। बोले, "आपकी तजबीज की हुई दवा ठीक है।" मदनमोहन मेरे यहाँ से होकर दौड़े हुए वापस कुत्ते के पास गए।

उनके साथ में बहुत-से स्कूली लड़के भी थे। कुत्ता मक्खियों के डर से टट्टर की आड़ में दुःखी होकर बैठा था। मदनमोहन ने एक बांस में कपड़ा लपेट कर उसे दवा से तर किया और दूर से कुत्ते के घाव में दवा लगाना शुरू किया। कुत्ता भयंकर स्वर से गुर्राता और भूंकता था। वह दवा लगाने वाले को डरा कर भगा देना चाहता था। पर मदनमोहन भी अपनी धुन के पक्के थे। वे चुपचाप दवा लगाते जाते थे। दवा लगाने के बाद कुत्ते को आराम मिला और चिल्लाता हुआ कुत्ता थोड़ी देर में आराम से सोने लगा। ऐसा दुःखी कुत्ता पागलपन की अवस्था में रहता है। उस समय मदनमोहन की धुन में भी पागलपन का ही पुट था। अविनाश की हँसी का यह एक माकूल कारण था। अविनाश डाक्टर थे, इसलिए ऐसी कार्यवाही पर हँस सकते थे; पर उस दुःखी कुत्ते के दुःख को अनुभव करने और उसके दुःख को दूर करने की व्याकुलता से तड़पने के लिए एक ऐसे हृदय की जरूरत है जो मदनमोहन-जैसे कुछ थोड़े प्रतिभा-सम्पन्न महानुभावों को ही प्राप्त है।

अहिंसा-प्रेम

मदनमोहन का "स्वदेशी-प्रेम" बहुत पुराना है। बा० राधाकृष्ण खत्री और बा० हरदेवप्रसादजी वगैरह के द्वारा प्रयाग में बड़े धूम-धाम से देशी तिजारत कम्पनी खुलवा चुकने के उपरान्त एक दिन मदनमोहन मेरे पास आये और स्वदेशी वस्तुओं के विषय में बातचीत होने लगी। मालूम हुआ कि मदनमोहन के हिंसाविरोधी हृदय को एक नवीन व्याघात पहुँचा है। मदनमोहन ने कहा, "जूतों के कारण लाखों दीन और बेगुनाह पशुओं की जान मारी जाती है। चमड़ों के लिए असंख्य पशुओं के मारे जाने का तरीक़ा डाक्टर जयकृष्ण व्यास ने मुझ बताया। चिन्ता हो रही है कि किस प्रकार इन ग़रीब पशुओं के जीवन की रक्षा की जाय ?"

बाबू राधाकृष्ण गुप्त ने कहा, "बाबूजी, मैंने तो चमड़े का जूता पहनना छोड़ दिया है। देखिये, कपड़े का जूता बनवाया है। कागज का बोर्ड भी ऐसा मजबूत बनाया जा सकता है कि उससे गाड़ी का पहिया बन सकता है ऐसा मैंने सुना है।" बाबू राधाकृष्ण के दामाद सागर के हेडमास्टर राजाबाबू भी उपस्थित थे। मदनमोहन के चले जाने के बाद उन्होंने पूछा, कि ये साहब कौन हैं ? जवाब मिला कि ये मदनमोहन मालवीय हैं। राजाबाबू ने कहा इनकी बातें तो बिलकुल पागलपने की हैं। भला कहीं कागज के बोर्ड और कपड़े के द्वारा जूते बन सकते हैं और उनसे काम चल सकता है ?

इसी सम्बन्ध में मदनमोहन के निर्मल हृदय, अहिंसा-प्रेम और दया-भाव की देर तक प्रशंसा होती रही; मगर फिर भी राजाबाबू की धारणा यही रही कि मालवीय जी पागल हैं और ऐसा आदमी दुनियाँ में किसी काम का नहीं। दुनियाँ अपनी धारणाएँ नित्य बनाती-बिगाड़ती रहती है, परन्तु महापुरुष अपनी लगन के पक्के होते हैं।

पितृस्नेह

मदनमोहन के पिता भगवद्भक्ति-प्रचारक विद्वद्वर पं० ब्रजनाथ जी मालवीय ने "सिद्धान्तोत्तम" नाम का एक ग्रन्थ बड़े परिश्रम से लिखा था। उसके छपने के सम्बन्ध में एक दिन मदनमोहन ने मुझसे कहा कि "बाबूजी की उम्र अब बहुत अधिक हो रही है। कदाचित् वे स्वर्गवासी हो गए और उनके सामने "सिद्धान्तोत्तम" ग्रन्थ न छप सका तो मुझको अधिक कष्ट होगा। इसलिए जहाँ तक हो सके, उसे बहुत शीघ्र अपने प्रेस में छपाने का प्रयत्न कीजिये।"

ग्रन्थ को प्रकाशित देखकर पं० ब्रजनाथ जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। पिता की प्रसन्नता ने मदनमोहन के आह्लाद को कई गुना बढ़ा दिया।

सरसुन्दरलाल और मदनमोहन

सर सुन्दरलाल धुरन्धर विद्वान् और विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न होते हुए भी बहुत सीधे-सादे व्यक्ति थे। उनकी प्रतिभा और यश में स्वतः वृद्धि हुई। स्वयं उन्होंने कभी अपने गौरव की वृद्धि के लिए प्रयत्न किया हो, ऐसा मैंने नहीं देखा। परन्तु मदनमोहन में आदमी पहचानने और उससे उपयुक्त काम लेने की विलक्षण शक्ति थी। मदनमोहन सर सुन्दरलाल की योग्यता के क़ायल थे। उनके मन में आया कि अगर ऐसा योग्य व्यक्ति कहीं कौंसिल में पहुँच जाय तो देश की महती सेवा हो सके। मदनमोहन को धुन सवार हो गई और चारुचन्द्र मित्र के विरुद्ध सुन्दरलाल को कौंसिल का उम्मीदवार खड़ा कर दिया। मदनमोहन चारुचन्द्र मित्र को अपना बुजुर्ग और बड़ा समझते थे। पर जब एक धुन सवार हो गई, तब प्रश्न सामने यही था कि पं० सुन्दरलाल कौंसिल में पहुँच जायें।

मदनमोहन के अनेक बुजुर्ग और इष्ट-मित्र मुं० कुन्जबिहारीलाल वगैरह उनकी इस कार्यवाही पर बेहद नाराज थे। वे कौंसिल में पं० सुन्दरलाल का पहुँचना गवारा न कर सकते थे। उन दिनों राजनैतिक और सामाजिक गोष्ठी का नेतृत्व 'हिन्दी प्रतीप' के प्रसिद्ध ऐडीटर पं० बालकृष्ण जी भट्ट के हाथ था। भट्टजी के पास सब लोग एकत्र होकर पं० सुन्दरलाल की उम्मीदवारी के विरुद्ध अपनी आवाज उठाते थे और इस सम्बन्ध में मदनमोहन को गालियाँ भी देते थे।

मदनमोहन के ऊपर भट्टजी का प्रेम विशेष था, इसलिए उनको स्वतन्त्र झिड़कियाँ और गालियाँ देने का भी अधिकार था। वे झल्ला कर कहते, 'क्यों रे मदनमोहन ! तुझे यह क्या सूझा है ? पं० सुन्दरलाल ने प्रजाहित का कौन-सा काम किया है ? प्रजाहित-साधन में यह कभी भाग नहीं लेते, तब तू क्यों उनकी तरफदारी करता है और उनको कौंसिल में भेजने के लिए प्रयत्न करता है ? तू चारु का विरोध करता है जिसने अपनी सारी जिन्दगी लोक-सेवा में बिता दी और जो तेरे बड़े ख़ैरख्वाह भी हैं।'

मदनमोहन ने भट्टजी को पं० सुन्दरलाल की योग्यता और कर्मपरायणता के विषय में बड़ी नम्रता से समझाया, पर भट्ट जी धुरन्धर विद्वान् ही नहीं, अपने मत को दृढ़ता से पकड़ने वाले भी थे। वे नाराज होकर कहते, 'तू जो चाहे कर, पर इनको कौंसिल में जाने का कोई हक़ नहीं है। तू इनके पीछे काहे पड़ता है, तू अपने लिए क्यों नहीं प्रयत्न करता ?'

मदनमोहन मुस्कराकर कहते, "भट्टजी, मेरा अभी कौंसिल जाने का समय नहीं आया।"

कुछ दिनों तक कौंसिल के उम्मीदवारों के सम्बन्ध में इस तरह की टीका-टिप्पणी गोष्ठी में होती रही। बाद को इनके तरफदारों ने अखबारों में यह चर्चा छेड़ दी और दोनों तरफ से भद्दे और कुरुचिपूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे। मगर यह सब पं० सुन्दरलाल और चारु बाबू के तरफदारों की ओर से हो रहा था। पं० सुन्दरलाल तो स्वयं कौंसिल में जाना पसन्द न करते थे, केवल मदनमोहन का अनुरोध उन्हें घसीटे लिए जा रहा था। जब धुक्का-फजीहत के इस आन्दोलन ने अखबारों में जोर पकड़ा, तब एक दिन पं० सुन्दरलाल बा० चारुचन्द्र मित्र से मिले और विनीत भाव से कहा, 'बाबूसाहब ! ये जो अखबारों में भद्दे लेख छप रहे हैं, उनमें मेरा कुछ भी हाथ नहीं है। मेरी कौंसिल में जाने की तनिक भी इच्छा नहीं है। यह मालवीय जी वगैरह का हठ है जो मुझको भेजने का प्रयत्न कर रहे हैं और उन्हीं के हठ के कारण मैं कौंसिल के लिए खड़ा हूँ। चारुचन्द्र मित्र भी पंडित जी के शील-स्वभाव से अभिज्ञ थे। उन्होंने जवाब दिया, पंडित जी, क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि आप इस तरह की कार्यवाहियाँ कब पसन्द कर सकते हैं। मगर कौंसिल के चुनाव में ऐसे भद्दे आन्दोलन होते ही रहते हैं।"

अन्त में मदनमोहन का प्रयत्न सफल हुआ और पं० सुन्दरलाल कौंसिल के मेम्बर हो गए। कौंसिल का मेम्बर हो जाना एक साधारण घटना थी, मगर पं० सुन्दरलालजी पर इसका स्थायी असर पड़ा। इस घटना के बाद पं० सुन्दरलाल देश के कामों में हाथ डालने लगे और उनके द्वारा ऐसे अनेक उपयोगी काम हुए हैं जो सदा सर सुन्दरलाल की कीर्ति को अमर बनाये रहेंगे।

सर सुन्दरलाल के कौंसिल-प्रवेश के बहुत पहले से ही उनके भाई रायबहादुर पं० बलदेवरामजी दूबे देश के काम में मदनमोहन की सहायता किया करते थे। कांग्रेस के कामों में चारुचन्द्र के समान वह भी बहुत परिश्रम किया करते थे और हर बात में अगुआ बनकर जोर-शोर से काम करते थे। हिन्दू यूनिवर्सिटी के कार्यों में भी बलदेवरामजी शुरू से ही बड़ी धूमधाम से सहायता और मदद दे रहे थे। हिन्दू यूनिवर्सिटी के काम में सर सुन्दरलाल के घराने से मदनमोहन को प्रशंसनीय सहायता मिलती आ रही थी। सर सुन्दरलाल ने यूनिवर्सिटी को एक लाख रुपया दान दिया और स्वयं प्रथम वाइस्-चान्सलर का पद ग्रहण किया था। इस समय भी उनके भाई जस्टिस पं० कन्हैयालाल जी हिन्दू यूनिवर्सिटी के अनेक काम बड़ी दक्षता से कर रहे हैं। इसका श्रेय मनुष्य की पहचान और उससे काम लेने के सम्बन्ध में मदनमोहन की विलक्षण योग्यता को है।

मदनमोहन और पं० विश्वम्भरनाथ

प्रयाग में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था और उसकी स्वागत-कारिणी सभा के अध्यक्ष चुने गए थे प्रयाग के प्रतिष्ठित रईस पं० विश्वम्भरनाथ जी। वे प्रयाग के धुरन्धर विद्वान और वकील पं० अयोध्यानाथ कुंजरू के सम्बन्धी थे। संयोग ऐसा हुआ कि उनको वातव्याधि हो गई। वे मेरी चिकित्सा में थे और कांग्रेस के अधिवेशन के दिन भी नजदीक थे। उनकी हालत ऐसी न थी कि वे स्वागत कारिणी सभा का काम कर सकें और कांग्रेस-अधिवेशन के अवसर पर ऊँचे मंच पर खड़े होकर स्वागत-भाषण कर सकें। पं० विश्वम्भरनाथजी की इस हालत के कारण प्रयाग के कांग्रेसियों में बड़ी खलबली मची हुई थी। मदनमोहन भी बहुत उद्विग्न थे। एक दिन मदनमोहन घबराये हुए मेरे कोठे पर आये। उनकी आँखों में अश्रुकण झलक रहे थे और वे विह्वल एवं कातर स्वर से पं० विश्वम्भरनाथ जी के विषय में चर्चा कर रहे थे। मैं भी घबड़ा गया। पूछा, 'क्या है?' बोले, 'भाई! बूढ़े ब्राह्मण को जल्दी आरोग्य करो। अगर वे कांग्रेस के मंच पर खड़े होने लायक न रहे तो उनकी मौत तो हुई ही समझो, हम लोगों का सर्वस्व भी नष्ट हो जायेगा।'

मैंने ढाढस देकर कहा, 'भाई, घबराओ मत, घबराने से काम बिगड़ जाता है। पंडितजी के विषय में चिन्ता मत करो। वे अवश्य ही तब तक इस प्रकार आरोग्य हो जायेंगे कि स्वागत-भाषण अच्छी तरह कर सकें।'

वही हुआ भी; पं विश्वम्भरनाथ जी कांग्रेस के सम्बन्ध में अपने कर्तव्य का पालन बहुत अच्छी तरह कर सकने में समर्थ हो गए। पंडित जी कांग्रेस के अधिवेशन में उपस्थित हो सके, मगर उनके स्वास्थ्य की तरफ मित्रों की चिन्ता दूर न हुई। इस विषय में चारु-बाबू अत्यन्त सतर्क थे। उनका ख़याल था कि पंडित जी का स्वास्थ्य बहुत सुकुमार है और ऐसी परिस्थिति में उनके पास वैद्य का रहना जरूरी है। उनको इस प्रबन्ध से विशेष ढाढस और दिलासा का बल भी रहेगा। चारुबाबू ने मुझे कांग्रेस के अधिवेशन में उपस्थित होकर पं विश्वम्भरनाथ जी के पास बैठने के लिए बाध्य किया। चारुबाबू लड़कों की तरह मेरा हाथ पकड़ कर मुझे घसीटते हुए ले गए और स्वागतकारिणी सभा के अध्यक्ष की कुर्सी के पास बिठा दिया। पर साधारण परिस्थिति में वह कुर्सी मेरे लिए न थी, अतएव मदन-मोहन ने मुझे वहाँ से उठाकर दूसरी कुर्सी पर बैठा दिया। जब चारुबाबू ने मुझे दूर बैठा देखा, तब लपक कर मेरा हाथ पकड़ते और घसीटते हुए फिर ले जाकर मुझे वहीं बैठा दिया। मैं अजीब परिस्थिति में था। मैं उनसे कहता कि मुझे दूर ही बैठने दीजिये, मदनमोहन को मेरा यहाँ बैठना पसन्द नहीं है। मगर वह क्यों मानने लगे ! वह मदन-मोहन को बुरा-भला कहकर फिर मुझे ले जाकर विश्वम्भरनाथ जी के पास बैठा आते व पं० विश्वम्भरनाथ मेरे साथ बड़े सत्कार के साथ पेश आते थे। दूसरे दिन मदनमोहन और चारुबाबू ने परामर्श करके मेरे बैठने के स्थान का परिवर्तन कर दिया और पंडितजी के पास ही मेरे बैठने का प्रबन्ध कर दिया।

कांग्रेस की बैठक के दो-तीन दिन पहले ही पं० विश्वम्भरनाथ ने मदनमोहन को

अपना लिखित स्वागत-भाषण देकर कहा, 'मालवीय जी, इसको आप एक बार पढ़ लीजिये, लेकिन मेहरबानी करके इस पर क़लम न चलाइयेगा।'

मदनमोहन ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया, 'महाराज, भला मेरी यह सामर्थ्य कहाँ कि मैं आपके लेख पर क़लम चला सकूं।'

बड़ों से प्रति सर्वदा इस प्रकार विनीत भाव रखना ही मदनमोहन के बड़प्पन का प्रधान गुण है।

हिन्दू-समाज की बैठक

मदनमोहन के गुरु महामहोपाध्याय पं० आदित्यराम भट्टाचार्य स्थानीय म्योर सेण्ट्रल कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे। उन्होंने प्रयाग में हिन्दू-समाज की स्थापना की थी। उसकी बैठक हर सप्ताह मुंशी काशीप्रसाद जी के मकान पर हुआ करती थी। मदनमोहन समाज के प्रमुख सदस्यों में से थे। उन दिनों समाज-सेवा के कामों में मदनमोहन का प्रवेश नया ही था। मैं भी समाज की बैठक में जाया करता था। मुझे खूब स्मरण है कि अड़चन में डालने वाली समाज-सम्बन्धी लिखा-पढ़ी करने से जब लोग मुख मोड़ लेते थे, तब मदनमोहन कह बैठते थे, 'इस काम को आप लोग मुझे सौंप दीजिये; मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा, करूँगा।' तब सब लोग एक स्वर से कह उठते, 'ठीक है, ठीक है, बहुत ठीक है, मालवीय जी इस काम को बहुत अच्छी तरह कर सकेंगे।' मदनमोहन इस प्रकार जिस काम को अपने हाथों में लेते थे, उसे पूरा करके छोड़ते थे। सभा-कमेटियों में इनके भाषण करने की योग्यता विशेष थी और इनके बोलने के तर्ज़ को सभी पसन्द करते थे। परन्तु सबको इनकी विलक्षण शक्तियों का ज्ञान न था। इनके नये होने और कम-उम्र होने के कारण कुछ लोगों को इनका बड़े कामों में हाथ डालना अच्छा भी न लगता था। मोरो गणेश (मोरोपंत) उन दिनों हिन्दू-समाज के सेक्रेटरी थे। कई बार उनकी बातों से मुझे यह विदित हुआ कि वे मदनमोहन के वादविवाद को लड़कपन से भरा हुआ, अवस्था कम होने के कारण शोभाहीन, एवं छोटे मुंह बड़ी बात समझते थे। उस समय किसी को क्या मालूम था, मदनमोहन के उस बचपन के शरीर में कैसी विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न आत्मा छिपी थी।

मदनमोहन और रा० ब० लाला रामचरनदास

मदनमोहन में बचपन से ही एक जबर्दस्त हठ यह थी कि जिस बात को वे उचित और सच समझते थे, उससे उनको कभी कोई डिगा नहीं सकता था। इस सम्बन्ध में वे बड़ों की झिड़कियों की भी परवाह न करके अपने मत पर क़ायम रहते थे। एक बार रायबहादुर लाला रामचरनदास जी और इनमें बहुत कड़ाई के साथ जवाब-सवाल हो गया। रायबहादुर साहब को क्रोध आ गया था और उन्होंने मदनमोहन को फटकार कर कहा, 'तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो!' मदनमोहन का उत्तर बहुत सादा था। उन्होंने कहा, 'मैं खूब जानता हूँ, कि आप बहुत बड़े आदमी हैं और मैं छोटा हूँ; मगर मेरी बात सही है और इस क़ाबिल नहीं है कि वह काटी जाय।'

मदनमोहन की यही दृढ़ता बनी रही, मगर रायबहादुर साहब में परिवर्तन हो गया। बाद को वे ही रायबहादुर साहब मदनमोहन को लड़कों की तरह प्यार करने लगे थे और मदनमोहन जिस काम के लिए भी उनको पकड़ लेते थे, वह रायबहादुर को करना ही पड़ता था। प्रयाग में जितनी सभा, कमेटी और कांग्रेस वग़ैरा होती थीं, उसमें रायबहादुर साहब का ही इन्तज़ाम रहता था। कभी-कभी मदनमोहन रायबहादुर साहब से इतना अधिक काम लेते थे कि वे झुंझला जाते थे और कहते थे कि 'भाई' मालवीय तो मुझको बहुत तंग करते हैं। हिन्दू-युनिवर्सिटी की स्थापना के सम्बन्ध में मदनमोहन ने रायबहादुर लाला रामचरनदास से एक लाख रुपया लिया था। इस दान की कथा कम रोचक नहीं है।

हिन्दू-यूनिवर्सिटी की स्थापना के सम्बन्ध में बनारस में एक महोत्सव किया गया, जिसमें सारे भारत के राजे-महाराजे आये थे। इस उत्सव में मैं भी आमन्त्रित था। बनारस जाने के एक सप्ताह पहले रायबहादुर साहब ने मुझसे कहा कि आप बनारस मेरे साथ चलिये और एक सप्ताह के पहले चलिये। रायबहादुर साहब का स्वास्थ्य ठीक न था, इस कारण उनकी आज्ञा को मान लेना ही मुझे उचित मालूम हुआ और मैं एक सप्ताह पहले ही उनके साथ बनारस के लिए रवाना हो गया। मदनमोहन से जब मुलाक़ात हुई तब उन्होंने कहा कि "रायबहादुर साहब ने केवल पचहत्तर हज़ार रुपये ही चन्दा लिखा है।" मैंने कहा, "मैं कोशिश करूँगा जिससे वे एक लाख पूरा कर दें।" महोत्सव के दो दिन पहले रायबहादुर साहब शाम को मेरे कमरे पर आकर मेरे पास बैठ गए। मुझसे बोले, "लोग मुझे एक लाख पूरा करने को कहते हैं।" तब मैं हँसा, कहा, "आपने बड़ी ग़लती की जो ७५ हजार रुपये ही लिखा। कोई जब दान देता है तब एक रुपया देता है, दो देता है, चार देता है, पाँच देता है; मगर तीन कोई नहीं देता। आपने तीन पचीस हज़ार दान देना लिखा है जिससे साफ़ ही मालूम पड़ता है कि आप चाहते हैं कि लोग आपसे कहें कि आप एक लाख पूरा कर दीजिये। वह तो आपको अब देना ही पड़ेगा।"

रायबहादुर साहब ने कहा "क्या कहें जी, हम एक छोटे-से रोज़गारी हैं।"

मैंने कहा, "ये सब व्यर्थ की बातें हैं; आप बहुत जल्द एक लाख रुपया पूरा कर दीजिये।"

रायबहादुर साहब उठकर अपने कमरे में चले गए। दूसरे दिन सबेरा होते ही उन्होंने मुझे ज़ोर से पुकारा और कहा, "जल्दी तैयार हो जाओ, मालवीय जी के यहाँ चलना है।"

मैं झटपट स्नान और सन्ध्या-वन्दन करके तैयार हो गया। रायबहादुर ने फिर पुकारा, कहा, जल्दी चलो।"

मैं चटपट उनके साथ हो लिया और मदनमोहन के निवास-स्थान पर पहुँचा।

वहाँ मालूम हुआ कि मदनमोहन की तबीयत अच्छी नहीं है और उनसे मिलने के लिए आये हुए अनेक राजे-महाराजे कोरे लौटाये जा रहे हैं। हम लोगों को भी यही जवाब मिला कि मालवीय जी आज किसी से न मिलेंगे। जब हम लोग लौटने लगे तब चि० मुकुन्द मालवीय ने कहा, "आप ज़रा ठहरिये, बाबूजी से आप के आने का समाचार तो कह दें।"

थोड़ी देर बाद ही मुकुन्द जी ने लौटकर कहा, "चलिये, आपको बुलाते हैं।" अन्दर जाकर देखा, बहुत-सा गरम कपड़ा पहने मदनमोहन बैठे थे। मैंने इशारे से बताया कि अब लाख पूरा ही हुआ चाहता है। मदनमोहन ने कहा, "हाँ, मालूम तो पड़ता है।"

इसके उपरान्त एक ही मिनट की बातचीत में रायबहादुर साहब ने ७५ हजार के स्थान पर एक लाख रुपये देने का वचन दे दिया। अब एक नयी अड़चन उपस्थित हुई। लाख रुपया देने वाले राजा-रईसों की नामावली वाइसराय महोदय स्वयं महोत्सव में पढ़कर सुनाने वाले थे और लिस्ट छपकर तैयार हो चुकी थी। मदनमोहन के सामने यह प्रश्न उपस्थित था कि रायबहादुर साहब ने एक लाख रुपया भी दिया, और लाख रुपया देने वाले लोगों की नामावली में उनका नाम भी न आ सका। वाइसराय महोदय उनका नाम किस प्रकार घोषित करेंगे? मदनमोहन ने फ़ौरन अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को बुलाया और डेढ़ लाइन की एक इबारत लिखा कर आज्ञा दी कि "तार द्वारा फौरन यह ख़बर हिन्दुस्थान के समस्त अखबारों में भेज दी जाय!" ऐसा ही किया गया और थोड़े ही समय में रायबहादुर साहब का नाम देश के कोने-कोने में गूँजने लगा।

जर्मन प्रोफेसर डा० ग्रुसेन और मदनमोहन

बहुत दिन हुए, एक बार प्रयाग में जर्मनी-निवासी, संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् वेदान्त-शास्त्र, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों के धुरन्धर ज्ञाता एवं शांकर वेदान्त के मानने वाले प्रोफेसर ग्रुसेन उर्फ देवसन (डयूसन) पधारे। वह एक होटल में ठहरे हुए थे। संस्कृत में बहुत उत्तम भाषण करते थे। उनसे मिलने के लिए पं० लक्ष्मीनारायणजी व्यास, पं० श्रीकृष्ण जोशी, पं० सरयूप्रसादजी, मैं तथा और भी कुछ प्रतिष्ठित लोग उनके निवास स्थान पर गए थे और घण्टों बातचीत के उपरान्त यह तय हुआ कि कायस्थ-पाठशाला के मैदान में वेदान्त पर प्रोफेसर ग्रुसेन का भाषण हो। नोटिस बाँटे गए और प्रोफेसर साहब का भाषण संस्कृत में बड़ी धूम-धाम से हुआ। यूरोपियन होते हुए भी वे पंडितों की तरह बैठकर भाषण करते थे। व्याख्यान समाप्त होने पर आर्यसमाजियों ने शंकर के वेदान्त का खण्डन और स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के वेदान्त का मण्डन करने के निमित्त पं० भीमसेनजी को खड़ा किया। पं० भीमसेन ने अपने भाषण में यथाशक्ति खूब खण्डन-मण्डन भी किया। मदनमोहन को यह कार्यवाही अच्छी न मालूम हुई। उनको यह बात खटकने लगी कि यहाँ विदेश से एक ऐसा व्यक्ति आकर उपस्थित है जो हमारे गुणों को परखता है और उन्हें ग्रहण करना चाहता है और हम खण्डन-मण्डन के फेर में पड़कर उसके सामने बहुत भद्दा उदाहरण पेश कर रहे हैं। पं० भीमसेन का प्रतिवाद करने के लिए मदनमोहन ने बैठे-बैठे एक कागज पर संस्कृत में कुछ लिखा और मुझे सुनाने लगे। पं० सुन्दरलालजी भी पास ही बैठे थे। यह लेख सुनकर वह मुस्कराते जाते थे। यह दृश्य मेरे हृदय पर एक चित्र की तरह अङ्कित है। मैं सामने बैठे हुए पं० सुन्दरलालजी का वह मुस्कराना स्पष्ट देख रहा हूँ।

पं० भीमसेन के व्याख्यान के उपरान्त मदनमोहन का व्याख्यान हुआ। उनका व्याख्यान बहुत ही सुन्दर और मार्के का था। उन्होंने अपने भाषण में इस बात पर अफ़सोस

जाहिर किया और कहा कि "कहाँ जर्मन देश और कहाँ भारतवर्ष! इतनी दूर से एक प्रसिद्ध विद्वान् यहाँ आकर हमारे प्राचीन और महत्वपूर्ण वेदान्त शास्त्रों पर व्याख्यान दे और हम लोग उसका खण्डन करने के लिए खड़े हों। बहुत ही दुःख और लज्जा की बात है। मुझे इस कार्यवाही के ऊपर परम दुःख है।" सभा समाप्त होने पर प्रो० महोदय जब चलने को हुए तो डा० अविनाशचन्द्र बनर्जी ने तीन बार जोर-जोर से "डा० ग्रुसेन हिप-हिप हुर्रे" कहा और उनकी आवाज से मैदान गूँज उठा।

मदनमोहन जिस प्रकार अंग्रेजी के विद्वान् हैं, वैसे ही संस्कृत-साहित्य के भी धुरन्धर पण्डित हैं। वे वेद, गीता रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत का बहुत दिनों से अब तक नित्य पाठ करते हैं।

पंजाब कांग्रेस में जब वे सभापति निर्वाचित हुए थे, तब उन्होंने अपना भाषण न लिखा, न छपवाया था। अपने अंग्रेजी के भाषण को उन्होंने गीता, भागवत, महाभारत और मनुस्मृति आदि के श्लोकों से अलंकृत किया था। अखबारों में उस भाषण को पढ़कर मदनमोहन के परम गुरु महामहोपाध्याय पं० आदित्यराम भट्टाचार्य बहुत प्रसन्न हुए थे और उन्होंने कहा था, "क्यों न हो, मालवीय व्यास का बेटा है न! वह शास्त्रीय प्रभाव कहाँ जा सकता है!"

तपस्वी मदनमोहन

मदनमोहन ब्राह्मण-बालक तो हैं ही, साथ ही तपस्विता भी इनमें कम नहीं है। मालूम पड़ता है कि अहिंसा और स्वाध्याय आदि धर्म इनका बहुत बढ़ा-चढ़ा है। मैंने कई अवसरों पर इस बात का अनुभव किया, मगर "घर की मूली साग-बराबर" वाली कहावत के अनुसार मदनमोहन की इस विशेषता की ओर मेरा ध्यान विशेष रूप से कभी आकर्षित नहीं हुआ। फिर भी कभी-कभी अवसर पड़ने पर अन्तरात्मा में कुछ भाव उठते हैं। मदनमोहन गाढ़े अवसरों पर काम आ जाते हैं।

इन्फ्लुएंजा के अवसर पर मेरे भतीजे चि० काशीप्रसाद को निमोनियासम्बन्धी बुखार था और एकदम बेहोशी का दौरा हो गया। गोदान वग़ैरह भी करा दिया गया। उस समय मेरी अवस्था पागलों जैसी थी। मैंने आदमी भेजकर मदनमोहन को बुलवाया। कह दिया कि जहाँ मिलें उनको फ़ौरन ले कर आओ, इसके बाद में चिकित्सकों के पास दौड़ा। डा० सुरेश को लेकर आया, मदनमोहन आ गए थे। उन्होंने मुझे सान्त्वना देते हुए कहा, "घबराने की बात नहीं है। काशी अच्छा है।" मैंने जब जाकर देखा तो विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने डा० अनन्तप्रसाद की बतायी हुई मुँह के भीतर बफारा देने की दवा शुरू कर दी थी। डा० सुरेश ने भी उस बफारे को, जिसमें कुछ दवा का भी योग था, पसन्द किया और कहा कि इस दवा से काशी अच्छे हो जायेंगे।

इस अवसर पर मुझे यही विश्वास हो रहा था कि दवा वग़ैरह एक तरफ, अगर मदनमोहन मेरे घर आ जायें तो काशी सुखी हो जाय। मदनमोहन कोई वैद्य न थे; मगर मेरे मन में जो बातें उठी थीं, वे पूरी उतरीं।

इसी प्रकार की एक दूसरी घटना पहले घट चुकी थी। उस समय मालवीय जी के मँझले भाई पं० जयकृष्ण की हालत संग्रहणी के रोग से बहुत बिगड़ी थी। बड़े-बड़े वैद्य-डाक्टरों ने जबाब दे दिया था। इस समय मदनमोहन हमारे पास दौड़े आये और बड़े ज़ोर से मुझसे कहा, "मैंने सुना है कि भैया को आपने भी जबाब दे दिया है। बड़ी भूल की बात की है। उठो, चलो हमारे साथ, और उनकी दवा आरम्भ करो। वे बिल्कुल अच्छे हो जायेंगे! मुझे ऐसा मालूम पड़ा, मानो भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हों, "उत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः।" अब किस हिम्मत से कह देता कि उनके बचने की कोई उम्मीद नहीं। इसलिए सीधे चुपचाप मदनमोहन के साथ हो लिया। मेरी भी साहस और आत्मबल बढ़ गया था और हिम्मत पड़ी कि दवा दे दूँ। मैंने दवा करना आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे मदनमोहन के आत्मबल ने सहायता की, और पं० जयकृष्ण जी आरोग्योन्मुख होने लगे। धीरे-धीरे जहाँ उनको छटाँक-आध पाव दूध हज़म होना कठिन था, वहाँ उनको १२-१४ सेर तक दूध हज़म होने लगा। इस बीच में उन्हें ऐसा बल हुआ कि वे अखाड़े में गए और एक पहलवान को पछाड़ा। इस घटना की ख़बर दो दिन तक न दी गई, क्योंकि कमर में हूक हो गई थी।

उसी समय चि० कृष्णकान्त जी मालवीय पं० जयगोविन्द के कोठे पर से पत्थर के ऊपर गिरे। बड़ी गहरी चोट आयी थी। उस अवसर पर उनकी जान पर बन गई थी। मगर मालवीय जी और उनके कुटुम्ब के पुण्य प्रभाव से वे शीघ्र अच्छे हो गए। कृष्ण के पिता पं० जयकृष्ण जी को इस घटना की कोई ख़बर न दी गई। वे बीमार तो थे ही, इस समाचार को पाकर उनके विशेष घबरा जाने की आशंका थी।

एक दिन ऐसा हुआ कि मदनमोहन मेरे यहाँ आये। वे बहुत दुर्बल मालूम पड़ रहे थे। उनके चेहरे का रंग भी मुझे अच्छा मालूम न पड़ता था। यह मालूम पड़ा कि वे बाहर जाने वाले हैं। उनके स्वास्थ्य की ओर से मैं चिंतित था। मुझको खटका तो था ही, गाड़ी के समय मदनमोहन से मिलने के लिए स्टेशन पर जा पहुँचा। गाड़ी के पास बहुतदेर तक खड़ा रहा। बहुत-से आदमियों के साथ जब वे आये तो मुस्कराकर हाथ उठाया और प्रश्न किया कि तुम कैसे आये? मैं चकित था। मैंने साहस करके पूछा, "कौन-सी जादू की पुड़िया तुमने चाट ली, या कौन-सा अभ्यास तुमने कर लिया कि जिससे तुम एक दम हट्टे-कट्टे और प्रफुल्ल-वदन हो गए हो?"

उन्होंने हँसकर कहा, "हाँ, कुछ कर लिया।"

इससे मुझे यह मालूम पड़ा कि उनके कुछ ऐसे अभ्यास हैं जिनको करके ये ताज़ा और चंगे हो जाते हैं। मैंने इनमें आत्मबल, प्रसादगुण, भगवद्भक्ति एवं भगवत्-परायणता बहुत पायी है।

मन्त्र-दीक्षा

एक दिन मेरे पुत्र चि० कृष्णानन्द पाण्डेय को देखने के लिए मदनमोहन घर पर आये थे। उन दिनों उनको नयी धुन सवार थी। उन्होंने लोगों को दीक्षा देने का काम शुरू किया था। मैंने पूछा, "मदनमोहन, तुमने काशी और कलकत्ते में सब जातियों को

दीक्षा देना शुरू कर दिया है। तुम स्वामी दयानन्द जी महाराज से भी एक क़दम आगे बढ़ना चाहते हो?"

मदनमोहन ने हँसकर कहा "हाँ जी, मन में जम गया और मन्त्र का काम कर डाला।"

मैंने फिर कहा, "मगर तुम्हारा मन्त्र क्या है? मुझसे तो तुमने कभी उसका ज़िक्र तक नहीं किया।"

तब उन्होंने 'ॐ० नमोनारायण' 'ॐ० नमः शिवाय' आदि मन्त्रों के विषय में संक्षेप में, किन्तु महत्वपूर्ण बात की ओर चले गए।

समस्त मनुष्य-समाज को एकदम ऊँचा उठाने की चिन्ता की प्रेरणा से ही मदनमोहन ने दीक्षा देने का काम उठाया था। समाज में धार्मिक भावों की रक्षा, वृद्धि एवं प्रचार के उद्देश्य से ही मदनमोहन ने विगत कुम्भ के अवसर पर धर्म-सम्बन्धी अनेक पुस्तकें हिन्दी-संस्कृत में छपवा कर मुफ्त वितरण करायी थीं।

मदनमोहन का सब जातियों को प्रणवसहित मन्त्रों को जपने के लिए उत्साहित करना पण्डितों को अच्छा नहीं लगा। भारत के कुछ प्रमुख पंडितों ने उनके इस दीक्षा-कार्य का घोर विरोध किया। मगर मदनमोहन को देश का कल्याण इसी में जान पड़ा कि सब जातियाँ मन्त्रों का जप करें। अछूतोद्धार का यह सहज नुसखा पाकर उससे वे लाभ न उठावें, यह मदनमोहन की क्षमता से बाहर था। फिर भले ही सारा संसार उसका विरोध क्यों न करे। महापुरुष जब एक निश्चय कर लेते हैं, तब विरोधों का सामना करते हुए भी वे अपने निश्चय के अनुसार चलते हैं।

कौटुम्बिक

मदनमोहन के कुटुम्ब से मेरा घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। परमात्मा की कृपा से इनकी सन्तान एक-से-एक प्रतिभा-सम्पन्न, योग्य और विद्वान् हैं। मालवीय-कुटुम्ब के पुण्य से मदनमोहन को गृहस्थ-धर्म का पालन करने वाली, सहनशीला, दुःख में भी सुख मानने वाली धर्मपत्नी मिली थी। मदनमोहन की माता (अम्मा) ने मुझसे इस महिला का बखान जिस प्रकार किया था, वह मुझे ख़ूब स्मरण है। सचमुच जिस कुटुम्ब में मदनमोहन की स्त्री जैसी महिलाएँ रहती हैं, वही परमात्मा का निवास-स्थान बन जाता है।

वसुन्धरैव गृहिणी यत्र सर्वसहा गृहे।
सुखे दुःखे निर्विकारा तत्रैव रमते हरिः॥

—शिवराम पाण्डेय

सातवाँ अध्याय

मालवीय जी के जीवन का मूल्यांकन

मालवीय जी की जीवनी के तीसरे खंड में हमने सात अध्यायों में ऐसे लोगों के बयान दिये हैं, जिन्हें मालवीय जी से परिचय का सौभाग्य प्राप्त था और जो निजी जानकारी के आधार पर उनके विषय में कुछ कहने के हक़दार हैं। पहले हमने स्वामी श्रद्धानन्द और भारत के वर्तमान प्रधान मन्त्री के दो भाषणों को दिया है। पं शिवराम पाण्डेय की मालवीय जी के विषय में जानकारी उस समय से शुरू होती है, जिस समय मालवीय जी के विवाह में वह सम्मिलित हुए थे। मालवीय जी के दो निजी सचिवों के—श्री मुन्नीलाल मेहरा और श्री शिवधनी सिंह के—लेखों को भी हमने दिया है। दोनों ही पते की बातें कहते हैं। श्री शिवप्रसाद गुप्त और उनके भतीजे श्री ज्योतिभूषण गुप्त जी, के वक्तव्यों को भी पढ़ने की कृपा पाठक करें। श्री घनश्यामदास बिड़ला के बड़े भाई, श्री जुगुल किशोर बिड़ला के लेख, को हमें ध्यान से पढ़ना चाहिए। अंत तक मालवीय जी हिन्दू-हितों की रक्षा करने में संलग्न रहे।

मालवीय जी की आस्तिकता

मालवीय जी जन्म ही से आस्तिक थे और मृत्यु-पर्यन्त वह आस्तिक ही रहे। साकार ब्रह्म की उपासना वह करते थे और अवतारों में उनका विश्वास था। अन्त समय तक उनके ये विचार नहीं बदले। मालवीय जी बचपन में हनुमान जी के दर्शनों के लिए जाया और वहाँ निम्न श्लोक पढ़ा करते थे—

'मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्री रामदूतं शिरसा नमामि।'

बचपन में उनका गायत्री-मंत्र का जाप करना प्रसिद्ध है, और घरवालों को यह शंका हुई कि बालक कहीं संन्यासी न हो जाए। इसलिये वे इनकी निगरानी करने लगे। उन्हें पनाह मिली तब, जब मालवीय जी ने गायत्री-मन्त्र का जाप करना छोड़ दिया। बड़े होने पर उनमें कोई परिवर्तन न हुआ। हमने लिखा है कि भीगी चादर लपेट कर अपने कुल-देवता-राधाकृष्ण की मूर्ति के सामने वह भक्ति और श्रद्धा से प्रणाम करते थे, चाहे रेल भी छूट जाए।

इन बातों से यह स्पष्ट है कि मालवीय जी की निष्ठा साकार ब्रह्म में थी, और वह अवतारवादी भी थे। सन् १९०७ ई० में उन्होंने कृष्णाष्टमी के अवसर पर हिन्दू बोर्डिंग हाउस में जो व्याख्यान दिया, उसमें उन्होंने भरी सभा में यह कहा कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र कालिया साँप के ऊपर ताथेई करके नाचे थे, यद्यपि उस सभा के सभापति, डा० गंगानाथ झा, ने यह कहा था कि महाभारत के श्री कृष्णचन्द्र ही को वह सत्य मानते हैं, न कि भागवत पुराण में वर्णित श्री कृष्णचन्द्र को।

उनमें कुछ परिवर्तन के चिह्न बाद में दिखायी दिये, लेकिन वह क्षणिक थे। मालवीय जी स्वामी हरिदास के संप्रदाय के अनुयायी थे और अंत तक उन महात्मा की वाणी और उपदेशों में उनका विश्वास था। इस संप्रदाय-विशेष के माननेवालों को संगीत में विशेष रुचि होती है। इसलिए हमें अचरज न होना चाहिए कि मालवीय जी में ऊँचे दर्जे की संगीतज्ञता थी।

मालवीय जी की आस्तिकता पैतृक देन थी। विरासत में यह उन्होंने अपने पिता और पितामह से पायी थी। उनके पिता भी स्वामी हरिदास के संप्रदाय के एक व्यक्ति थे और उन्हें भी संगीत का अभ्यास था। ऐसे कुल में उत्पन्न होकर मालवीय जी का आस्तिक और संगीतज्ञ होना स्वाभाविक था। निराकार ब्रह्म की उपासना उन्होंने कभी नहीं की। बहुत से लोग बड़े होने पर मूर्ति पूजन के विरुद्ध दिखायी देते हैं, लेकिन मालवीय जी में श्रीमद्भागवत के पाँच अध्यायों, जिनमें रास-पंचाध्यायी का वर्णन है, को छोड़ कर, और कोई परिवर्तन नज़र नहीं आया।

मालवीय जी का आत्म-विश्वास और साहस

मालवीय जी की आस्तिकता और उनका आत्म-विश्वास—अपने में विश्वास—उनके जीवन के रहस्य को समझने के लिए कुंजियाँ हैं। जो इन दोनों कुंजियों को हाथ में लेकर उनके जीवन के ताले को खोलेगा, उसे अमृत-निधि मिलेगी, जिसे पीकर वह छक जाएगा। जो इन दो कुंजियों को नहीं पाते, उनका मालवीय जी के विषय में ज्ञान अधूरा रह जाएगा।

ईश्वर में उनकी आस्तिकता के विषय में हमें कुछ अधिक नहीं कहना है। उनकी स्व-रचित 'ईश्वर' नाम की छोटी-सी पुस्तिका इस बात का सबसे प्रबल प्रमाण है। लंदन (इंग्लैण्ड) में जब वह सन् १९३१ में गोलमेज कोन्फ्रेंस के सिलसिले में गये थे, तब एक कंपनी ने उनके मौखिक भाषण का—वह कैसे बोलते हैं, इसका—रिकार्ड किया था। उस समय भी मालवीय जी ने 'ईश्वर की महिमा' पर जो भाषण किया, वह आज भी उपलब्ध है। उस रिकार्ड को सुनने से हमें यह बोध हो जाएगा कि मालवीय जी कि वाणी में कितनी मिठास और अन्य गुण थे, जिनके कारण अपने समय के अद्वितीय वाग्मी वह प्रसिद्ध हुए।

रह गयी उनके आत्म-विश्वास की बात। यह उनका नैसर्गिक गुण था। बचपन ही से उनकी यह प्रकृति थी कि वह किसी के सामने हार मानना अपनी शान के विरुद्ध समझते थे। यही बात उनकी इस ज़िद में दिखायी देती है, जिसके कारण उन्होंने भारत के वायसराय की लेजिस्लेटिव कौंसिल में इंग्लैण्ड को लड़ाई के समय में दस करोड़ पौंड़ों का ऋण देने का विरोध किया था। यह सन् १९१७ की बात है। उस समय प्रथम महायुद्ध चल रहा था और यद्यपि मालवीय जी को इस बात का पता लग गया था कि कौंसिल का दूसरा कोई भी सदस्य उनका साथ न देगा, लेकिन उन्होंने यह प्रस्ताव कौंसिल के सामने रखा और फिर वापस ले लिया। जब सन् १९१८ में चार करोड़ पचास लाख के अतिरिक्त ऋण को इंग्लैण्ड को देने की बात आयी तब मालवीय जी ने फिर उसका विरोध किया। यही बात पंजाब की सरकारी नीति के विषय में भी थी।

पंजाब सरकार का यह दावा था कि उसके अधीनस्थ कर्मचारियों ने पंजाब के उपद्रवों को दबाने के संबंध में जो कुछ कार्यवाही की, वह ठीक थी। इसके विपरीत मालवीय जी का मत यह था कि मार्शल-ला के समय में इन अधिकारियों ने जो कुछ जनता के साथ किया, वह अवैध और ग़ैर-क़ानूनी अत्याचार था। ऐसे ही और भी उदाहरण उनके जीवन में आये, जब उन्होंने दूसरे के सामने हार मानने से इन्कार किया। उदाहरण के लिए, जब 'काम्यूनल अवार्ड' के विषय में कांग्रेस ने कुछ कहने से इन्कार किया और अपने मत को उस तरह से स्पष्ट न किया, जैसा मालवीय जी चाहते थे, तब उन्होंने केन्द्र की एसेम्बली में लाला लाजपत राय के सहयोग से एक भिन्न पार्टी बनायी। इसी तरह जब सन् १९३४ में डा० अंसारी के सभापतित्व में महात्मा जी के सुझाव पर एक कमेटी नियुक्त हुई जिसको यह काम सुपुर्द किया गया था कि वह "काम्यूनल अवार्ड" पर अपनी सम्मति दे। उस कमेटी में मालवीय जी की हार हुई। इसी के कारण श्री अणे के साथ मालवीय जी ने कांग्रेस के अखिल भारतवर्षीय पार्लियामेन्टरी बोर्ड से इस्तीफ़ा दे दिया था और सन् १९३४ के अंत में या १९३५ के आरंभ में एक बृहत् सभा का कलकत्ते में उन्होंने आयोजन किया। उसके सभापति उदार दल के सुप्रसिद्ध नेता, श्री सी० वाई० चिंतामणि, थे और उन्होंने अध्यक्ष पद से "काम्यूनल अवार्ड" की खूब धज्जियाँ उड़ायीं।

अल-काफ़िर ने लिखा है "वह इस अद्भुत कार्य में अपने प्रतिद्वन्दी को थका देने वाले कुश्तीबाज की प्रसन्नता के साथ शामिल होते थे। वह वास्तव में राजनयिक या "डिप्लोमेट" थे। उनके दयालु चेहरे पर गणनात्मक व्यूहीकरण का एक चिह्न है; तराजू के दोनों पलड़ों के "बैलेन्स" करने वाले मन की एक रेखा है। सामान्यतः उनके कार्यों के पीछे, एक अत्यन्त दूरदर्शी मन की सदा युद्ध क्षेत्र का निरीक्षण करने और विभिन्न शक्तियों की तुलना करते रहने वाले मन की गणना होती है। राजनीतिक मसलों पर वह किसी प्रश्न के दोनों पहलुओं को इतनी स्पष्टता के साथ देखते हैं कि किसी पक्ष में शामिल होना वह पसन्द नहीं करते हैं·····। उनको लिबरलों की गम्भीर चिंतन शक्ति भी पसन्द थी। क्रान्तिकारियों का ज्वलंत बलिदान भी उन्हें पसन्द थी। स्वराजियों की असाधारण संगठन शक्ति को देखकर वह प्रसन्न होते थे और रेस्पान्सिव कोआपरेशन दलवालों की नीति भी एक प्रकार से उन्हें ठीक लगती थी। वह कांग्रेसी थे और अंत तक कांग्रेसी रहे। पर बंध आंदोलन को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। इस तरह पूरे रूप से कांग्रेसवादी वह कभी नहीं रहे। वह उदार थे, लेकिन उदार दल के वह कभी सदस्य नहीं हुए। पार्टी के बंधनों में बंध कर रहना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इससे जहाँ उनमें एक लेखक का कहना है मानवता के कई श्रेष्ठ गुणों की रक्षा हुई, वहाँ उनके संगठित प्रयत्नों और दृढ़ नेतृत्व से होनेवाले लाभों से समाज और देश वंचित ही रहा।

ऐसा कभी नहीं हुआ कि वह निर्णय करते ही न हों। कई बार उन्होंने बड़े निश्चय के साथ अपना मत प्रकट किया। सन् १९१७ और सन् १९१८ में उन्होंने इंग्लैण्ड को ऋण देने के विरुद्ध जो अपना मत प्रकट किया, उससे उनके मत की दृढ़ता की विशेषता प्रकट होती है। हमें मालूम है कि उनके घर पर जाकर सम्मानित मित्रों

ने उनसे अनुरोध किया कि उस ऋण का विरोध वह न करें। कौंसिल का कोई सदस्य भी उनका साथ न देगा। पर मालवीय जी का संकल्प था कि वह उस ऋण का विरोध करेंगे, चाहे कोई उनका साथ दे या न दे।

धार्मिकता और सांप्रदायिकता में भेद

मालवीय जी यह कभी मानने को तैयार नहीं थे कि धार्मिकता और सांप्रदायिकता में भेद नहीं है। यही बात उन्होंने उस समय कही, जिस समय सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल के दो सदस्यों ने यह आपत्ति की थी कि हिंदू यूनिवर्सिटी और अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी दोनों ही सांप्रदायिक होंगे और इनसे पढ़कर जो विद्यार्थी निकलेंगे, उनमें सांप्रदायिकता का पुट अधिक होगा। मालवीय जी ने उस समय कहा था कि ऐसा आरोप बेबुनियाद है। उन्होंने जवाब में कहा कि इन दोनों विश्व-विद्यालयों के विद्यार्थी ज्यों-ज्यों अपने धर्मों को ठीक समझने लगेंगे, त्यों-त्यों वे अपने देश की रक्षा और सेवा में अधिकाधिक प्रयत्न शील होंगे। उन पर सांप्रदायिकता का लांछन लगाना गलत है।

यही बात उन्होंने श्री इश्तियाक़ हुसेन से कही थी, जिस समय मुस्लिम विद्यार्थियों के साथ वह उप-कुलपति, मालवीय जी, से मिले थे। श्री हुसेन साहब अपने लेख में लिखते हैं 'मालवीय जी कट्टर धार्मिक महापुरुष थे। धार्मिकता और सांप्रदायिकता एक चीज नहीं है। सच्चा धार्मिक व्यक्ति सांप्रदायिक हो ही नहीं सकता। वह ईमानदार जो होता है'!

यही बात उन्होंने मौलाना शाहिब फ़ाकरी एम० एल० सी० से कही थी। एक समय मौलाना साहब रेल पर मालवीय जी के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में शाम हो गयी। मालवीय जी उठे और एक गिलास में पानी लेकर संध्या करने बैठ गये। मौलाना साहब के नमाज का वक्त भी हो रहा था, पर संकोच-वश वह अपनी सीट ही पर बैठे रहे। इस पर मालवीय जी ने इशारे से उन्हें अपने पास बुला कर कहा—'तुम कैसे मौलाना हो जी? नमाज क्यों नहीं पढ़ते? शाम की नमाज कजा करोगे क्या? उठो नमाज पढ़ो, वक्त हो गया'। नमाज पढ़ने के बाद मौलाना को अपने पास बुलाकर मालवीय जी ने उनकी पीठ ठोकी और कहा—'मैं कब यह कहता हूँ कि मुसलमान अपने मजहब का पालन न करें। इसके विपरीत हिन्दू और मुसलमान दोनों ही से मैं कहता हूँ कि अपने-अपने मजहब पर (सब) दृढ़ रहो। तभी सबकी दोस्ती सच्ची और पक्की होगी। मेरी मुख़ालिफ़त तो छूरी-काँटेवाली दोस्ती से है। वह कभी चलेगी नहीं।

मालवीय जी ने अपने "अभ्युदय" में एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने कहा था कि "यह देश केवल हिन्दुओं का नहीं है। हिन्दुस्तान जैसे हिन्दुओं का प्यारा जन्म-स्थान है, वैसा ही मुसलमानों का भी है। ये दोनों जातियाँ अब यहाँ बसती हैं और सदा बसी रहेंगी। जितनी इन दोनों में परस्पर मेल और एकता बढ़ेगी उतनी ही देश की उन्नति करने में हमारी शक्ति बढ़ेगी। और इनमें (इन दोनों में) जितना ही वैर या विरोध या अनेकता रहेगी, उतना ही हम दुर्बल रहेंगे"।

इन बातों से साफ़ ज़ाहिर है कि मालवीय जी यह कभी मानने को तैयार नहीं थे

कि दोनों जातियों में साम्प्रदायिक भावना बढ़ायी जाए। उनका मत था कि जब दोनों जातियाँ इस देश में बसती हैं और सदा बसती रहेंगी तब दोनों में मेल और एकता होनी चाहिए इसके बिना देश की उन्नति नहीं हो सकती। यही बात उन्होंने श्री इश्तिहाक हुसेन से और मौलाना फ़ाकरी से अलग-अलग कही। फिर मुसलमानों का विद्वेषी मालवीय जी को मानना या कहना ग़लत है। वह साम्प्रदायिक कदापि न थे। हिन्दुओं की रक्षा का जो व्रत उन्होंने अपनी छात्रावस्था में लिया था और जिस पर आजीवन कटिबद्ध रहे, वह उनके धर्म का एक पहलू था। काशी के मुसलमानों को, उपद्रव के समय में, भोजन भिजवाने वाले मालवीय जी को सांप्रदायिक कहना नितांत मूर्खता है। उनके मत को ठीक न समझने के कारण ही ऐसी भ्रांति मुसलमानों में फैल गयी थी। यह एक दुःखद घटना है। यदि मालवीय जी की समस्त जीवनी पर एक दृष्टि डाली जाए तो यह सिद्ध होगा कि मालवीय जी जहाँ हिन्दुओं का भला चाहते थे, वहाँ वह मुसलमानों के विरोधी कदापि नहीं थे। इसीलिए हमने दो मुसलमान सज्जनों की शहादत पेश की है और उनका लेख "अभ्युदय" से उद्धृत किया है कि इन दोनों जातियों में वह मेल और एकता को बढ़ाना चाहते थे। ऐसे महापुरुष को सांप्रदायिक कहना सरासर भूल है।

मुंशी ईश्वर सरन की भी शहादत इस संबंध में लाभदायक सिद्ध होगी। उन्होंने मालवीय जी को लखनऊ के रिफाए-आम में अध्यक्ष पद पर आसीन देखा था। उस समय उनकी बग़ल में, दायें-बायें, दो मुसलमान सज्जन बैठे हुए थे। इन दोनों सज्जनों के होते हुए भी मालवीय जी ने पानी मंगाया और उसे ग्रहण किया। मुंशी जी का कहना है कि वह मालवीय जी की प्रत्येक भावभंगी को देख रहे थे। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मालवीय जी ने मुसलमानों के निकट होने पर भी पानी को ग्रहण किया। उनसे न रहा गया और मालवीय जी से बाद में उन्होंने पूछा कि क्या वह मुसलमानों के निकट होते हुए जल ग्रहण न करने की अपनी प्रतिज्ञा को न निबाहेंगे! इस पर मालवीय जी ने उन्हें जो उत्तर दिया, वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। मुसलमानों को एकता के पास में बँधने के लिए यदि उन्हें नरक भी हो तो उसे वह भोग लेंगे, बशर्ते कि दोनों जातियों में मेल और एकता हो जाए'।

ऐसे व्यक्ति पर यह लांछन लगाना कि वह मुसलमानों का विद्वेषी था, सरीहन भूल है। मालवीय जी को ठोक-बजाकर जिस तरफ़ से भी देखें, उनमें और चाहे जो कुछ दोष रहे हों, उन दोषों में सांप्रदायिकता का आरोप उनपर नहीं लग सकता।

मालवीय जी का मूल सिद्धांत

उन्होंने एक बार यह कहा था—सब की भलाई में अपनी भलाई को देखो। यही मानव जीवन का सार है। उस पर एक सज्जन ने कहा कि मालवीय जी को राजनीति का पता नहीं है। सच्ची राजनीति इसी में है कि अपना भला हो और दूसरे का अधः पतन हो। इस बात को मालवीय जी नहीं मानते थे। उनका कहना था कि सबके साथ यदि अपना अभ्युदय हो तो इसी में मानवता का हित है। हमारी धारणा है—हमारा विश्वास है—मालवीय जी का कथन ही सच है।

मालवीय जी की अनियमता का मूल कारण

वास्तव में उनकी अनियमता में उनकी शालीनता थी। मालवीय जी से जो कोई मिलने आता था, उससे पहले तो अपने जाने की जल्दी वह बता देते थे, लेकिन यदि आगंतुक महोदय इस पर भी न चले गये और जमकर उनके घर पर या दफ़्तर में बैठ गये तो मालवीय जी दुबारा उनसे यह नहीं कहते थे कि उन्हें ज़रूरी काम से जाना है और इस समय वह उन्हें माफ़ करें। कांग्रेस की स्वदेशी आन्दोलन की, हिंदू विश्वविद्यालय की, हिन्दू-मुस्लिम एकता की, हरिजनों की ओर अनेक सभा-सोसाइटियों का भार उन्होंने अपने कंधों पर ले रखा था। किसी एक व्यक्ति के लिए काशी विश्वविद्यालय का काम ही इतना था कि उसकी सेवा में उसका सारा समय लग सकता था। लेकिन मालवीय जी अपने कंधों पर अनेक संस्थाओं का भार ओढ़े हुए थे। 'सितम्बर, सन् १९३२, में—सुमन जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं—"महात्मा जी के उपवास के समय हरिजनों की समस्या को निबटाने में उन्होंने जो परिश्रम किया, उसका बहुत-थोड़ा-सा अंश जनता को मालूम है। उन्हीं के प्रयत्नों का फल यह था कि इतनी जल्दी ऐसा सुन्दर समझौता हो गया। वहीं उनका स्वास्थ्य इतना ख़राब हो गया था कि डाक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी। लेकिन जातिगत एकता की संभावना को आते देखकर वह पंजाब चले गये। वहाँ से बंगाल और उत्तर प्रदेश में वह आये। इलाहाबाद के एकता सम्मेलन में सोलह-सोलह घंटे या बीस-बीस.घंटे का परिश्रम, और फिर उससे छुट्टी पाते ही केरल में जाकर हरिजनों के मंदिर-प्रवेश की समस्या सुलझाने की इच्छा कांग्रेस के अधिवेशन के लिए उनका उत्साह और कलकत्ता कांग्रेस के बारे में उनकी सेवा से लोग परिचित हैं। इस विद्या-वयोवृद्ध ब्राह्मण ने अपने तन की चिंता कभी न की। वह सदा जाति के, देश के हित की चिंता ही करते रहे'। सर विश्वेश्वरैया ने ठीक ही लिखा है—'एक आदरास्पद व्यक्तित्व रखनेवाले, एक कट्टर हिन्दू और एक महान् भारतीय जो कुछ सोचते हैं, जो कुछ करते हैं, अपनी जाति और अपने देश के हित ही के लिए सोचते और करते हैं। अंत में सुमन जी कहते हैं कि 'देश के लिए उनका आत्म-त्याग अद्भुत था। मालवीय जी का जीवन आरंभ ही से त्याग और तपस्या का जीवन था'।

इसके आगे सुमन जी कहते हैं—'अधिकांश नेताओं का जीवन नैतिक दृष्टि से बड़ी डावाँ-डोल परिस्थितियों में बीता है। लोगों में उनके विषय में तरह-तरह की बातें कही जाती हैं। उनमें बहुतेरी निस्संदेह कल्पित हैं, पर मालवीय जी यौवन काल से लेकर अन्त तक पवित्रता की मूर्ति की भाँति अटल हैं। उनके जीवन में कोई प्रेम-कथा नहीं, कोई एडवेंचर नहीं, राग-रंग किसी बात का उन्हें शौक़ नहीं। शुरु से अन्त तक एक सात्विक रेखा उनके समतल जीवन में चली गयी है। ब्राह्मणत्व के गौरव और ब्राह्मणत्व की कट्टरता दोनों ने इस विषय में उनकी रक्षा की है'।

कहते हैं कि मालवीय जी के भाग्य में लिखा था कि वह सदा चन्दा जमा करते रहेंगे। उनके पैर में शनिश्चर का बास था और वह शायद ही कभी घर पर रहे हों। उनको यात्रा करना बदा था और शायद ही किसी प्रदेश में वह कई बार न गये हों और अपनी अमृत-वाणी से लोगों के उत्साह को द्विगुणित न किया हो। उनके भ्रमण का

जो एक चित्र श्री चन्द्रबली त्रिपाठी ने खींचा है। उसको यहाँ पर देना उचित है। श्री त्रिपाठी जी अपनी पुस्तिका में कहते हैं—'पेशावर में राधाकृष्ण संस्कृत पाठशाला में मालवीय जी ठहराए गये थे। हम लोगों ने चमेली की बोतल को तेल से रिक्त देखकर बाजार से एक बोतल चमेली का तेल मँगा लिया था। कदाचित् मालवीय की जी दृष्टि सूनी बोतल पर पहले पड़ चुकी थी। जब उनसे यह कहा गया कि नयी बोतल बाजार से मँगा ली गयी है तब तुरन्त उन्होंने तेल सहित उसे अपने सामने ही फेंकवा दिया। पेशावर जैसे नगर में कभी उस बोतल में मद्य रहा हो, यह संदेह मालवीय जी को हुआ था।

आगे चलकर वह कहते हैं कि 'मालवीय जी के स्वाध्याय के ग्रंथ थे महाभारत और श्रीमद्भागवत। अपनी भागवत की पोथी में महत्वपूर्ण श्लोकों के नीचे हरे-लाल रंग की पेंसिल के चिह्न उन्होंने लगा रखा था। ये पुस्तकें उनके निजी बक्स में रहती थीं और यात्रा के समय में भी उनके साथ चलती थीं। पुस्तकों के साथ उस बक्स में उनके माता-पिता के चित्र भी रहते थे और संध्योपासना के समय उन चित्रों के दर्शन वह कर लिया करते थे। इससे उनकी मातृ-पितृ-भक्ति का पता लगता है। अपने भृत्यों और पार्श्ववर्तियों के प्रति मालवीय जी का व्यवहार कोमल, माधुर्यपूर्ण और अनुग्रह-पूर्ण था। कुवाच्य उनके मुंह से कभी नहीं निकलते थे। झंझलाहट उनसे कोसों दूर थी। यदि उनके नौकर से कभी कुछ बिगड़ जाता तो वह 'भले मनुष्य' कहकर चुप हो जाते'। इन्हीं त्रिपाठी जी ने अपनी पुस्तिका के अंत में लिखा है कि मालवीय जी के संपर्क से उन्होंने क्या शिक्षा ग्रहण की। सबसे अधिक बल उनका मालवीय जी की मधुरता और अक्रोध पर है। हमारे प्रधान-मंत्री ने भी उनके विषय में यह कहा है कि उनके स्वभाव में मधुरता थी और वह प्रेम से दूसरों के प्रश्नों का उत्तर देते थे। मैंने खुद देखा है कि दूसरों से बहस करते समय वह कितने मीठे ढंग से अपनी बात समझाते थे। उसमें कहीं भी कटुता न होती थी। प्रधान मन्त्री ने ठीक ही कहा है कि पचास साल तक मालवीय जी का असर महज इलाहाबाद ही पर नहीं रहा, सारे भारत की राजनीति पर बहुत जबर्दस्त रहा। मालवीय जी वास्तव में उदार दल और उग्र दल के बीच में एक कड़ी का काम करते थे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने मालवीय जी के प्रति जो श्रद्धांजलि दी है, उसके वचन हमें न भूलना चाहिए—'दलबन्दी का नेता बनने की इच्छा से वह कोसों दूर थे। वह जो कुछ करते, उसमें देश-भक्ति तथा सेवा भाव सर्वोपरि रहता था।' अन्त में वह गांधी जी के साथ मालवीय जी की तुलना करते हैं। 'अपनी बात न मानी जाने पर गान्धी जी सरकार को पत्र लिखकर पंजाब को छोड़कर जाने के लिए तैयार थे, पर मालवीय जी! उन्हें बहुमत के सामने सिर झुकाने में कोई कठिनाई नहीं हुई'। गान्धी जी कर्मठ थे, पर मालवीय जी दंगल के मंजे हुए खिलाड़ी थे। इन दोनों के जो चित्र स्वामी जी खींचे हैं, हमें उन्हें न भूलना चाहिए।

मालवीय जी का ब्राह्मणत्व

कुछ लोगों का कहना है कि मालवीय जी अतीत के पुजारी थे और उन्होंने कोई ऐसा काम नहीं किया, जिससे संसार के श्रेष्ठ समाज-सुधारकों में उनकी गणना हो सके।

उन्हें ब्राह्मण होने का अभिमान अवश्य था, लेकिन गान्धी जी के सम्पर्ग से उनमें जो परिवर्तन हुआ, उसे हमें न भूलना चाहिए। उनका जन्म १९वीं सदी में हुआ था, और बीसवीं सदी के अर्धांश में उनका देहावसान हुआ। प्रधान मंत्री ने अपने भाषण में मालवीय जी की प्रशंसा में नपे-तुले शब्दों का प्रयोग किया है—'इन सब लोगों के काम, गान्धी जी के या मालवीय जी के, भविष्य को देखते हुए थे। सब लोगों को बढ़ाना, ऊँचा करना, मजबूत करना, उनको आपस में मिलकर काम करना सिखाना, इस तरह से एक ईंट, एक पत्थर लेकर इन महापुरुषों ने हमारे भारत के भविष्य को उज्ज्वल बनाने की कोशिश की, और (उन्होंने) बहुत कुछ बनाया भी। उन्होंने जो बनाया था हम लोगों को, जो दूसरी पीढ़ी के थे, जैसे उनसे कुछ आगे बढ़ा सकें, इसकी शिक्षा उन्होंने हमें दी, 'लेकिन असल में काम तो उनका था'। इसके पहले वह कह चुके हैं कि मालवीय जी का काम क्रान्तिकारी था।

इस विषय में भारत के प्रधान मंत्री, श्री जवाहरलाल नेहरू, जो कहते हैं, उसे हमें हृदयंगम कर लेना चाहिए। उनका कहना है कि 'वह महान् क्रान्तिकारी थे, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन उनके सामने हमेशा बनाने की बात रहती थी। यदि बनाने के सिलसिले में चीजें टूट भी जाती थीं और वे हटा दी जाती थीं। .....लेकिन उनका खास ध्यान हमेशा बनाने की ओर रहा है, ...उन्होंने भारत के लोगों को बनाया'।

इसके पहले, हमारे प्रधान मंत्री जी फ़रमाते हैं कि 'इस नक्शे को देखें, फिर आप महसूस करें कि मालवीय जी ने कैसा नेतृत्व किया देश का, उनकी लीडरशिप कैसी थी और कैसे वह अगुआ थे हमारे राजनीतिक आन्दोलन के। उस समय हम सिकायत करते थे कि वह ढीले पड़ जाते थे, अब लोग मेरी निस्बत शिकायत करते हैं कि मैं ढीला पड़ जाता हूँ। अब तो मुझे खुद अनुभव हुआ है इस बात का, और अब मेरा अनुभव सही है। हो सकता है कि मेरे बारे में शिकायत सही हो। .....हमारे जो पुराने नेता थे, जिन्होंने इस देश की राजनीति को ढाला और कांग्रेस को बनाया, जैसा कुछ वह बाद में बनी, आप इसका अन्दाजा कर सकते हैं और उनका आदर कर सकते हैं। मेरा विचार है कि कांग्रेस के पुराने नेताओं को, जिनमें बहुत ही बड़ों में मालवीय जी थे, दुनियाँ के किसी गज से भी आप नापें, बहुत बड़ा पायेंगे। वे बहुत बड़े आदमी थे, जिन्होंने हिन्दुस्तान को ऐसे मौक़े से निकाला; वे बहुत बड़े थे लियाक़त में, विचारों में, अपने बलिदान की शक्ति में। अलावा इन सब बातों के इस बात में भी उन्होंने दुरंकदेशी से देखा, उन्होंने बनाया भी, बिगाड़ा ही नहीं'।

"इस सिलसिले में" प्रधाच मंत्री जी कहते हैं—'मालवीय जी का सबसे बड़ा काम हुआ हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना। विश्वविद्यालय के सामने उद्देश्य था, लक्ष्य था आजकल के जमाने के विज्ञान और विज्ञान की औलाद यानी टेकनालजी, इंडस्ट्री वगैरा को पुरानी भारतीय संस्कृति के साथ जोड़ना। एक मानी में यह सबसे बड़ा काम था भारत के लिए। (वह) अब भी है, क्योंकि यह एक दो रोज का काम तो है नहीं। एक तरफ़ पुरानी भारतीय संस्कृति है जिसको हमें अच्छी तरह से समझना चाहिए क्योंकि जिस मिट्टी में हम पैदा हुए हैं और उसी से बने हैं, उसे भूल जाएँ तो हमारी कोई जड़ ही नहीं

रहती।.....यह जो बातें कहते थे, मेरी राय में, वे बहुत सही थीं...लेकिन मालवीय जी किसी भाषा के विरोधी नहीं थे। वह चाहते थे कि हिन्दी और संस्कृत की तरक्की हो भारत में और यह एक बहुत ठीक बात थी। जो बात करने की कोशिश वह करते थे, बिना किसी का विरोध किये हुए। विरोध करने का सवाल ही नहीं है। विद्या और इल्म का विरोध नहीं होता, बल्कि, वह तो एक धन-दौलत है, जो हमको ऊँचा करती है; और (वह) जितनी ही अधिक हो, उतना ही अच्छा'।

एक लेखक महोदय ने मालवीय जी पर ब्राह्मणत्व का दोष लगाया है। उनके ऊपर श्री जवाहरलाल नेहरू के शब्दों का क्या असर पड़ा, यह मैं नहीं कह सकता, लेकिन उन लेखक महोदय की राय से मैं सहमत नहीं हूँ। प्रधान मंत्री के वचनों का मेरे ऊपर जो प्रभाव पड़ा, उसे मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। वह उन क्रांतिकारी नेताओं में थे, जिन्होंने भारत के आदमियों को बनाया। इस प्रमाण के बाद मुझे और कुछ नहीं कहना है। मालवीय जी ने यदि अपने जीवन में और कोई काम न किया होता और केवल मात्र विश्वविद्यालय की स्थापना की होती तो उनका नाम अमर हो जाता, लेकिन उन्होंने इतना ही काम नहीं किया। उनका कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत था और अपने समय में उनकी गणना होती थी देश के बड़े से बड़े नेताओं में। वह कौन था, जिसकी मधुर वाणी से नवयुवकों और प्रौढ़ों को प्रसाद के रूप में प्रेरणा मिलती थी ?

मालवीय जी की वाग्मिता

मालवीय जी के लोकप्रिय होने का रहस्य उनकी मधुर वाणी में था। जिन्होंने उन्हें सुना, उनकी संख्या लाखों में है, क्योंकि बिरला ही कोई प्रदेश ऐसा बचा होगा जिसका भ्रमण एक बार से अधिक उन्होंने न किया हो और जहाँ वह गये, वहाँ सभाओं में उनका भाषण अवश्य हुआ।. जिन्होंने उन्हें कभी नहीं देखा, वे भी उनकी अतुलनीय देश-भक्ति का लोहा मानते थे। इसका रहस्य उनकी मधुर वाणी थी। इसी की बदौलत उन्होंने विश्वविद्यालय के लिए एक करोड़ से अधिक धन जमा किया। एक बार फिर हम प्रयाग के उच्च न्यायालय के भूतपूर्व जज, श्री शंकर सरन, के इन शब्दों को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। उस लेख में मालवीय जी की कमनीय मूर्ति की, 'उनकी मधुर मुस्कान की, प्राचीन गाथाओं के उल्लेख की' बहुत प्रशंसा की गयी है। उन्होंने अपने लेख के अंत में कहा है कि उनके भाषण बहुत ही 'मोहक' और 'प्रभावपूर्ण' होते थे इसी तरह सर विश्वेश्वरैया ने सन् १९१२ में कलकत्ते की एक सभा का जिक्र किया है, जिसमें मालवीय जी का भाषण हिन्दी में हुआ था। उनका कहना है कि उस सभा में मालवीय जी के भाषण से लोगों में इतनी उत्तेजना फैल गयी कि लोगों पर मानों उन्होंने जादू कर दिया हो।

उनमें वाग्मिता थी। वाग्मियों की उस समय देश में कमी नहीं थी। शायद दूसरे भी उनकी टक्कर के वाग्मी थे। पर उनके भाषणों की मिठास को कोई नहीं पाता था। इस विषय पर डा० सच्चिदानंद सिन्हा का कथन है कि अपनी नौजवानी के दिनों में वह सन् १८९२ में प्रयाग के कांग्रेस-अधिवेशन में शामिल हुए थे। उस समय

के प्रसिद्ध वक्ताओं को उन्होंने सुना, लेकिन सबसे अधिक प्रभाव मालवीय जी के भाषण का उन पर पड़ा। उनके शब्दों को दोहराना मैं नहीं चाहता, क्योंकि पहले ही मैं उन्हें उद्धृत कर चुका हूँ।

मालवीय जी की निःस्वार्थ सेवा

इस विषय पर एक अलग अध्याय मैंने लिखा है। अतएव, उसके दोहराने की आवश्यकता नहीं है। जो व्यक्ति विश्वविद्यालय के लिए एक करोड़ से अधिक रुपया जमा करे और बीस वर्ष तक उसका अवैतनिक उप-कुलपति रहे, वह उससे कौड़ी न ले यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। उनका विचार था कि विश्वविद्यालय के अध्यापक अर्जी नहीं देंगे। इसलिए उन्हें लाना होगा। अध्यापकों को लाना पड़ता है, वे अपनी मर्जी से स्वयं नहीं आते। विद्यार्थियों के साथ उनका व्यवहार पिता तुल्य था। विश्वविद्यालय के उप-कुलपति होते हुए भी उन्होंने कभी किसी आदमी के साथ चाहे वह विद्यार्थी हो या विश्वविद्यालय का कर्मचारी कठोर व्यवहार नहीं किया। सबके साथ उन्होंने समरस व्यवहार किया। वह चाहते तो अपने पद के जोम में कठोर से कठोर दण्ड दे सकते थे, लेकिन ऐसा उन्होंने कभी नहीं किया। सबको उन्होंने छोटा भाई या पुत्र के समान ही समझा और उसी तरह का अपनपौ का व्यवहार किया। इसकी अनेक कथायें हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि छोटे भाई या पुत्र के समान उन्होंने सब को समझा और सबके साथ वैसा ही वर्ताव किया।

अजातशत्रु मालवीय जी

उनमें यह बड़ी विशेषता थी कि कभी किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप उन्होंने नहीं किया, चाहे वह उनका कितना ही बड़ा विरोधी क्यों न हो। यदि किसी के सार्वजनिक कामों की आलोचना उन्हें करनी भी हुई तो वह बड़े कष्ट से उसे करते थे। इसीलिए उन्हें पं० हृदयनाथ के शब्दों में 'अजातशत्रु' कहने में हमें कुछ भी संकोच नहीं होता। श्री मेहरा जी ने अपने लेख के इसका एक उदाहरण भी दिया है। ऐसी ही बात मेरठ में हुई। उन बातों के दोहराने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि उनका विश्वास था कि ईश्वर न्याय-कर्ता है। उसके अधिकार में किसी को दस्तंदाजी करने का कोई हक़ नहीं है। एक लेखक के शब्दों में उनका यह विश्वास था कि न्याय ईश्वरीय है, और उदारता मानव धर्म है।

मालवीय जी सब गुणों की खान

उनके विषय में क्या न कहा जाए ? वह सब गुणों की खान थे। विद्या-वारिधि थे। महात्मा जी को भी उनके अगाध पाण्डित्य से ईर्ष्या होती थी। वह हिन्दू धर्म में ईसाइयों तक को लेने के अनुकूल थे बशर्ते वह पैदायसी ही हिन्दू हो, उनकी सबसे बड़ी कम-जोरी—यदि वह कमजोरी मानी जाए तो—यह थी कि विधि-विहित, शास्त्र-सम्मत जो बात उन्हें ठीक जँचती थी, उसी को वह करते थे। क़ानूनन दहेज लेना अब वर्जित किया गया है, लेकिन इसके बहुत पहले ही मालवीय जी ने व्यवस्था दी थी कि दहेज का

लेना या माँगना हराम है। न उसका कोई परिणाम हुआ और न नये क़ानून का कोई फल दिखायी देता है। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि समाज का यह रोग बड़ा भयंकर है, और इससे स्त्री-जाति का खुल्लमखुल्ला अपमान होता है। जितनी जल्दी यह रोग समाज से हट जाए उतना ही अच्छा होगा, क्योंकि नारी-जाति का घृणित अपमान और कोई नहीं हो सकता।

मालवीय जी और हरिजन

हरिजनों के लिए उनके हृदय के कपाट हमेशा खुले रहते थे। उन्हें मालूम भर हो जाए कि अमुक विद्यार्थी हरिजन है, तो वह उसकी हर प्रकार से सहायता करते थे।

मालवीय जी और मोक्ष

मालवीय जी मोक्ष की भी परवाह नहीं करते थे। श्री ज्योति भूषण गुप्त से उन्होंने कहा—'देखो, एक बात मेरी याद रखना तुम। यदि मुझे होश न रहे और लोग अन्तिम समय में विश्वविद्यालय के इस क्षेत्र से काशी-क्षेत्र में ले जाना चाहें, तो तुम मत ले जाने देना। मना कर देना। काशी-क्षेत्र में मरने से मोक्ष हो जाता है, मुझे अभी फिर यहीं जन्म लेकर बहुत-से अपने अधूरे कामों को पूरा करना है'। यही उनका उद्देश्य काया-कल्प के करने में था। उससे उन्हें आशा थी कि वह नीरोग हो जाएँगे और आयु भी बढ़ेगी। यह दूसरी बात है कि उनका मनोरथ पूरा नहीं हुआ। लेकिन अन्त तक उनकी यही कामना रही कि वह दीर्घायु हों और स्वस्थ हों, ताकि वह अधिक दिन तक अपने अधूरे कामों को पूरा कर सकें। धन्य हैं मालवीय जी, जिनकी यह कामना थी कि उन्हें मोक्ष नहीं चाहिए, बल्कि इसी देश में जन्म लेकर वह भारत की अधिक दिनों तक सेवा कर सकें।

दो व्यक्तियों का प्रभाव

अंत तक दो व्यक्तियों के प्रभाव में वह रहे—(१) गोपाल कृष्ण गोखले और (२) गांधी जी। गान्धी जी का प्रभाव ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, त्यों-त्यों मालवीय जी में व्यापक परिवर्तन होते गये, लेकिन अपने अन्तः-करण के सामने न उन्होंने गोखले जी की बात मानी और न महात्मा जी की। गोखले जी के विषय में श्री हालना जी के लेख को पढ़िए और महात्मा जी के विषय में 'इण्डेमनिटी बिल पर' बोलते समय उन्होंने साफ़-साफ़ सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल में गृह-मंत्री से अपने भाषण में कह दिया था कि इस बिल के विषय में यद्यपि गान्धी जी की राय भिन्न है लेकिन मैं उनकी बात को नहीं मानूंगा और मेरा अन्तः करण जो कहता है, उसी के अनुसार मैं काम करूँगा। यही बात असहयोग आन्दोलन के विषय में भी चरितार्थ हुई, और गान्धी जी से मतभेद के कारण उसमें वह शरीक न हुए। लेकिन इन दोनों नेताओं का उन पर प्रत्यक्ष प्रभाव था, इसमें कोई संदेह नहीं। श्री बालगंगाधर तिलक के विषय में मालवीय जी की अन्त में सम्मति यह थी कि न उन्होंने और न गान्धी जी ने अंग्रेजी सरकार को उतनी अच्छी तरह समझा, जितनी अच्छी तरह तिलक जी अंग्रेजी सरकार को समझते थे।

विनम्र निवेदन

मैंने अपने लेख में किसी समय यह लिखने की धृष्टता की थी कि नेतागिरी की परवाह मालवीय जी ने कभी नहीं की। उनका कहना था कि मेरे पास तुलसी का दल है और कोई मेरा दल नहीं है। जिस किसी ने मालवीय जी और महात्मा जी की तुलना की है, वे सब इस बात में सहमत हैं कि महात्मा जी के बाद महामना जी का नाम आता है। सब गुणों के रहते हुए भी मालवीय जी इस देश के सर्वश्रेष्ठ नेता न हो सके, यह क्या कम अचरज की बात है?

मालवीय जी और प्रतिलोम विवाह

अनुलोम विवाह तो शायद वह सह सकते थे, पर प्रतिलोम विवाह के विरुद्ध वह एकदम थे।

यह एक घटना से साफ़ ज़ाहिर होता है। महात्मा जी ने अपने लड़के देवदास गाँधी से कहा कि श्री राजगोपालाचारी की पुत्री से विवाह होने के बाद वह प्रयाग जाकर मालवीय जी का आशीर्वाद लें। मालवीय जी ने आशीर्वाद तो वर-वधू को दिया लेकिन महात्मा जी को यह भी लिख दिया कि ऐसा संबंध उन्हें पसंद नहीं है।

क्यों मालवीय जी ने महात्मा जी को ऐसा लिखा? महात्मा जी का पुत्र वैश्य था, जिसका विवाह ब्राह्मण की कन्या से हुआ था। प्रतिलोम-विवाह के संबंध में शास्त्रों का वचन है कि ऐसा विवाह निषिद्ध है। अनुलोम-विवाह का उनके जीवन में कोई उदाहरण नहीं मिलता। प्रतिलोम-विवाह के विषय में हम ऊपर कह चुके हैं। एक जहाँ शास्त्र-सम्मत है, वहाँ दूसरा निषिद्ध है ऐसी दशा में मालवीय जी क्यों-कर प्रतिलोम-विवाह के समर्थन में अपना मत देते।

मालवीय जी और चंदा

देश के सबसे बड़े चंदा माँगनेवाले महामना मदनमोहन मालवीय जी थे। उनकी वाणी में कुछ ऐसा जादू था कि लोग अपने-आप अपनी जेबों या टेंटों में हाथ डाल देते थे और रुपयों की वर्षा मालवीय जी पर होने लगती थी। इसी शक्ति की बदौलत उन्होंने प्रयाग में भारती भवन, मैकडानल्ड हिन्दू बोर्डिंग हाउस, मिन्टो पार्क और महारानी विक्टोरिया की घोषणा का स्मारक बनाया। ये तो उनके आरंभिक कार्य थे। सबसे महान् कार्य उनसे उस समय बन पड़ा, जिस समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना उन्होंने की। उसके बन जाने पर भी मालवीय जी सदा उसके लिए चंदा जमा करते रहे। एक करोड़ से अधिक रुपया काशी विश्वविद्यालय के लिए उन्होंने अपने जीवन में जमा किया, लेकिन खूबी यह थी कि उन्होंने उस विश्वविद्यालय से एक कौड़ी भी नहीं ली। सदा उसकी सेवा अवैतनिक ढंग से की, बीस वर्ष तक उसके उप-कुलपति भी रहे पर अवैतनिक ढंग से।

लाला लाजपतराय ने ठीक ही कहा था कि जहाँ वह मालवीय जी से प्यार करते थे, वहाँ महात्मा जी के लिए इज्जत का भाव इनके दिल में था सचमुच, मालवीय जी की जीवनी बड़ी मनमोहक और शिक्षाप्रद है।

अक्रोध, विनम्रता, अपने से बड़े के प्रति आदर का भाव, दूसरों की सेवा में निष्ठा, नेतागिरी से कोसों दूर भागना—ये उनके आध्यात्मिक विशेष गुण हैं। स्वर्गीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने अपनी श्रद्धांजलि में कहा है कि क्या वकालत में और क्या सार्वजनिक क्षेत्र में, उनका जीवन पावन रहा। खुद काम करना और दूसरे को उसका श्रेय देना—यह उनकी विशेषता थी।

———

5534